ब्रह्मसूत्र में उद्धृत आचार्य और उनके मन्तब्यों का समालोचनात्मक अध्ययन

" BRAMHASUTRA MAIN UDDHRIT ACHARYA AUR UNKE MANTABYO KA SAMALOCHANATMAK ADHYAYAN "

इलाहाबाद की डी. फिल उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध
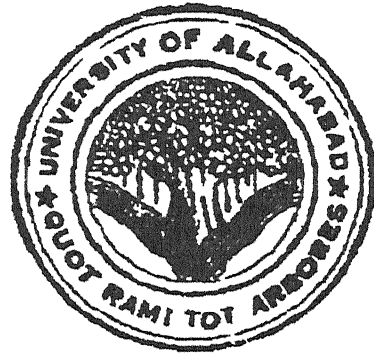
पर्यवेक्षक
डा० रञ्जना
रीडर संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्ता
वन्दना देवी
एम० ए० (संस्कृत–दर्शन), यू० जी० सी०
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

April-2003
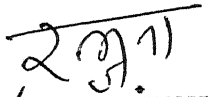
इलाहबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि संस्कृत विषय में डी० फिल० की उपधि हेतु बन्दना देवी ने मेरे निर्देशन में **"ब्रह्मसूत्र में उद्धृत आचार्य और उनके मन्तब्यों का समालोचनात्मक अध्ययन"** विषयक शोध कार्य सम्पन्न किया है। इन्होंने पूरी निष्ठा एवं लगन के साथ यह शोध-प्रबन्ध विधिवत् पूर्ण किया है। इनका यह कार्य व्यक्तिगत अनुशीलन एवं परिश्रम पर आधारित है तथा पूर्णतया मौलिक है, इसे प्रस्तुत करनेकीसंस्तुति करती हूं।

Date: 25.4.03

रंजना

(डा० रंजना)

(डी० फिल० डी० लिट०)

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

प्राक्कथनम्

य ब्रह्म वेदान्तविदो वदन्ति पर प्रधान पुरुष तथान्ये।

विश्वादगते कारणमीश्वर वा तस्मै नमो विघ्नविनाशाय।।

"प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध का विषय ब्रह्म–सूत्र शाड्कर भाष्य में उद्धृत आचार्य एव उनके मन्तब्यो का समालोचनात्मक अध्ययन" है। भगवान बादरायण ने ब्रह्मसूत्र की रचना की और उस पर आचार्य शड्कर ने कालजयी भाष्य लिखा। ब्रह्मसूत्र चतु सूत्री अति सक्षिप्त होने के कारण साधारण जनो के लिए दुर्वोध थे। इस पर आचार्य शड्कर ने विस्तृत भाष्य लिखकर साधारण जनो के लिए सुलभ बनाया है। यद्यपि शङ्कराचार्य के दर्शन पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इतना लिखा जा चुका है कि उसके पूर्णज्ञान का दावा करना मुझ जैसे अल्पज्ञ के लिए अह प्रदर्शित करना होगा, तथापि ब्रह्मसूत्र शाड्कर भाष्य मे उदधृत शङ्कर पूर्ववर्ती आचार्यो और उत्तरवर्ती अचार्यो के मन्तब्यो का अध्ययन करने का पूर्ण प्रयास करना हमारा लक्ष्य है। आचार्य शड्कर का जन्म ऐसी विषम परिस्थितयो के मध्य हुआ था जब कि समाज मे पाखण्ड, वाह्याडम्बर ,जादू टोना जैसी अनेक कुरीतिया प्रचलित हो चुकी थी। आचार्य शड्कर ने सम्पूर्ण देशो मे भ्रमण करके इन समस्त विसगतियो को दूर करने का वीडा उठाया तथा आस्था, विश्वास, श्रुतिया एव तर्को की सुदृढ भूमि पर हिन्दू धर्म (वेदान्त) को प्रतिष्ठित किया। शड्कराचार्य के दर्शन मे सर्वोच्च जीवन आदर्श प्रस्तुत किया गया है। वह निर्विवाद रूप से सर्वोच्च सभव आदर्श है ।

ब्रह्मसूत्र 'शाड्कर–भाष्य' की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि जिसके कारण अन्य दर्शनो के समर्थको द्वारा लगाये गये अनेक आक्षेपो के बाचजूद यह

अडिग बना रहा। इसका कारण यह है कि आधार दृढ एवं निर्दोष ज्ञान भी मीमासा पर टिका हुआ है। इसकी ज्ञान मीमासा का मूल यह है कि आत्म–तत्त्व चेतन–स्वरूप है और इसके प्रमाण की भी कोई आवश्यकता नही है, क्योकि वह स्वयसिद्ध एव स्वप्रकाश स्वरूप है। शङ्कराचार्य के इन असदिग्ध तर्को एव विचारो के समक्ष समस्त दार्शनिक स्वयमेव नतमस्तक हो जाते है। यही कारण है कि शङ्कर का दर्शन दर्शनो का शिरोमणि कहा जाता है। उनके विषय मे यह कथन सर्व प्रसिद्ध है–

''तावद् गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा ।
न गर्जन्ति महाशक्तिर्यावद् वेदान्त केसरी'' ।।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मे कुल छ. अध्याय है। प्रथम अध्याय में दर्शन का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है जिसके अर्न्तगत दर्शन की परिभाषा, उत्पत्ति, जीवन और दर्शन, दर्शन एव धर्म, विषय, प्रयोजन, कालविभाजन, भारतीय दर्शन की विशेषताए तथा भारतीय दर्शन की मुख्य विधाओ का वर्णन किया गया है। 'दर्शन' का परिचय जाने बिना शाङ्कर वेदान्त को जानना अति दुरूह है। दर्शन आत्म साक्षात्कार का परम साधन है। द्वितीय–अध्याय मे ''श्रौत्र दर्शन एव गीता'' का वर्णन किया गया है। इसका वर्णन करने के पीछे मुख्य उददेश्य यह है कि वैदिक सहिताओ और आरण्यको, उपनिषदो तथा गीता के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उसमे दार्शनिक तत्त्व प्रर्याप्त मात्रा मे मौजूद थे। तृतीय अध्याय शकर पूर्व वेदान्त है। यह विषय समग्रता कि दृष्टि से तीन खण्डो मे विभक्त है। **खण्ड–(क)** मे योग वाशिष्ठ का वर्णन है जिसमे यह दिखलाने का प्रयास किया है। कि शङ्कर का अद्वैत वेदान्त शकर से पूर्व योग वाशिष्ठ मे भी विद्यमान था। **खण्ड–(ख)** मे शकर पूर्ववर्ती अद्वैत वेदान्त के प्रर्वतक आचार्य और उनका अव्यवस्थित इतिहास

वर्णित है। शङ्कर प्राग् षोडश वेदान्ताचार्य तथा उनके सिद्धान्त का वर्णन किया गया है। इनमे सात आर्ष वेदान्ताचार्य आत्रेय आष्मरथ्य, औडुलोमि, कर्णाजिनि, काशकृत्स्न, जैमिनि, वादरायण जिनका अद्वैतवाद का सिद्धान्त यत्र–तत्र अव्यवस्थित रूप से वर्णित मिलता है। **खण्ड–(ग)** मे शकराचार्य के प्राग वेदान्ती आचार्य और अद्वैतवाद का व्यवस्थित इतिहास का वर्णन किया गया है। इसमे किसी का सिद्धान्त युक्ति–युक्त नही प्रतीत होता है, <u>और यहा तक भी नही किसी किसी का सिद्धान्त श्रुति सम्मत और तर्क सम्मत भी प्रतीत नही होता है।</u> चतुर्थ–अध्याय मे शङ्कराचार्य का सक्षिप्त जीवन परिचय तथा उनके पूर्व भारत की स्थिति आचार्य शङ्कर का व्यक्तित्व और उनकी कृतिया मडन मिश्र और शङ्कर शास्त्रार्थ, शङ्कर की भारतीय का शास्त्रार्थ ,आदि का तथा अन्त में शङ्कर सिद्धान्त ब्रह्म–विचार, जीव–विचार, अविद्या, माया, मोक्ष आदि का वर्णन किया गया है। अध्याय–पॉच मे शङ्कराचार्य के उत्तरवर्ती आचार्य और उनको सिद्धान्त यथा– सुरेश्वरचार्य, पद्मपाद, वाचस्पति मिश्र, सर्वज्ञात्ममुनि, प्रकाशात्मायति, चितसुखाचार्य, अमलानन्द, ब्रह्मानन्द सरस्वती, श्रीहर्ष आदि आचार्यो का वर्णन तथा उनके सिद्धान्तो का भी सक्षिप्त परिचय दिया गया है। षष्ठम अध्याय मे मुख्य सिद्धान्तो भामती प्रस्थान, विवरण प्रस्थान, कार्तिक प्रस्थान और वाध प्रस्थान के सिद्धान्तों का तुलनात्मक वर्णन किया गया है। <u>और अन्त मे उपसहार का वर्णन किया गया है</u>। ग्रन्थ के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आचार्य शङ्कर के आविर्भाव से पूर्व अद्वैत वेदान्त का बीज रूप वेदो, उपनिषदो, ब्राह्मण आरण्यको, आदि मे भी प्राप्त था। और शङ्कर से पूर्व योग वाशिष्ठ तथा अन्य प्राग् अद्वैत वेदान्ती आचार्यो का मत अद्वैत वेदान्त से सम्बद्ध था, किन्तु अद्वैतवाद का जो बीज पूर्व रूप से विद्यमान था उसको उचित वातावरण मे विकसित करने का प्रयास अचार्य शकर ने किया। अद्वैत वेदान्त मानव चरित्र को नैतिकता की

जानकारी देते है।– 'सर्व खलु इद ब्रह्म' 'अह ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि , 'श्वेतकेतो' आदि महावाक्यो से सभी जीवो मे समानता प्रर्दशित की गयी है। आधुनिक युग मे भी अद्वैत वेदान्त का महत्व अधिक है ।

अनुसधान करते समय अनुसन्धात्री की मौलिक प्रवृत्ति का प्राधान्य रहे, ऐसा ध्यान दिया गया है। विषय–वस्तु की विलक्षणता तथा विशदता की दृष्टि से 'ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य' का अपना विशिष्ट महत्व है। उनकी इसी विशेषता के कारण सस्कृत दशर्न–वर्ग की छात्रा के रूप मे सस्कृत–विभाग इलाहावाद विश्वविद्यालय, परास्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने पर मेरे मन मे शाङकर दर्शन से सम्बद्ध शोध कार्य सम्पन करने की प्रबल इच्छा समुदभूत हुई, और सस्कृत विभाग के तदानीन्तन अध्यक्ष **प्रो० हरिशकर त्रिपाठी** (भूतपूर्व विभागाध्यक्ष) की महती अनुकम्पा से मुझे **'ब्रहमसूत्र मे उद्धृत आचार्यो के मन्तव्यो का समालोचनात्मक अध्ययन'** बिषय पर शोध करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। शोध बिषय को दृष्टि मे रखकर प्रबन्ध–शोध ग्रन्थ का सक्षिप्तीकरण सरल कार्य नही था तथा साथ ही उचित भी नही था। अतएव मैने 'ब्रहमसूत्र शाङ्करभाष्य' को आधार मानकर पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती आचार्यो का विवेचन कर रहा हूॅ। इस प्रसग मे मै सुधी परीक्षको से क्षमा–प्रार्थी हूॅ।

अनुसंधान क्षेत्र मे जिन गुरुजनो ने अपना योगदान दिया उनके प्रति आभार प्रकट करना मै अपना परम कतर्व्य समझती हूॅ। शोध कार्य मे प्रवृत्त होने पर मै अपनी श्रद्धेया पूजनीया निर्देशिका **डा० रजना** (वरिष्ठ रीडर सस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्व विद्यालय इलाहबाद) के प्रति श्रद्धावनत् हूॅ, जिनसे मुझे पग–पग पर निर्देशन, अपेक्षित सहायता एवं प्रेरणा मिली। इसके अतिरिक्त विभाग के सभी गुरुजनो से प्राप्त उत्साहवर्धन एव आशीष हेतु कृतज्ञ हूॅ। इस लोक मे मातृऋण एव

पितृऋण से कोई भी मुक्त नही हो सका तो मै (अल्पज्ञ) इससे किस प्रकार मुक्त होने के विषय मे सोच सकती हूँ। क्योकि जिस स्वर्गादपिगरीयसी, ममतामयी माँ श्रीमती **शकरावती शुक्ला** तथा जिस महान पूजनीय पितृचरण **श्री मुसाफिर शुक्ल** (खण्ड विकास अधिकारी, अवकाश प्राप्त) के स्नेहासिक्त वात्सल्य मे मेरा पालन पोषण हुआ, तथा जिन्होने मेरे अध्ययन के प्रति सदैव महत्वपूर्ण प्रेरणाएँ दी, उनके प्रति कृतज्ञता तथा आभार प्रदर्शित करना उनके गरिमा मण्डित स्थान की उपेक्षा मात्र प्रतीत होती है। इसी सन्दर्भ मे सर्व प्रथम मै अपने परमं प्रिय सम्माननीय मित्र अनुकरणीय **राजेश पान्डेय** (जो दुर्भाग्यवश अब हमारे बीच नही हैं) के प्रति आजीवन ऋणी हूँ। जिनके प्रेरणास्पद विचारो से ही मुझे शोध प्रबन्ध, अल्प समय मे पूर्ण करने मे सहायता मिली। उन्हे मै विशेष रूप से नमन करती हूँ। जिनका कि मेरे बाल्य–काल से अध्ययनावधि पर्यन्त अतुलनीय सहयोग एव उत्साहवर्धन प्राप्त होता रहा। पाण्डेय के प्रति शब्दो मे कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरे लिए असम्भव है, मात्र औपचारिकता निभाना प्रतीत होता है ।

शोघ–क्षेत्र मे, अपने समस्त सहोदर अग्रजो में परम पूज्य सर्व श्री **इन्द्रदेव शुक्ल** (आई० पी० एस०, पुलिस अधीक्षक गोवा), **श्री प्रमोद कुमार शुक्ल** (पी० सी० एस०, उप जिलाधिकारी नरसिहपुर, मध्य–प्रदेश), **श्री सियाराम शुक्ल** (अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद) के प्रति कृतज्ञता एव आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके परम–त्याग, अमूल्य सहयोग भातृत्व एव प्रेरणास्पद तथा मार्ग दर्शक विचारो ने मेरे जीवन को सवारने मे कोई कसर नही छोडी। अपने अन्य भाईयो मे **श्री जगदम्बा शुक्ल**, **डा० आर० पी० शुक्ल** (एम० डी० लखनऊ) **राकेश शुक्ल** के प्रति तथा बडी–बहन **शशि तिवारी** एवं जीजा **डा० सी० एल० तिवारी**, (सहायक साख्यकीय अधिकारी मऊ), भाभी **टी० के० शुक्ला**, **डा० अनुपम मिश्रा** (asst prof psy

अन्य सदस्यो के प्रति भी आभार एव कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिनके अप्रतिम सहयोग एव आशीर्वाद से मेरा शोध–प्रबन्ध निर्वाध रूप से पूर्ण हो सका। मेरे अभिन्न मित्रो मे **ज्योति स्वरूप शुक्ल, अर्चना द्विवेदी** तथा **किरन चतुर्वेदी** का मुख्य रूप से सहयोग रहा है। **प्रो० श्री सुधाशु शेखर शास्त्री** (विभागाध्यक्ष, दर्शन–प्रखण्ड, विश्व विद्यालय, वाराणसी) के प्रति मै अपना आभार प्रकट करती हूँ। जो अनुसधात्री को सदा प्रोत्साहन एव सत्य प्रेरणाएँ देते रहे।

श्री गगा नाथ झा, केन्द्रीय सस्कृत विद्यालय, इलाहाबाद, के **डा० रामानन्द थपलियाल** के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होने अपना अमूल्य सहयोग दिया। **विश्व विद्यालय इलाहाबाद** के पुस्तकालय के प्रति **हिन्दू विश्व विद्यालय सस्कृत कालेज, वाराणसी** के प्रति तथा **राम कृष्ण मिशन पुस्तकालय** के प्रति भी अपना आभार प्रकट करती हूँ।

प्रत्यक्ष एव परोक्ष रूप से शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत करने मे जिन विद्वानो का सहयोग रहा उनके प्रति भी मैं अपना अभार प्रदर्शीत करती हूँ।

टकण कार्य सम्पन्न करने मे **श्री गुलाब मिश्रा** के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ, जिन्होने अपना अमूल्य सहयोग देकर शोध–प्रबन्ध को पूर्णता प्रदान किया ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के शीर्षक की व्यापकता एव गम्भीरता को देखते हुये मेरा यह प्रयास अत्यल्प एव अत्यन्त न्यून प्रतीत होता है, तथापि मेरी इस शाश्वत् समार्चना से दर्शन जगत को कुछ भी परितोष मिलता है तो इसे मै अपने जीवन की सबसे बडी सफलता मानूँगी। इसमे जो कुछ भी बन पडा वह प्रभु की असीम कृपा का ही प्रसाद है तथा जो कमियॉ है उन्हे मेरी बालिकोचित बुद्धि का फल मानकर विद्वत् समुदाय से प्रार्थिनी क्षमा प्रार्थी रहेगी ।

उन सभी विद्वानो की भी विशेष रूप से आभारी हूँ जिनकी रचनाओ और कृतियो का उन्मुक्त उपयोग किया।

दिनाक

स्थान

विनयानवत
वन्दना देवी
वन्दना देवी

सस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

अध्याय– २

(खण्ड–ग)

प्रथम—अध्याय

दर्शन

सामान्य परिचय

मनुष्य स्वभावत एक चिन्तनशील प्राणी है। दार्शनिक विधा से चिन्तन, मनन करना मानव मात्र की मूल प्रवृत्ति है। प्राय हम देखते है कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना कोई जीवन मूल्य या दर्शन अवश्यमेव होता है।

'दर्शन' अपने विभिन्न प्रकार के अनुभवो के स्पष्टीकरण का एक प्रयास है और जब यह स्पष्टीकरण दिक्कालातीत स्वरूप का हो जाता है, तब वह 'दर्शन' कहलाने योग्य हो जाता है।

दर्शन शास्त्र के ज्ञान से मनुष्य के ज्ञान का परिष्कार होता है, विचारधारा मे सुदृढता आती है और व्यवहार मे क्राति का अवसर नही आने पाता है। इस तरह से भारतीय दर्शन जीवन का आधार बनने के साथ–साथ ज्ञान विज्ञान के विस्तार मे यह एक अद्भुत सहायक की भूमिका का निर्वाह करता है। बुद्धिमान् प्राणी होने के कारण मनुष्य जिज्ञासु प्रवृत्ति का होता है अतएव सृष्टि की नानाविध विचित्र वस्तुओ को देखकर बौद्धिक मानव ज्ञात करने के लिए सदैव उत्सुक तथा प्रयत्नशील रहा है।

विश्व के प्राचीनतम वाड्मय ऋग्वेद के नासदीय सूक्त के प्रणयन काल से ही मनुष्य की प्रवृत्ति के उद्भूत होने के प्रमाण मिलते है। नासदीय सूक्त का द्रष्टा ऋषि कहता है "को अद्वा वेद क इह प्रवोचत्। कुत अजाता कुत इय विसृष्टि[1]" श्वेताश्वतर उपनिषद् के १/१ मे भी कुछ इसी प्रकार का वर्णन मिलता है जो जगत्कारण की मीमासा से सबधित मौलिक प्रश्नो की व्याख्या करता है–

कि कारण ब्रह्म कुत स्म जाता जीवाय केन क्व च सप्रतिष्ठा।
अधिष्ठिता केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्।।

(श्वेता० ६/६)

---

[1] वेदान्तसार –सदानन्द योगीन्द्र।

दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति दृश् 'धातु' 'ल्युट्' प्रत्यय से निष्पन्न है। (दृश्+ल्युट् अन्) जिसका अर्थ है 'देखना' 'दृश्यते इति दर्शनम्'। इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो देखा या जाना जाय वह दर्शन है। अब प्रश्न उठता है कि हम कौन हैं, कहाॅ से आये है। इस सर्वतो दृश्यामान् जगत् का वास्तविक स्वरूप क्या है? इसकी उत्पत्ति किस प्रकार से हुई? इसकी सृष्टि का कौन कारण है? यह सप्रयोजन है या निष्प्रयोजन, यह चेतन है या अचेतन? ईश्वर क्या है? ईश्वर का स्वरूप क्या है? तथा ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करने मे प्रमाण क्या है? जीवन का परम उद्देश्य क्या है? सत्ता का स्वरूप क्या है? ज्ञान का साधन क्या है? ज्ञान की प्रामाणिकता और सीमा क्या है शुभ और अशुभ क्या है? इस लौकिक जगत मे हमारे लिये कौन से कार्य कर्तव्य है? जीवन को सुचारु रूप से व्यतीत करने के लिये कौन सा सुन्दर साधन मार्ग है? आदि प्रश्नो का समुचित उत्तर देना दर्शन का प्रधान ध्येय है। इस प्रकार सक्षेप मे कह सकते हैं कि भारतीय दर्शन दो प्रमुख विषयो से सम्बन्धित है–

(१) आध्यात्म विद्या या मोक्ष शास्त्र से तथा

(२) ज्ञानमीमांसा अथवा प्रमाण–शास्त्र से है।

इस प्रकार दर्शन उपर्युक्त सभी प्रश्नो का तर्कत युक्तिपूर्वक उत्तर देने का प्रयास है। जिसमे भावना या विश्वास प्रधान न होकर बुद्धि ही मुख्य होती है।

दर्शन को शास्त्र सज्ञा से भी अभिहित किया जाता है। किन्तु मुख्य प्रश्न उठता है कि, शास्त्र क्या है? 'शास्त्र' शब्द की व्युत्पत्ति आगम ग्रन्थो मे इस प्रकार बतलाई गई है।

"शासनात् शसनात् शास्त्र शास्त्रमित्याभिधीयते।
शासनं द्विविधं प्रोक्त शास्त्रलक्षणवेदिभि ।।
शसन भूतवस्त्वेकविषय न क्रियापरम् ।।"

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार–शास्त्र की व्युत्पत्ति दो धातुओ से हुई है–

१–शास् = आज्ञा करना तथा **२–शस** = प्रकट करना या वर्णन करना शासन करने वाले शास्त्र विधि रूप तथा निषेध रूप होने से दो प्रकार के होते है श्रुति तथा स्मृति प्रतिपादित कार्य अनुष्ठान करने योग्य है (विधि) तथा निन्दित कर्मकलाप सर्वथा हेय है (निषेध)। अत शासन अर्थ मे शास्त्र शब्द का प्रयोग धर्मशास्त्र के लिये उपर्युक्त प्रतीत होता है। शसक शास्त्र अर्थावबोधक शास्त्र वह है जिसके द्वारा वस्तु के सच्चे स्वरूप का वर्णन किया जाय। शासन शास्त्र क्रिया परक होता है। पर शसक शास्त्र ज्ञान परक होता है शंसक शास्त्र के अर्थ मे ही शास्त्र का प्रयोग दर्शन शब्द के साथ होता है। धर्मशास्त्र कर्तव्याकर्तव्य का प्रधानतया विधान करने मे 'पुरुष परतत्र' है। दर्शन–शास्त्र वस्तु के स्वरूप का प्रतिपादक होने से वस्तुतत्र है।

इस प्रकार दूसरे शब्दो मे दर्शन शब्द का अर्थ ही है "साक्षात् देखना अर्थात् परमतत्त्व का साक्षात्कार या अपरोक्षानुभव"। दर्शन शब्द के अर्न्तगत ही साक्षात्कार के साधनो का जैसे श्रुति और तर्क का भी समावेश हो गया है। "दर्शन साक्षात्करणम् अपि च दृश्यते अनेन इति दर्शनम्" ज्ञान प्राप्त करने के भिन्न–भिन्न साधन हो सकते हैं, किन्तु सबसे निश्चित और विश्वसनीय उपाय है "प्रत्यक्ष", प्रत्यक्ष दो शब्दो से बना है **प्रति+अक्ष** अर्थात् ऑख से देखना। इन्द्रियो के भेद से प्रत्यक्ष के भी पाच भेद है जिनमे चक्षुरूप इन्द्रिय के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है वही ज्ञान सबसे ज्यादा बढकर प्रामाणिक माना जाता है। इसलिये जहा ज्ञान की प्रामाणिकता और दृढता के सम्बन्ध पर विशेष बल देना होता है, वहा दर्शन शब्द का ही प्रयोग सर्वथा उचित है, और जिसके द्वारा देखा जाय अर्थात् जो आख से देखा जाय यही उसका साक्षात् अर्थ करना उचित है। देखना क्रिया चक्षु के द्वारा ही सभव है अन्य इन्द्रियो से नही। कुछ विद्वानो के विचार मे प्राकृतिक, बौद्धिक या आध्यात्मिक जगत के बहुत से तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म हैं जिनको चक्षु के द्वारा देखा जाना सभव नही होता है। इसलिए दर्शन शब्द का ज्ञान प्राप्त किया जाना यही अर्थ करना उचित है। प्रतिपक्षी का यह विचार भी कुछ अश मे

तो सत्य है किन्तु यह भी सत्य है कि स्थूल और सूक्ष्म दोनो प्रकार के पदार्थ दर्शन शास्त्र के विषय है और परम तत्त्व की प्राप्ति के लिये दोनो का साक्षात्कार आवश्यक है। इसलिये चार्वाक, न्याय वैशेषिक आदि स्थूल दृष्टि वाले दर्शनो मे स्थूल पदार्थो के तथा साख्य, योग, वेदान्त आदि सूक्ष्म दृष्टि वाले दर्शनो मे सूक्ष्म पदार्थ को देखने के लिये जो उपाय बताये गये है उसे 'प्रज्ञाचक्षु' 'ज्ञानचक्षु' आदि नामो से सम्बोधित किया जाता है। इस प्रकार दर्शन मे दोनो प्रकार के चक्षुओ की आवश्यकता होती है। सूक्ष्म पदार्थो को देखने के लिये सूक्ष्म नेत्रो की तथा स्थूल वस्तुओ को देखने के लिये स्थूल नेत्रो की। यही कारण है कि उपनिषदो मे 'दृश्' धातु का ही प्रयोग किया है और यही भाव भारतीय दर्शन के 'दर्शन' शब्द मे भी है। चाक्षुष प्रत्यक्ष के अभाव मे किसी भी विषय का निश्चय रूप से ज्ञान सभव नही है।

इस प्रकार दार्शनिको ने दर्शन शब्द का असाधारण या विशिष्ट अर्थ ही स्वीकार किया है। दर्शन दृश्यावलोकन नही है, अपितु तत्त्वावलोकन है, इसलिये इसे तत्त्वदर्शन भी कहते है। परम तत्त्व और चरमसत्य मे अभेद रखने वाला ही दार्शनिक है।

डा० वी० एन० सिह–डा० आशा सिह ने भारतीय दर्शन नामक अपनी पुस्तक मे लिखा है कि दर्शक केवल दो ऑखो (चक्षुओं) से देखता है। दार्शनिक को तृतीय नेत्र (दिव्यदृष्टि) होती है। जिससे वह तत्वबोध या सत्योपलब्धि करता है। तीसरा नेत्र तो दिव्यचक्षु है जिससे अनन्त और अपार का बोध होता है। साधारण ऑखो से मनुष्य असीम और शान्त वस्तुओ को देखता है, परन्तु असीम और अनन्त के रहस्योद्घाटन के लिये असाधारण (अलौकिक) आन्तरिक (दिव्य) दृष्टि की आवश्यकता है।

सत्य की प्राप्ति मे एक मात्र सहायक की भूमिका आन्तरिक दृष्टि ही होती है। क्योकि ससार मे सत्य असत्य से आवृत्त या ढका है। इस आवरण को अनावृत करना ही आन्तरिक दृष्टि (दर्शन) का कार्य है। वेद के एक मत्र मे सत्य के अनावृत होने की क्रिया को एक रूपक द्वारा स्पष्ट किया गया है–

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहित मुखम्।

पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।"[1]

अर्थात सूर्यमण्डल मे सत्य (तत्त्व ब्रह्म) का मुख प्रकाशमय पात्र से ढका है। हे पूषन्! मुख्य सत्याधर्मी को आत्मा की उपलब्धि के लिये तू उसे उघाड दे अर्थात पात्र को सामने से हटा (जिससे मुझे सत्य तत्त्व का साक्षात्कार हो सके)।

ईशोपनिद् के उपर्युक्त मत्र से स्पष्ट होता है कि सत्य को अनावृत कर तत्त्व का साक्षात्कार करना ही दर्शन है। चर्मचक्षुओ से सत्य का साक्षात्कार न होकर आन्तरिक चक्षुओ से होता है।

गीता मे दिव्यचक्षु का वर्णन मिलता है। शोक सागर मे निमग्न और मोहान्ध अर्जुन को श्रीकृष्ण स्वजन सखा सहायक और सरक्षक दिखलायी पडते थे। ग्यारहवे अध्याय मे भगवान कृष्ण ने उन्हे दिव्य दृष्टि प्रदान की–

"दिव्य ददामि ते चक्षु पश्य मे योगमैश्वरम्।"[2]

दिव्य दृष्टि प्राप्त होने के बाद अर्जुन को अब श्रीकृष्ण सगा सम्बन्धी ही नही परम पुरुष, पुराण पुरुष, परमात्मा, परमपिता, देव, देवाधिदेव, महादेव, सम्पूर्ण सृष्टि के कर्त्ता, धर्ता और संहर्ता सबकी गति, स्थिति और विनाश के कारण दिखालायी देने लगे। अब अर्जुन सभी भूतो मे भगवान् (कृष्ण) और भगवान् (कृष्ण) मे सभी भूतो को देखने लगे। यह दिव्यदर्शन का ही फल है।

"पश्यामि देवास्तव देव देहे सर्वास्तया भूत विशेष सधान्।

ब्रह्माणभीशकमलासनस्थ मृषीश्च सर्वानु रगाश्च दिव्यान्।।" गीता ११/१

भारतीय दर्शन का आरम्भ या उत्पत्ति

बहुधा दार्शनिको के मतानुसार भारतीय दर्शन की उत्पत्ति का प्रबल कारण आध्यात्मिक असतोष है। चार्वाक दर्शन को केवल छोडकर सभी भारतीय दार्शनिक

---

[1] ईशोपनिषद् मत्र १५

[2] गीता ११/८

ससार को असार ससारिक सुख को क्षणिक और अनित्य मानते है। सारा जीवन दुख से पूर्ण है ('दुखमेवसर्वविवेकिन'– योग सूत्र) इस प्रकार दुखो से मुक्ति पाना ही मानव का कर्तव्य है। महात्माबुद्ध के चार आर्य सत्य मे प्रथम आर्यसत्य ही दुख है। भगवान बुद्ध ने उपदेश देते हुये कहा है <u>भिक्षुओ</u> चिरकाल तक माता के मरने का दुख सहा है, सम्पत्ति के विनाश का दुख सहा है। उन माता के मरने का दुख सहने वालो ने संसार मे बार–बार जन्म लेकर प्रिय के वियोग और अप्रिय के संयोग के कारण रो–पीटकर ऑसू बहाए है। इस प्रकार <u>भिक्षाओ</u> दीर्घकाल तक दुख का अनुभव किया है। बडी–बडी हानियॉ सही है। <u>पूमसान</u> भूमि को पाट दिया है। अब तो सभी सस्कारो से निर्वेद प्राप्त करो, वैराग्य प्राप्त करो, मुक्ति प्राप्त करो।

भारतीय दर्शन के इस शोक, दुखमय दृष्टि को देखकर ही पाश्चात्य दार्शनिक इस पर निराशावादी होने का आरोप लगाते है, किन्तु यह आरोप उचित नहीं है, निराशावाद भारतीय दर्शन का केवल प्रारम्भिक स्वरूप है, अन्तिम स्वरूप नहीं। किन्तु यह भी विचारणीय है कि भारतीय दार्शनिक दुखो को देखकर (बताकर) मौन नहीं हो जाते है बल्कि उसको दूर करने का उपाय भी बताते है।

भगवान बुद्ध के चार आर्य सत्यो मे जहॉ पहला आर्य सत्य यह कहता है कि "**दुख है**" वही दूसरा दुख का कारण, तीसरा दुख का निरोध और चतुर्थ दुख निरोध का मार्ग है

इस प्रकार बुद्ध ने कहा है कि भिक्षुओ चार आर्य सत्यो को भली–भॉति जानने के कारण दीर्घकाल से मेरा और तुम्हारा ससार मे चक्कर काटना और दौडना जारी रहा है। अविद्या मे पडकर जन्म–मरण के चक्कर मे सभी लोग फसे रहते हैं। दुखो का अन्त ही निर्वाण है और मोक्ष सभी प्रकार के क्लेशो का अन्त है।

सारांशत स्पष्ट है कि भारतीय दार्शनिक जीवन को आध्यात्मिक, अधिभौतिक अधिदैविक दु खो से परिपूर्ण मानकर ही दर्शन मे प्रवृत्त होता है और दु ख निवृत्ति का मार्ग भी खोज निकालता है–

"दु ख त्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदघातके द्वेतौ " (स० का० द्ध)

इस प्रकार भारत–वर्ष मे दर्शन का अनुशीलन बडी गभीरता एव सजगता से किया गया है।

मनुष्य इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और उसकी श्रेष्ठता का आधार है उसकी बौद्धिक क्षमता "बुद्धिर्यस्य बल तस्य" अर्थात् जिसके पास बुद्धि है उसी के पास बल है। इस सत्य तथ्य के अनुसार सभी प्राणियो से अधिक बुद्धिमान होने के कारण वह सबसे बलवान भी होता है और बुद्धिबल के कारण वह सम्पूर्ण जगत का शासक बनने की इच्छा करता है। तथा इसी आकाक्षा से इसकी सारी गतिविधियॉ परिचालित होती है। "जानाति, इच्छाति, यतते" या ज्ञान से इच्छा और इच्छा से प्रयत्न। इस प्रकार मनुष्य के सम्पूर्ण प्रवृत्ति चक्र का मूल है। उसके अपने आपके अस्तित्व की धारणा। क्योकि सभी मनुष्यो की यह स्वाभाविक धारणा है कि उसका अपना एक अस्तित्व होता है। और शेष सारा ससार उसी के लिये है।

प्रत्येक मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अपने आत्म–तुष्टि के लिये ही कुछ करता है तो सर्वप्रथम आवश्यक है कि हम क्या है? हमारी अथवा मनुष्य मात्र की वास्तविकता क्या है? मनुष्य क्या है? उसे कोई वस्तु क्यो चाहिये? हम क्या है? हमारे लिये क्या अपेक्षणीय है? इस प्रकार के उपर्युक्त विचार से ही हमारे देश मे दार्शनिक चिन्तन का आरम्भ हुआ और यह चिन्तन ही हमारे देश की लोकशिक्षा, सामाजिक सचरना और शासनिक व्यवस्था का आधार बना ।

डा० राधाकृष्णन ने लिखा है– "प्राचीन भारत मे दर्शन का विषय किसी अन्य विषय अथवा कला के साथ जुडा हुआ न होकर सदा ही अपने आप मे एक प्रमुख और

स्वतत्र स्थान रखता था। किन्तु पश्चिमी देशो मे अपने विकास के पूर्ण यौवन काल मे भी, जैसे प्लेटो और अरस्तू के समय मे इसे राजनीति अथवा नीति शास्त्र जैसे किसी अन्य विषय का सहारा लेना पडा। मध्यकाल मे इसे 'परमार्थ विद्या' के नाम से जाना जाता था, 'वेकन और न्युटन' के लिये यह प्राकृतिक विज्ञान था और उन्नीसवी शताब्दी के विचारको के लिये इसका गठबन्धन इतिहास राजनिति एवं समाज–शास्त्र के साथ रहा ।

भारत मे दर्शन–शास्त्र आत्मनिर्भर और स्वतत्र रहा है तथा अन्य सभी विषय प्रेरणा और समर्थन के लिये इसका आश्रय ढूढते है। भारत मे यह प्रमुख विज्ञान है जो अन्य विज्ञानो के लिये मार्ग दर्शक है। क्योकि बिना तर्क–ज्ञान के आश्रय के वे सब खोखले और मूर्खतापूर्ण समझे जाते है। मुण्डकोपनिषद् मे 'ब्रह्मविद्या' (नित्यविषयक ज्ञान) को अन्य सब विज्ञानो का आधार, सर्वविद्या प्रतिष्ठा कहा गया है। **कौटिल्य** का कथन है "दर्शनशास्त्र (आन्वीक्षिकी दर्शन) अन्य सब विषयो के लिये प्रदीप का कार्य करता है। यह समस्त कार्यो का साधन और समस्त कर्त्तव्यकर्मो का मार्गदर्शक है।"[1]

ऐतिहासिक परम्परा मे यदि हम जैन–बौद्ध काल की प्रणालियो का अवलोकन करे तो पाते है कि उस समय दार्शनिक चिन्तन के क्षेत्र मे प्रगति हो रही थी। और यह किसी प्रबल आक्रमण के कारण ही सभव होती है। बौद्ध तथा जैन धर्मो के विप्लव ने भारतीय विचारधारा के क्षेत्र मे एक विशेष ऐतिहासिक युग का निर्माण किया है क्योकि उस समय ब्राह्मण धर्म आदि की कट्टरता से जो अव्यस्था उत्पन्न हो गयी थी इस कुव्यवस्था को दूर कर एक समालोचनात्मक दृष्टिकोण विकसित किया। महान बौद्धविचारको के लिये तर्क ही एक ऐसा साधन था जो समाज मे व्याप्त कुरीतियो को दूर कर सकता था। इस तरह से बौद्ध धर्म ने मस्तिष्क को प्राचीन व्यवधानो के पीडादायी प्रभावो से मुक्त करने मे विरेचन का काम किया।

---

[1] डा० राधाकृष्णन–भारतीय दर्शन

वास्तविक तथा जिज्ञासा भाव नि सृत सशयवाद, विश्वास को उसकी स्वाभाविक नीवो पर स्थापित करने मे सहायक होता है। नीव को अधिक गहराई मे डालने की आवश्यकता का ही परिणाम महान दार्शनिक हलचल के रूप मे प्रकट हुआ और जिससे छ दर्शनो का प्रादुर्भाव हुआ। जिसमे काव्य तथा धर्म का स्थान विश्लेषण और शुष्क समीक्षा ने ले लिया।

रूढिवादी सम्प्रदाय अपने विचारो को सहिताबद्ध करने तथा उनकी रक्षा के लिये तार्किक प्रमाणो का आश्रय लेने को बाध्य हो गये। इस दर्शन का समीक्षात्मक पक्ष उतना ही महत्वपूर्ण हो गया जितना कि अभी तक प्रकल्पनात्मक पक्ष था। क्योकि दर्शन काल से पूर्व सम्पूर्ण जगत के स्वरूप के सबन्ध मे कुछ सामान्य विचार तो अवश्य प्राप्त हुये थे, किन्तु यह अनुभव नही हो पाया था कि किसी सफल कल्पना का आधार ज्ञान का एक समीक्षात्मक सिद्धान्त ही होना चाहिये ।

डा० राधाकृष्णन ने भारतीय दर्शन मे यह स्पष्ट किया है कि समालोचको मे विरोधियो को इस बात के लिये विवश कर दिया कि वे अपनी परिकल्पनाओ की प्रमाणिकता किसी दिव्य ज्ञान के सहारे करे जो जीवन और अनुभव पर आधारित हो। इस प्रकार आत्मविद्या अर्थात् दर्शन को अब आन्वीक्षिकी अर्थात् अनुसधान रूपी विज्ञान का सहारा मिल गया। दार्शनिक विचारो का तर्क की कसौटी पर इस प्रकार कसा जाना कट्टर वादियो को रूचिकर प्रतीत नही हुआ[1]। इस प्रकार जो तर्क की कसौटी पर खरा उतर सके उसे 'दर्शन' का नाम दिया गया।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी जबकि इसके विशेष अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की गई भारत मे एक क्रमबद्ध दर्शन के प्रारम्भ के लिये प्रसिद्ध है और ईसा पूर्व पहली

शताब्दी तक 'आन्वीक्षिकी' के नाम के स्थान पर दर्शन शब्द प्रयुक्त होने लगा। महाभारत मे भी कहा गया है कि[1]–

"सोऽप्ययोग पञ्चरात्र वेदा पाशुपत तथा।

ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नाना मतानि वै।।"

रामायण मे "आन्वीक्षिकी" को आदर का स्थान न देकर निन्दित ही माना गया है क्योकि यह मनुष्यो को धर्मशास्त्रो की आज्ञाओ से विमुख करती है (२/१००/३६)। व्यास का दावा है कि उन्होने आन्वीक्षिकी द्वारा वेद की व्यवस्था की ।

जीवन और दर्शन का सम्बन्ध

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि भारतीय दर्शन और (हमारे) जीवन मे घनिष्ट सम्बध परिलक्षित होता है। ये दोनो एक ही लक्ष्य को सामने रखकर एक ही मार्ग पर साथ–साथ चलने वाले दो पथिक है। इन दोनो की सत्ता का मूल एक ही कारण सैद्धान्तिक रूप हमे दर्शन शास्त्रो मे मिलता है। किन्तु व्यवहारिक रूप तो हमे अपने जीवन मे ही मिलता है और इन दोनो तत्वो के माध्यम से ही परमतत्त्व के पूर्णरूप का अनुभव होता है। दुख का आत्यान्तिक नाश या जन्म–मरण से सदा के लिये मुक्त होना ही तो सभी का चरम लक्ष्य है। अतएव कोई भी कार्य छोटा या बडा इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये ही लोग करते है। इस प्रकार हमारे दर्शन मे जो भी बाते कही गयी है। वे सब एक मात्र इसी चरमलक्ष्य की प्राप्ति के साधन है। इनके द्वारा ही हमे उस परमपद का साक्षात्कार होता है। इसलिये इसको हम 'दर्शन' या 'दर्शनशास्त्र' कहते है। उदाहरणार्थ– जब से जीव अपने पूर्व जन्म के कर्मो के अनुसार सुख–दुख का भोग इस ससार मे आरम्भ करता है। अर्थात माता के गर्भ मे प्रवेश करता है तभी से ही उसे जीव का एक मात्र उद्देश्य होता है कि सुख प्राप्ति हो और दुख की निवृत्ति हो।

---

[1] महाभारत, शान्तिपर्व १०/४५।

जीवन मे धर्म और सामाजिक परम्परा की महत्ता दार्शनिक ज्ञान के मुक्त अनुसरण मे विघ्न उपस्थित नही करती है। यह एक विरोधाभास उपस्थित करता है। किन्तु यह अकाट्य सत्य है, क्योकि जहा एक ओर किसी व्यक्ति का समाजिक जीवन जन्मगत जाति की कठिन रूढि से जकडा हुआ है। वहा ऐसे अपना मत स्थिर करने मे पूरी स्वतत्रता प्राप्त है। कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी जाति, धर्म, सम्प्रदाय मे जन्म हो, तर्क द्वारा वह अपने धर्म सम्प्रदाय की समीक्षा कर सकता है। यही कारण है कि भारत मे विधर्मी या धर्मभ्रष्ट, सशयवादी, नास्तिक, हेतवादी एव स्वतत्र विचारक, भौतिकवादी एव आन्नद वादी सभी फलते–फूलते रहे हैं।

महाभारत मे एक स्थान पर यह उद्धरण मिलता है कि ऐसी कोई भूमि नही जो अपनी भिन्न सम्मति न रखता हो। इस प्रकार भारत मे दर्शन का विकास केवल बौद्धिक जिज्ञासाओ की शान्ति के लिये नही हुआ बल्कि इसका विकास एक विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिये हुआ। यह उद्देश्य था जीवन मे दार्शनिक चिन्तन से प्राप्त ज्ञान को उपयोगी बनाना, दार्शनिक ज्ञान को जीवन की समस्याओ को सुलझाने मे प्रयुक्त करना। इस कारण 'भारतीय दर्शन' 'पाश्चात्य दर्शन' की फिलॉसफी से भिन्न है। जहॉ फिलॉसफी की उत्पत्ति बौद्धिक पिपासा की तृप्ति के लिये हुई है, वहॉ दर्शन जीवन की समस्याओ को हल करने के लिये उत्पन्न हुआ है। यह निर्विवाद सत्य है कि भारतीय दार्शनिक मनीषियो ने तत्त्व–ज्ञान प्राप्त करने के बाद उसे गोपनीय एव रहस्य बनाकर नही रखा, बल्कि उसे जीवन यापन का माध्यम बनाते थे और दूसरो के कल्याण का साधन बनाना चाहते थे। इस सन्दर्भ मे बौद्ध दर्शन मे बोधिसत्व और भारतीय दर्शन मे जीवन मुक्ति की अवधारणा का विकास हुआ। भारतीय दार्शनिको ने तत्वज्ञान को केवल अपने तक ही सीमित नही रखा बल्कि उसे परोपकार के लिये प्रयुक्त किया।

मैक्समूलर का कथन है कि भारत मे तत्वचिन्तन ज्ञान की उपलब्धि के लिये नही अपितु उस परम उद्देश्य की सिद्धि के लिये किया जाता था, जिसके लिये मनुष्य का इस लोक मे प्रयत्न करना सभव है।

दर्शन एव धर्म

सभ्यता के आदिम काल से ही विश्व के सभी देशो मे धर्म की चर्चा होती रही है। कई स्थलो पर धर्म के साथ दर्शन भी जुड गया है। और विश्व की सभी जातियो मे किसी न किसी रूप मे धर्म का अस्तित्व सदा से मान्य रहा है।

धर्म का लोकपक्षीय रूप सदा ही आचार एव व्यवहार का सम्बल लेकर चलता रहा है। बडे विचारको बुद्धिजीवियो और वैज्ञानिको ने अपने जीवन के उत्तर–काल मे किसी अतिप्राकृतिक सत्य या अन्य सार्वभौम सत्ता के प्रति जो आस्था प्रगट की है उससे लगता है कि मानव बिना किसी अतिप्राकृतिक सत्ता के प्रति आस्था रखे जीवन मे चल ही नही सकता है। भारतीय–दर्शन मे चार प्रकार के पुरुषार्थो का वर्णन मिलता है– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म के विषय मे कहा जाता है कि यह मूलरूप से एक रचनात्मक उदात्त वृत्ति है। धर्म एक है, और वास्तव मे धर्म की पहचान इसी से होती है कि वह सार्वलौकिक होता है, व्यक्ति के दृष्टिकोण को विराट बनाता है तथा प्रेम एव सौहार्द के द्वारा ही ससार के समस्त प्राणियो मे एकता के भाव भरने का भावनात्मक प्रयास करता है[1]।

विवेकानन्द साहित्य (द्वितीय खण्ड) मे कहा गया है कि धर्म कही बाहर से नही आता है वरन् व्यक्ति के आभ्यन्तर मे ही उदित होता है। "धर्म" शब्द का प्रयोग किसी एक अर्थ मे न करके भिन्न–भिन्न अर्थो मे किया जाता है "यथा इस शब्द का प्रयोग स्वभाव, कर्तव्य, गुण, सत्कर्म, सत्य, ईमान, सम्प्रदाय, कानून, पुण्य, आदि अर्थों मे होता है। "धर्म" शब्द के अनेक अर्थो मे प्रयुक्त होने के कारण आज आम आदमी धर्म के

---

[1] व्यास, रामनारायण धर्म दर्शन, म० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अका०, भोपाल १९७१ पृ० ५३

सम्बन्ध मे न तो विचारशील मनोवृत्ति बना पाता है। और नही उसे इसकी आवश्यकता अनुभव होती है।

''**धर्म**'' शब्द का अर्थ वस्तुत कर्तव्य, सत्यकर्म या गुण होता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से ''धर्म'' शब्द 'धृ' शब्द से निष्पन्न है जिसका अर्थ है ''धारण करना'' अर्थात वह जो धारण करता है, या किसी वस्तु का अस्तित्व बनाये रखता है वही धर्म है।

महाभारत के कर्ण–पर्व मे धर्म के विषय मे उल्लिखित है –''धारणादधर्ममित्याहु धर्मो धारयते प्रजा'' अर्थात मानव की एक सार्वभौम प्रवृत्ति है और मानव ही एक मात्र धार्मिक प्राणी है।

भारत मे धर्म का आविर्भाव ही व्यक्ति की लौकिक एव परलौकिक उन्नति के लिये हुआ। वैशेषिक सूत्र मे इस प्रकार परिभाषित किया गया है।

''यतो अभ्युदय नि श्रेयस सिद्धि स धर्म'' अर्थात धर्म जीवन की वह विधा है जिससे अभ्युदय (इहलोक मे उन्नति) और नि श्रेयस (मोक्ष) दोनो ही मिले।

इस तरह से धर्म मानवीय अर्थ या अन्वेषण के उस रूप को कह सकते है जो जीवन का लक्ष्य लोकोत्तर और परमचैतन्य की स्थिति की प्राप्ति को या परमचैतन्य के बोध की योग्यता प्रगति को स्वीकार करता है। किन्तु यह ध्यातव्य है कि भारत मे कभी भी दर्शन धर्म का दास नही रहा है। यहा दर्शन और धर्म मे पृथक्करण रहा है किन्तु नितान्त सम्बन्ध विच्छेद कभी भी नही रहा ।

भारत मे जीवन की प्रगति मे सहायक होना ही दर्शन और धर्म को सम्बद्ध करता है। इसलिये भारतीय दर्शन सम्पूर्ण मानवता को दु खो से मुक्ति दिलाने के लिये सदा प्रयत्नशील रहा है। इसलिये भारत मे व्यक्ति के परमलक्ष्य के रूप मे मोक्ष की जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी वह कही–कही दुःख निवृत्ति मात्र है तो कही दु ख निवृत्ति के साथ–साथ आनन्द प्राप्ति की भी अवस्था है। इसलिये भारतीय विचारको ने अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह को मानव का आचरण घोषित किया। जैन दर्शन

का तो यहॉ तक कहना है कि "जीवन ज्ञान के लिये नही है बल्कि ज्ञान जीवन के लिये है। "अत यह स्पष्ट है कि भारतीय विचारधारा प्राणिमात्र के सुख एव कल्याण के लिये विकसित हुई। इसकी अभिव्यक्ति "सर्वे भवन्तु सुखिन" "वसुधैव कुटुम्बकम" जैसे उद्घोषो मे होती है।

इस प्रकार भारतीय दर्शन का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारतीय विचारको ने अपने विचारो को इस मत्र से उद्घोषित किया कि "दर्शन वही है जो जीवन की अभिव्यक्ति का साधक है और जो जीवन का साधक नही है वह दर्शन नही है। इसको एक उदाहरण के द्वारा सुगमता से अभिव्यक्त किया जा सकता है। जिस प्रकार भिन्न भिन्न नदियो के भिन्न–भिन्न मार्ग होते है, किन्तु गतव्य (मजिल) लक्ष्य सागर होता है, उसी प्रकार विचारधाराओ का केवल एक लक्ष्य है प्रणिमात्र का कल्याण।

विभिन्न क्षेत्रो मे धर्म–दर्शन परस्पर पूरक भी है। दर्शन सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। जबकि धर्म व्यवहारिक है इस प्रकार सिद्धान्त के अभाव मे व्यवहार का कोई महत्त्व नही होता है। जहॉ तक व्यक्ति तथा समाज के जीवन का प्रश्न है। इसे धर्म तथा दर्शन दोनो ही ऊँचा उठाने का प्रयास करते है। किन्तु यह भी सत्य है कि कही–कही धर्म व्यक्ति तथा समाज को छति पहुॅचायी है। परन्तु अच्छा धर्म तथा दर्शन सदैव मनुष्य एव समाज के लिये हितकर ही होता है। यदि कहा जाय परम सत्य की खोज के लिए धर्म तथा दर्शन को परस्पर सहयोग करना होगा तो अनुचित नही होगा। निर्विवाद रूप से तथा अक्षरश यह भी सत्य है कि जहॉ दर्शन का अन्त होता है वहॉ धर्म का प्रारम्भ होता है। **बेकन** ने लिखा है कि, "यह सच है कि दर्शन का अल्पज्ञान मनुष्य को नास्तिकता की ओर ले जाता है, लेकिन दर्शन की गहराई मे उतरने पर व्यक्ति धर्म की ओर लौट आता है।" इस प्रकार धर्म को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए धर्म की नीव मजबूत तथा बुद्धि का सुदृढ आधार आवश्यक है।

दर्शन का विषय

इस प्रकार भारतीय दर्शन के अध्ययन से यह निसन्देह स्पष्ट होता है कि दर्शन का विषय बाह्य दृश्यो का अवलोकन ही नही वरन् आन्तरिक दृष्टि से तत्त्व–बोध भी करना है। इस प्रकार इसका विषय भी बाह्य ही नही वरन् आन्तरिक आत्मा है। इसलिए दर्शन को "आत्मदर्शन" भी कहा जाता है क्योकि यह आत्मसाक्षात्कार का एक मुख्य कारण है।

आत्म–तत्त्व को ही भारतीय दर्शन मे परम–तत्त्व तथा परम–सत्य के पर्याय से भी उद्बोधित किया जाता है। इस परम–तत्त्व को सभी आस्तिक दर्शनो ने अनेक नामो से इडिगत किया है– यथा यह अजर, अमर, अमृत और सर्वथा असंसारिक सर्वव्यापी, ज्योतिस्वरूप, नित्य, निरवयव और निर्विकारी और शुद्ध रूप चैतन्य है।

आत्मा से सम्बद्ध इसी बात को बृहदारण्यक मे बडे सुन्दर ढग से व्यक्त किया गया है। जिसमे यह कहा गया है कि यह स्थूल (भौतिक) और सूक्ष्म (मानसिक) इन्द्रियो से भिन्न है। जिसका वर्णन करने मे वाणी भी असमर्थ है यह वाणी को अभिव्यक्ति की शक्ति प्रदान करता है जिसे मन ग्रहण नही कर सकता और जो मन मे ग्रहण करने वाली शक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार यह आत्म–तत्त्व शरीर का स्वामी और इन्द्रियो का अधिष्ठाता है। इस आत्म–तत्त्व का ज्ञान आध्यात्मिक ज्ञान है और आत्म–तत्त्व का ज्ञाता ही सच्चा दार्शनिक और सम्यक् द्रष्टा है। यह परमसत् आत्म–तत्त्व भौतिक जड–जगत की अनात्म, अतत्व और असत्य ससारिक ज्ञान से सर्वथा भिन्न है। अमरत्व से अतिरिक्त सभी सासारिक वस्तुएँ अनात्म, अतत्त्व और असत्य है। मै शरीर नही शरीरी हूँ, देह नही देव हूँ, जीव नही शिव हूँ। इस प्रकार आन्तरिक और आध्यात्मिक आत्मतत्व का ज्ञान ही दर्शन का मुख्य विषय है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि– 'आत्मावरे द्रष्टव्य श्रोतव्य मन्तव्य निदिध्यासितव्य:'।

अर्थात् आत्मतत्त्व का दर्शन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना चाहिए अर्थात् अनात्म वस्तु तो अविषय है।

प्रयोजन

'दर्शन का स्वरूप आध्यात्मिक है, विषय भी अध्यात्मिक है तो इसका उद्देश्य भी आध्यात्मिक ही होना चाहिए। नाना रूपात्मक प्रतिक्षण विलक्षण रूप धारण करने वाले पदार्थो के अन्तस्तल मे विद्यमान रहने वाली एकरूपता, अनेकता के भीतर एकता को खोज निकालना प्रचीन कुशाग्र बुद्धि वाले वैदिक ऋषियो की दर्शन शास्त्र को बहुमूल्य एव महत्त्वपूर्ण देन है। जिस प्रकार परिर्वतनशील जड जगत के भीतर एक अपरिर्वतन शील तत्त्व विद्यमान है। उसी प्रकार इस पिण्ड के भीतर एक अपरिर्वतनशील तत्त्व की सत्ता विद्यमान है। और इस जगत की अपरिर्वतनशील सत्ता ब्रह्म है तथा पिण्ड की नियामक सत्ता की सज्ञा आत्मा है।

प्राचीन दार्शनिको ने ब्रह्म तथा आत्मा की एकता स्वीकार की है। ब्रह्म कोई अप्राप्य पदार्थ नही है, बल्कि प्रत्येक प्राणी अपने भीतर नियामक शक्ति के रूप मे आत्मा की सत्ता का अनुभव प्रत्येक क्षण करता है। इसलिये ब्रह्म को जानने से पूर्व आत्मा का ज्ञान होना अति आवश्यक होता है क्योकि आत्मा को जान लेने पर ब्रह्म का ज्ञान स्वयमेव हो जायेगा। "आत्मान विद् ब्रह्म"।

श्रुति भी मुक्त कठ से यह उपदेश देती है कि "आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करो "आत्मावाऽरेद्रष्टव्य"

मुक्ति या मोक्ष की कल्पना मे पर्याप्त भेद होने पर भी विभिन्न दार्शनिक इस विषय में नितान्त एकमत हैं– "आत्मन स्वरूपेणवस्थितिमोक्ष"

इस प्रकार आत्मा का ज्ञान कराना चाहे वह ब्रह्म से भिन्न हो या अभिन्न हो प्रत्येक दर्शन का लक्ष्य है। ससार की सभी वस्तु अपने लिये प्यारी नही होती बल्कि आत्मा के लिये। अतेव सबसे प्रिय वस्तु आत्मा ही है "इस लिये इस आत्मा का, प्रत्येक

व्यक्ति कोवण करना चाहिये, श्रुतिवाक्यो से मनन करना चहिये, तार्किक युक्तियो से निदिध्यासन करना चाहिये और योग प्रतिपादित उपायो के द्वारा निरन्तर ध्यान करना चाहिये"[1] क्योकि आत्मा के दर्शन, श्रवण, मनन तथा ध्यान से ही सब कुछ जाना जा सकता है।

"आत्मनोवाऽरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेद सर्व विज्ञात भवति।"[1]

(बृहदा० २१/८)

आत्मा साधन के इन त्रिविध उपायो मे मुख्य उपाय मनन का निरूपण भारतीय दर्शनो की सहायता से ही किया जा सकता है। इसलिये दर्शन के साथ भारतीय धर्म का नितान्त घनिष्ठ सम्बन्ध है ये एक दूसरे के परस्पर पूरक भी है।

इस प्रकार दर्शन का मुख्य प्रयोजन मरणधर्मा मनुष्य को अमर बना देना है। अमरतत्व किसी प्रकार का साधारण लाभ न होकर असाधारण लाभ है। इसको प्राप्त कर लेने के बाद कुछ भी प्राप्तव्य नही रह जाता है। अत यह प्राप्तव्य की प्राप्ति है। क्योकि ऐसा नया कुछ नही होता है। बल्कि आज्ञानता के कारण ज्ञात नही हो पाता है। सभी प्रकार के बन्धनो से सर्वथा, सर्वदा विनाश है, अत मोक्ष कहलाता है। यह मृत्यु नही वरन् मृत्यु पर विजय प्राप्त करना है।

मृत्यु तो शरीर का अन्त है और मोक्ष जन्म–मरण का अन्त है। जन्म और मृत्यु के पाश मे पडा हुआ मनुष्य, पशु–पक्षी, मनुष्य देवयोनियो मे भटकता फिरता है। और विभिन्न शरीर को धारण करता हुआ भ्रमण करता है। किन्तु जब अमरत्व का ज्ञान हो

जाता है तब तक शोक सागर को पार कर जाता है– "तरति शोक आत्मवित्" (छान्दो० ४/१/३)

---

[1] श्रोतव्य श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपत्तिभि । मत्वा तु सतत ध्येय एते दर्शनहेतव ।।

मुण्डकोपनिषद् मे बतलाया गया है कि उस पारावर परमात्मा का साक्षात्कार कर लेने पर हृदय की ग्रन्थि टूट जाती है। सारे सशय नष्ट हो जाते है तथा समस्त कर्म क्षीण हो जाते है।[1]

ईशोपनिषद् मे कहा गया है कि उस अवस्था मे एकत्व देखने वाले पुरूष को शोक और मोह नही हो सकता है– "तत्र क मोह क शोक एकत्वमनुपश्यत" (ईशोप०७)। मोक्ष परमानन्द की प्राप्ति है और इस परमानन्द का साधक और सहायक ज्ञान ही दर्शन कहलाता है। दर्शन ही सम्यक ज्ञान है। और सम्यक ज्ञान ही मोक्ष का साधक है।

श्रुति के अनुसार सच्ची विद्या मोक्ष प्राप्ति मे सहायक है। अर्थात् यथार्थ विद्या से अमृतत्त्व की प्राप्ति होती है। –"विद्यया अमृतमश्नुते" (ईशोप० ११)

श्रुति, स्मृति आदि मे दर्शन का मुख्य प्रयोजन सासारिक आवागमन से मुक्ति है। महात्मा मनु ने दर्शन को सम्यक दर्शन मानते है और इसका प्रयोजन आवागमन अवरोध स्वीकार करते हैं ।[2]

भारतीय दर्शनों का काल विभाजन

भारतीय दर्शन मे गौतम बुद्ध (४८८ ई० पूर्व–५६८ ई० पूर्व) और शङ्कराचार्य (७८८ ई०) युगान्तकारी महापुरुष हुये है। इन दोनो को सीमा मानने से भारतीय दर्शन के इतिहास को निम्नलिखित युगो बाटा जा सकता है।

प्रथम युग बुद्धपूर्व युग है– इसमे वेद, उपनिषद्, साख्य, चार्वाक और जैन तीर्थकरो के दर्शन आते है। इस काल का साख्य साहित्य उपलब्ध नही है। जैन धर्म के इस काल मे दार्शनिक सूत्रो और भाष्यो की रचना नही हुई। इस काल मे महाभारत और रामायण जैसे महाकाव्यो की भी रचना हो रही थी किन्तु समाप्त नही हुआ था।

---

[1] भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसशया। क्षीयन्ते चास्य कर्मणि तस्मिन्दृष्टे पराऽवरे ।। (मु० उप० २/२/८)

[2] सम्यक दर्शन सम्पन्न कर्मभिर्निबध्यते। दर्शन विहीनस्तु ससार प्रतिपद्यते ।। (मनुसहिता ६/७४)

दार्शनिक दृष्टि से साख्य, चार्वाक और भगवद्गीता के दर्शन इस काल मे बन चुके थे। भगवद्गीता महाभारत का अश है अपने मूलरूप मे वह बुद्ध पूर्व की रचना है।
(२) दुसरा युग बुद्धोत्तर युग है– यह ईसा पूर्व छठी शताब्दी के अविर्भाव तक चलता है। साख्य के अतिरिक्त अन्य सभी दर्शनो का इस युग मे उद्भव और विकास हुआ। पहले बौद्ध दर्शन के चार निकायो का वैभाषिक, सौत्रान्तिक, माध्यमिक आैर योगाचार के क्रम से विकास हुआ। इसका समय ई० पूर्व पहली शदी से चौथी शदी ईस्वी है। इसी समय पहले जैमिनि के मीमासा सूत्र और कणाद के वैशेषिक सूत्र की रचना हुई। फिर गौतम के न्याय सूत्र और बादरायण के ब्रह्म–सूत्र की रचना हुई। इसी समय शबर (मीमासा) ईश्वरकृष्ण (साख्य) वात्सायन और उद्योतकर (न्याय), प्रशस्तपाद (वैशेषिक) गौणपाद (बेदान्ती) तथा समन्तवाद और पूज्यपाद (जैन) उच्च कोटि के दार्शनिक हुये। बौद्धो मे इस युग मे नागार्जुन, असग, वसुबन्धु, दिड्गनाग और धर्मकीर्ति ये उच्चकोटि के दार्शनिक हुये।

बुद्धोत्तर युग विविध दर्शन–शास्त्रो का युग है पहली शती ई० पूर्व से लेकर सातवी सदी ईसवी तक भारत मे दार्शनिक चिन्तन का बहुत अधिक विकास हुआ। इसी काल मे सभी दर्शनो मे एक दूसरे का घात–प्रतिघात सहा और अपने रूप को निखारा वे सब एक दूसरे से शास्त्रार्थ करते रहे।

३ तीसरा युग शकर युग है– यह आठवी सदी का काल है इस युग मे कुमारिल और प्रभाकर (मीमासा) शकर (अद्वैत बेदान्त) पद्मपाद (अद्वैत वेदान्त)जैसे उच्च कोटि के दार्शनिक हुये। इस काल के दार्शनिको ने बौद्ध दर्शन का भारत से उन्मूलन कर दिया।

चौथा युग शकरोत्तर युग है– इस युग मे रामानुज, निम्बार्क, महत्व, कल्याण चैतन्य आदि वेदान्ती हुये जिन्होने शकर के मत का खण्डन किया। फिर शकर के अनुयायियो ने बाचस्पति मिश्र, स्वामी विद्यारण्य, श्रीहर्ष, चित्सुख, मधुसूदन सरस्वती

आदि महान दार्शनिक हुये। न्याय मे उद्योतकर साख्य मे वाचस्पति मिश्र और विज्ञान भिक्षु नव्य के गगेश तथा अन्य नैय्यायिक इस युग के महान दार्शनिक हैं ।

भारतीय दर्शनो के काल विभाजन का यह सामान्य रूप–रेखा है परन्तु पूर्वोत्तर काल–विभाग उतना नियमित तथा सुव्यवस्थित नही है।

शङ्करोत्तर युग मे विशेषत वेदान्त का विकास हुआ और बौद्ध दर्शन का पतन हुआ। इस समय वेदान्त मे स्पष्टतया दो मत हो गये– शकर वेदान्त या निर्गुण वेदान्त और सगुण वेदान्त।

शकरोत्तर युग या वेदान्त युग अभी तक चल रहा है। प्रस्थानत्रयी जिसका शकराचार्य ने भाष्य लिखकर उद्धार किया था आज भी दार्शनिको के अध्ययन और चिन्तन का मुख्य विषय है। भारतीय–दर्शन के इन चार युगो को सूक्ष्मता से देखने पर पता चलता है कि प्रथम युग मे प्रधानता वैदिक दर्शन की थी और अवैदिक दर्शन दबा पडा था। द्वितीय–युग मे बौद्ध दर्शन का उदय एव विकास हुआ। उसने बैदिक–दर्शन को दबा दिया। परिणाम स्वरूप वैदिक दार्शनिको ने अपने दर्शनो को खूब सुसगठित किया ओैर बौद्ध दर्शनो से प्रतिस्पर्धा की। इस युग के अन्तिम चरण तक दोनो परस्पर आपस मे घात–प्रतिघात करते रहे ओैर बराबरी पर थे किन्तु तृतीय–युग मे बैदिक–दर्शन और दृढतर हुआ और उसने बौद्ध–दर्शन का उनमूलन कर दिया अन्त के चतुर्थ युग मे बैाद्धिक दर्शन का फिर जोरो से चहुमुखी–विकास हुआ जब कोई अवैदिक दर्शन उनका आलोच्य न रहा तब वे स्वय एक दूसरे की आलोचना करने लगे। इस तरह पारस्परिक आलोचना करते हुये विकसित होते रहे।

दार्शनिक वांङ्गमय का विकास

यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि पारम्परिक समय मे दर्शन की शाखाऍ किस विधि से उत्पन्न हुई तथा इनका विकास किन प्रभावो के अन्तर्गत हुआ? परन्तु वैदिक युग का अध्ययन करने के पश्चात स्पष्ट हो जाता है कि उपनिषद् काल

मे ही दार्शनिक जिज्ञासा की भावना का आरम्भ हो गया था। जिसमे जिज्ञासा का आधार यह था कि आत्मा ही वह सत्य है जिसकी खोज करना आवश्यक है। इसमे आत्मा को 'नेति–नेति' रूप मे समझाया गया है। उपनिषद् काल के पश्चात जैन, बौद्ध जैसे धर्मो का उदय पाखण्डो के विरूद्ध हुआ किन्तु इसका प्रसग उपनिषदो मे प्राप्त नही होता है। इस प्रकार उपनिषदो के प्रणेता ऋषियो के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो मे भी दार्शनिक भावना का उदय हो चुका था किन्तु इसका भी कोई ठोस प्रमाण प्राप्त नही होता है। ऐसा स्पष्ट होता है कि हिन्दू दर्शन जिन ऋषियो द्वारा प्रतिपादित किया गया, वे यद्यपि उपनिषदीय विचारधारा को मानते थे तो भी विरोधी विचारधाराओ से एव अन्य नास्तिक सिद्धान्तो का भी उन्हे अनुमान था। इन ऋषियो एव उनके शिष्यो की सगोष्ठियो मे विरोधी एव नास्तिक विचारधारा के ऊपर तर्कत वाद विवाद होता था। और युक्तियो से विरोधी मतो का खण्डन करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। इसी कालक्रम मे गौतम तथा कणाद जैसे ऋषियो मनीषियो ने इन सारे वाद विवादो को क्रमश व्यवस्थित कर दार्शनिक शाखाओ को मूर्त रूप दे दिया और इस पर अनेक सूत्रो की रचना की जिससे दर्शन शास्त्र की विभिन्न शाखाओ का ज्ञान होता है। इस प्रकार विरोधी पक्षो के मतो का भी स्थान–स्थान पर वर्णन उपलब्ध होता है। विपक्षी मतो के निरन्तर सघर्ष के कारण भारतीय दर्शन शास्त्रियो को ऐसा अभ्यास हो गया था कि वे अपने सभी ग्रन्थो को शास्त्रार्थ खण्डन–मण्डन या पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष के रूप मे ही लिखा करते थे और लेखक यह कल्पना कर लेता था कि जो कुछ वह कहेगा उसके सम्बन्ध मे विपक्षी मतावलम्बी अवश्य कोई प्रश्न उठायेगे। इस प्रकार शकाओ, तर्को, वाद–विवादो आदि से दर्शन शास्त्र का क्रमश विकास हुआ। सक्षेपत कोई दार्शनिक मत दूसरे मतो के प्रसगो के बिना दिये हुये स्थापित नही किया जा सकता है।

<u>एस० एन० दास गुप्ता</u> ने अपनी पुस्तक '<u>भारतीय दर्शन का इतिहास</u>' मे लिखते है कि– अपने युग मे प्रत्येक दर्शन के विरोधी विचारधाराओ के बीच ऐसा महत्वपूर्ण

स्थान प्राप्त किया कि किसी भी शाखा की न तो उपेक्षा की जा सकती है और न दूसरी शाखा एव विरोधी मतो का गहन अध्ययन किये बिना उनको समझा जा सकता है। यह आवश्यक है कि इन सभी दर्शनो का एक साथ उनके पारस्परिक पक्ष विपक्षो को ध्यान मे रखते हुए एकरूपता के दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाये।

यदि ध्यान से देखा जाय तो यह निर्विवाद रूप से पता चलता है कि भारत मे सभी दर्शनो का विकास यद्यपि एक साथ नही हुआ किन्तु उनमे परस्पर अद्भुत सहयोग है। सभी दर्शन साथ–साथ जीवित रहे है इसका कारण यह है कि भारत मे दर्शन को जीवन का एक अभिन्न अग माना गया है। ज्यो ही एक सम्प्रदाय का विकास होता है त्यो ही उसकी विचारधाराओ को मानने वाले अन्य सम्प्रदाय का भी प्रादुर्भाव हो जाता है। उस दर्शन के समाप्त होने के बाद भी उसके अनुयायियो के द्वारा दर्शन एक पीढी से दूसरी पीढी तक जीवित होता चला जाता है। यही कारण है कि भारत मे दर्शन आज शताब्दियो के बाद भी जीवित है। भारतीय दर्शन के आस्तिक सम्प्रदायो का विकास सूत्र साहित्य के द्वारा हुआ है। सूत्र साहित्यो से होने के कारण दर्शनो की प्रामाणिकता अधिक बढ गई है।

प्राचीन काल मे लेखन–शैली विकसित नही थी। अत जो भी विचारधाराए थी वे मौखिक रूप मे ही थी। किन्तु कालक्रमानुसार बाद मे ये सूत्रो के रूप मे आबद्ध होने लगी और प्रत्येक दर्शन के प्रणेता ऋषियो ने सूत्र साहित्य की रचना की। न्याय दर्शन का ज्ञान गौतम के न्याय सूत्र, वैशेषिक का ज्ञान कणाद के वैशेषिक सूत्र से साख्य का कपिल के साख्य सूत्र जो अप्राप्य है तथा योग का ज्ञान पतजलि के योग सूत्र, मीमासा का ज्ञान जैमिनि के मीमासा सूत्र तथा वेदान्त का ज्ञान वादरायण के 'ब्रह्म–सूत्र' द्वारा प्राप्त होता है।

सूत्र सभी को सरलता से समझ मे नही आ सकते थे क्योकि ये अत्यन्त सक्षिप्त सारगर्भित और अगम्य होते थे। इसलिए इन सूत्रो पर टीकाकारो ने टीकाओ–भाष्यो की

रचना की। यथा न्यायसूत्र पर वात्सायन के वैशेषिक सूत्र पर प्रशस्तपाद के साख्यसूत्र पर विज्ञानभिक्षु के योगसूत्र पर व्यास के, मीमासा सूत्र पर शबर के तथा वेदान्त सूत्र पर शकराचार्य के भाष्य अधिक प्राचीन एव प्रसिद्ध है।

इस प्रकार आस्तिक दर्शनो का विशाल साहित्य निर्मित हुआ। नास्तिक दर्शनो का विकास सूत्र साहित्य से नही हुआ है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि दर्शन का विकास स्थूल से आरम्भ होकर सूक्ष्म की ओर हुआ है।

भारतीय दर्शन और पश्चिमी दर्शन में समानताए और विभिन्नताएँ

प्राय भारतीय दर्शन के बारे मे यह कहा जाता है कि जहॉ एक ओर भारतीय दर्शन अध्यात्मवादी है वही दूसरी ओर पाश्चात्य दर्शन भौतिकवादी है। किन्तु यह अक्षरश सत्य नही है क्योकि पश्चिमी दर्शन बिल्कुल भौतिकवादी नही है। उसकी भी प्रमुख धारा भारतीय दर्शन की प्रमुख धारा के समान अध्यात्मवादी है।

भारतीय और पाश्चात्य दोनो दर्शनो मे प्राय एक जैसे विषयो का विवेचन है। हॉ पश्चिमी–दर्शन मे भारतीय दर्शन के समान पुनर्जन्म और मोक्ष के सिद्धान्त का व्यापक वर्णन नही है। इसका कारण पश्चिमी दर्शन के बारे मे भ्रान्त धारणाए प्रसिद्ध हैं कि जहॉ से पश्चिमी दर्शन का अन्त होता है वहॉ से भारतीय दर्शन का प्रारम्भ होता है। यह तथ्य भी निर्मूल है। दोनो दर्शनो मे प्राय एक जैसे विषयो का विवेचन है। किन्तु यह भी सत्य है कि पुनर्जन्म और मोक्ष वास्तव मे विशुद्ध दर्शन के विषय मे प्रतिपाद्य रूप मे नही है। अत इनको लेकर केवल उपर्युक्त धारणा को स्वीकार नही किया जा सकता है। किन्तु दोनो दर्शनो मे पर्याप्त समानताए होते हुए भी पर्याप्त विषमताए भी है।

भारतीय दर्शन और पाश्चात्य दर्शन मे मुख्य अन्तर यह है कि जहॉ भारतीय दर्शन व्यवहारिक है वहॉ दूसरी ओर पाश्चात्य दर्शन सैद्धान्तिक है। जहॉ पश्चिम मे दर्शन को मानसिक व्यायाम के रूप मे समझा जाता है तथा स्वय ज्ञान प्राप्ति के लिए

प्रयोग किया जाता है इसका विपरीत भारतीय दर्शन का उद्देश्य केवल तात्विक ज्ञान की प्राप्ति न होकर नानाविधि कष्टो दुखो एव बुराइयो से मुक्ति दिलाना है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भारतीय–दर्शन का दृष्टिकोण व्यापक रूप मे व्यावहारिक है सैद्धान्तिक कम है, और पश्चिमी दर्शन सैद्धान्तिक ज्यादा है व्यावहारिक अपेक्षाकृत कम है।[1]

पश्चिमी दर्शन का आरम्भ उत्सुकता एव आश्चर्य से हुआ है जबकि भारतीय दर्शन का आरम्भ आध्यात्मिक असतोष से हुआ है। भारत के दार्शनिको ने विभिन्न प्रकार के दुखो को पाकर उन दुखो के समूल नाश के लिए दर्शन की शरण ली। इसलिए **प्रो० मैक्समूलर** ने कहा– भारत मे दर्शन का अध्ययन मात्र ज्ञान प्राप्त करने के लिए नही, वरन जीवन के चरम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता था।

<u>पाश्चात्य दर्शन मे अनुभव को खण्डित रूप से लिया गया है जबकि भारतीय दर्शन मे अखण्ड रूप मे। पाश्चात्य दर्शन को देखने से स्पष्ट होता है कि यहॉ प्रत्यक्षवाद, अनुमानवाद या युक्तिवाद और प्रतिभावाद या रहस्यवाद की तीन धाराए पृथक चली</u>। यहॉ प्रत्येक दर्शन मे प्रत्यक्ष युक्ति और प्रतिभाज्ञान का प्रयोग होता रहा। जिसके परिणामस्वरूप इस त्रिवेणी सगम से विशुद्ध प्रत्यक्षवाद, युक्तिवाद या प्रातिभज्ञान का विकास न हुआ। मध्ययुग मे हिन्दी, मराठी, तेलगु, कन्नड आदि प्रान्तीय भाषाओ ने रहस्यवाद का विकास अवश्य हुआ किन्तु सस्कृत भाषा मे ऐसा नही हुआ और शुद्ध प्रत्यक्षवाद तथा युक्तिवाद का विकास तो किसी भी भाषा के द्वारा यहॉ नही हुआ। इसका कारण यह है कि यहॉ अनुभव की सर्वागीणता का उपयोग होता रहा है और किसी खण्डित अनुभव को लेकर दार्शनिक सम्प्रदाय की स्थापना को आवश्यक और समीचीन नही समझा गया।

पश्चिमी दर्शन मे प्रातिभवाद और रहस्यवाद को महत्वपूर्ण स्थान नही मिला बल्कि उसको धर्मो के अन्तर्गत ही रखा गया है पाश्चात्य दर्शन की एक विशेषता यह

है कि यह युक्तिवाद को प्रमुखता देता है। किन्तु भारतीय दर्शन ने अनुभव की जिस सर्वागीणता को अपना रखा है उसमे प्रतिभाज्ञान को मुख्य रूप से प्रधानता दी गयी है। किन्तु प्रत्यक्ष तथा युक्ति को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया गया है।

भारत मे दर्शन का चरम उद्‌देश्य मोक्ष प्राप्ति मे सहयता प्रदान करना है। इस प्रकार भारतीय दर्शन "साधन" के रूप मे प्रयुक्त होता है क्योकि इसके द्वारा ही मोक्षानुभूति होती है। इसके विपरीत पश्चिम मे दर्शन को साध्य रूप मे मानते है। जबकि भारत मे इसे साधन मात्र माना गया है।

पश्चिमी दर्शन का दृष्टिकोण वैज्ञानिक है क्योकि वहां के दार्शनिको ने वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया पश्चिमी दर्शन मे विज्ञान की प्रधानता होने के कारण दर्शन और धर्म मे विरोधी सम्बन्ध रहे है। क्योकि पाश्चात्य दर्शन में धर्म की उपेक्षा की गयी है। परन्तु भारतीय दृष्टिकोण धार्मिक है। और भारत मे दर्शन और धर्म दोनो का उद्‌देश्य व्यवहारिक है। मोक्षानुभूति दर्शन और धर्म दोनो का ही लक्ष्य है।

१७ वी शदी के पूर्व पाश्चात्य दर्शन धर्म से प्रभावित था उस समय दार्शनिको ने दर्शन को धर्म से स्वतत्र किया किन्तु तत्काल ही वह भौतिक विज्ञान, गणित, रसायन विज्ञान और जीव विज्ञान से प्रभावित हो गया।

भारतीय दर्शन विज्ञान से कम प्रभावित रहा है। इसका कारण है कि इस पर जितना प्रभाव पाणिनि के व्याकरण शास्त्र और भााषा शास्त्र का पडा है उतना चरक सुश्रुत् के चिकित्सा शास्त्र या आर्यभट्‌ट, भास्कर और बराहमिहिर के गणित और ज्योतिष का नही। पश्चिमी दर्शन पर युकलिड की ज्यामिति का न्युटन की भौतिकी और डार्विन के जीव विज्ञान का पडा है उतना वहा के वैय्याकरणो के व्याकरण और भाषा शास्त्र का प्रभाव नही पडा है। पाश्चात्य दर्शन तथा भारतीय दर्शन मे पद्धति सम्बन्धी अन्तर भी परिलक्षित होता है। पाश्चात्य-दर्शन मे विश्लेषणात्मक पद्धति को प्रयुक्त किया गया है। इसलिये पाश्चात्य दर्शन मे तत्व विज्ञान, नीतिविज्ञान, प्रमाण

विज्ञान, सौन्दर्य विज्ञान, आदि का विश्लेषण अलग–अलग किया गया है। पाश्चात्य दर्शन से विपरीत भारतीय–दर्शन मे सश्लेषणात्मक पद्धति को आपनाया गया है। सश्लेषणात्मक दृष्टिकोण को अपनाने के परिणाम स्वरूप भारतीय दर्शन मे प्रमाण विज्ञान, तर्क विज्ञान, नीतिशास्त्र, ईश्वर विज्ञान आदि का विवेचन एक साथ ही किया गया है।

पश्चिमी दर्शन इहलोक की सत्ता मे विश्वास करता है जबकि भारतीय–दर्शन इसके विरूद्ध परलोक की सत्ता मे विश्वास करता है। चार्वाक के अतिरिक्त भारतीय दर्शन मे स्वर्ग और नरक की मीमासा हुई है। जबकि पाश्चात्य दर्शन मे ऐसी कोई मान्यता नही है।

पाश्चात्य एव भरतीय दर्शन का दृष्टिकोण जीवन और जगत को लेकर भी विभिन्नता रखता है। क्योकि भारतीय दृष्टिकोण जीवन और जगत के प्रति दु खात्मक दृष्टिकोण रखता है। जबकि पश्चिमी दर्शन मे उपेक्षा न करके भावात्मक दृष्टिकोण को प्रधानता दी गयी है।

पश्चिमी–दर्शन मे समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र का वर्णन होता है। किन्तु भारतीय दर्शन सर्वागीण होते हुये भी समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र से दूर रहा पश्चिमी दर्शन का दृष्टिकोण मूलत एकाङ्गी है।

पश्चिमी दर्शन ने लोकायतीकृत होने का प्रयास किया है। और भारतीय–दर्शन ने इससे बचने का क्योकि दर्शन का मुख्य उद्देश्य ही है सूक्ष्म चिन्तन और विवेचन अपने विवेचन मे वह सबजगह लोकायत, लोकरीति या लोकमत से दूर जाता रहा है। भारतीय दर्शन को लोकायत से बचाने के लिये ही जानबूझकर दूरी पैदा की गई है। उदाहरणार्थ– **कुमारिल** ने लिखा है कि, उसके समय मे मीमासा लोकायतीकृत हो गयी थी और उन्होने उसको यत्नपूर्वक आस्तिक पथ पर आरूढ किया।[१]

---

[१] लोकवार्तिक १।१
प्रायेणैव हि मीमासा लोके लोकायतीकृता। तामास्तिक पथे कुर्त्तमय यत्न कृतो मया।।

उपरोक्त विवरण द्वारा स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शन तथा पाश्चात्य–दर्शन मे मुख्य प्रवृत्तियो को लेकर अन्तर है और इस कारण ये दोनो अलग अलग रूप मे सस्थापित है।

भारतीय दर्शन की समान्य विशेषताएँ

भारतीय दर्शन मे दो प्रकार की विचारधाराए है –

(१) ब्राह्मण परम्परा की विचार धारा।

(२) श्रमण परम्परा की विचाधारा।

इसमे ब्राह्मण परम्परा की विचारधारा वेद परक है अत इसे आस्तिक वर्ग की विचारधारा के नाम से जाना जाता है। और इसके विपरीत श्रमण परम्परा की विचारधारा वेद विरोधी है और इसे नास्तिक विचारधारा कहा जाता है। ये दोनो विचारधाराएँ एक दूसरे से भिन्न है तथा प्रत्येक सम्प्रदाय की अपनी–अपनी अलग–अलग मान्यताएँ है परन्तु इस भिन्नता मे अभिन्नता, अनेकता मे एकता, विषमता मे समता भारतीय दर्शन की विशेषता है। इन दोनो विधाओ का स्वरूप भले ही अलग हो किन्तु इनमे परस्पर विभिन्नता मे एकता है। इस एकता को भारतीय दर्शन की मौलिक विशेषता भी कहते है। इस प्रकार भारत के विभिन्न दर्शनो मे जो साम्य दिखाई पडता है उन्हे भारतीय दर्शन की समान्य विशेषताएँ कहा जाता है। ये विशेषताएँ भारतीय विचारधारा के स्वरूप को स्पष्ट करने मे समर्थ है भारतीय दर्शन की इन सामान्य विशेषताओ का सक्षिप्त वर्णन निम्नवत् है।

भारतीय दर्शन की एक मुख्य विशेषता यह है कि यह आध्यात्मिक है और आध्यात्मिक प्रयोजन को सर्वोपरि महत्व दिया गया है। इस विशेषता के कारण ही प्राय सभी भारतीय दर्शन विचारधाराओ मे आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। तथा साथ ही इसके स्वरूप को भी निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। 'आत्मदीपोभव आत्मान विद्धि' ये मत्र अनादि काल से भारतीय विचारको को

आत्मचिन्तन की तरफ प्रेरित करते है। 'आत्मावाऽरे द्रष्टव्य' यह उपनिषदीय मत्र भारतीय दर्शन का निर्धारक रहा है। परिणामत भारतीय चिन्तन का झुकाव आध्यात्म की ओर अग्रसर हुआ है आध्यात्मवाद से तात्पर्य है 'आत्मा के विषय मे चिन्तन–मनन या आत्मविषयक सिद्धान्त'। किन्तु इससे यह तात्पर्य कदापि नही लगाना चाहिए कि भारतीय दर्शन केवल आध्यात्मवादी है, बल्कि यह आध्यात्मवादी मूल्यो के साथ भौतिकवादी मूल्यो को भी महत्व देता है।

डा० राधाकृष्णन ने भारतीय दर्शन नामक अपने पुस्तक मे लिखा है कि "भारत मे धर्म सबन्धी हठधर्मिता नही है धर्म एक युक्ति–युक्त सश्लेषण है जो विचारो का सग्रह करता रहता है। अपने आप मे इसकी प्रकृति परीक्षणात्मक और अनन्तिम है। और यह वैचारिक प्रगति के साथ कदम मिलाकर चलने का प्रयास करता है। यह सामान्य आलोचना कि भारतीय विचार बुद्धि पर बल देने के कारण दर्शन शास्त्र को धर्म का स्थान देता है। भारत मे धर्म के युक्ति यूक्ति स्वरूप का समर्थन करती है। इस देश मे कोई भी धार्मिक आन्दोलन ऐसा नही हुआ जिसने अपने समर्थन मे दार्शनिक विषय का विकास भी साथ–साथ न किया हो।"[1]

भारतीय दर्शन की एक समान्य विशेषता यह भी है कि यह जीवन केन्द्रित दर्शन है भारतीय दर्शनिक विचारधाराओ मे जीवन की चरम समस्याओ के समाधान को सर्वाधिक महत्व दिया गया है तथा मानसिक जिज्ञासा की शान्ति को दर्शन का अन्तिम लक्ष्य नही माना गया है। इस प्रकार भारतीय दार्शनिक विचारधाराओ की उत्पत्ति एव विकास जीवन मे ही हुआ।

आध्यात्मिकता को अधिक महत्व देने के कारण ही भारतीय दर्शनिक विचार धाराओ की उत्पत्ति का एक प्रमुख कारण आध्यात्मिक असतोष ही रहा है इस आध्यात्मिक असतोष ने भारतीय दार्शनिक विचारधाराओ की उत्पत्ति में विशेष योगदान

---

[1] डा० राधाकृश्णन– पुस्तक भारतीय दर्शन भाग (१) पृ० २०–२१

दिया है। रोग, मृत्यु, बुढापा, ऋण आदि दुखो के फलस्वरूप मानव मन मे सर्वदा अशान्ति का निवास रहता है। बुद्ध का प्रथम आर्यसत्य विश्व को दुखात्मक बतलाता है। उन्होने रोग, मृत्यु, मिलन, वियोग, आदि को दुख कहा जीवन के हर पहलू मे मानव दुखो का ही दर्शन कराता है उनका यह कहना कि दुखियो ने जितना ऑसू बहाया है उसका पानी समुद्र जल से भी अधिक है जगत के प्रति उनका दृष्टिकोण प्रस्तावित करता है बुद्ध के प्रथम आर्यसत्य से साख्य, योग, न्याय वैशेषिक शकर, रामानुज, जैन आदि सभी दर्शन सहमत है भारतीय दर्शनो ने विश्व की सुखात्मक अनुभूति को भी दुखात्मक कहा है। साख्य ने तो यहा तक कहा है कि सुख भी दुख ही है। क्योकि सुख सत्वगुण का कार्य है। यह सत्य है कि भारतीय दार्शनिक विचारधाराओ की उत्पत्ति आध्यात्मिक असतोष के परिणामस्वरूप हुई है परन्तु भारतीय दार्शनिक विचारधाराऍ न तो निराशावादी है और न तो पलायनवादी। भारतीय दर्शन का अन्तिम लक्ष्य आध्यात्मिक आनन्द की शाश्वत प्राप्ति है। पाश्चात्य विद्वानो ने भारतीय दर्शन को निराशावादी होने का आरोप लगाया है किन्तु यह आक्षेप उचित नही है क्योकि भारतीय दर्शन को निराशावादी इसलिये नही कहा जा सकता है कि यह आध्यात्मवाद से ओत–प्रोत है आध्यात्मवादी दर्शन को निराशावादी कहना गलत है।

भारतीय दर्शन के निराशावाद का विरोध भारत का सहित्य करता है। भारत के समस्त सम–सामयिक नाटक सुखान्त है। जब भारत के साहित्य मे आशावाद का सकेत है। तो फिर भारतीय दर्शन को निराशावादी कैसे कहा जा सकता है? भारत का दार्शनिक विश्व की वस्तुस्थिति को देखकर विकल हो जाता है। इस अर्थ मे वह निराशावादी है। परन्तु वास्तव मे निराश नही हो पाता है। इससे प्रमाणित होता है कि निराशावाद भारतीय दर्शन का आरम्भ है परन्तु उसका अन्त आशावाद मे होता है।

डा० राधाकृष्णन ने लिखा है कि ''भारतीय दार्शनिक वहॉ तक निराशावादी है। जहा तक इन विषयो से छुटकारा पाने का सम्बन्ध है। वे आशावादी[1] है। इस प्रकार निराशावाद भारत दर्शन का आधार वाक्य है किन्तु निष्कर्ष नही है।

भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायो की एक सामान्य विशेषता मोक्ष की धारणा को विशेष महत्व प्रदान करना भी है। चार्वाक को छोडकर सभी दर्शनो मे मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है। मोक्ष से तात्पर्य है कि सासारिक दु खो से छुटकारा तथा जन्म–पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त होना है। इस प्रकार सासारिक आवगमन से मुक्त आध्यात्मिक अवस्था ही मोक्ष की अवस्था है।

मैक्समूलर ने कहा है कि भारत मे दर्शन ज्ञान के लिये नही वरन् उस सर्वोच्च लक्ष्य के लिये था जिसके लिये मनुष्य इस जीवन मे चेष्टा कर सकता है।

मोक्ष को ही मुक्ति, निर्वाण, कैवल्य आदि शब्दो से भी अभिहित किया गया है। मोक्ष बन्धन का पूर्ण विनाश है और यह सभी दु खो के विनाश की स्थिति है तथा आत्मा के परमानन्द की अवस्था है अत मोक्ष को अभावात्मक–आत्यन्तिक दु ख–विनाश और भावात्मक–आनन्द की प्राप्ति भी है कहा गया है। <u>आत्मा का शरीरधारी होना ही बन्धन है इस बन्धन का विनाश ही मोक्ष है</u> है तथा मोक्ष के लिए आत्मज्ञान की आवश्यकता होती है। इसी दृष्टि से कठोपनिषद् मे नचिकेता नामक बालक ब्रह्मज्ञानी यमराज के पास जाकर आत्मविद्या या वेदान्त विद्या के लिये प्रार्थना करता है। <u>सभी दर्शन (भारतीय) यह मानते है कि मोक्ष शोकातीत अवस्था से निवृत्ति है किन्तु सभी दर्शनो मे इसकी प्राप्ति के मार्ग भिन्न–भिन्न बताये गये है परन्तु सबका उद्देश्य एक ही है। इस प्रकार मार्गों की अनेकता मे भी लक्ष्य की एकता का प्रतिपादन, भारतीय दर्शन की विशेषता है। इस प्रकार भारतीय दर्शन का अध्ययन करने से इतना तो</u>

[1] Ind Phil,Vol, I (page 50)

निश्चित रूप से स्पष्ट होता है कि आत्मा का शरीरधारी होना ही बन्धन है तथा इस बन्धन का विनाश ही मोक्ष है।

भारतीय दर्शन की एक विशेषता यह है कि यह व्यक्ति को नही वरन् समाज को सुखी बनाना चाहता है। यहा एक तरह से समाजवादी दृष्टिकोण की झलक परिलक्षित होती है। भारतीय दार्शनिक कभी अपने आपको ही सुखी बनाने की शिक्षा नहीं देते है। वरन् सम्पूर्ण समाज को सुखी जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते हैं। वेद मे कहा गया है।

> "सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।
> सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दु ख भाग्भवेत्।।"

अर्थात सभी लोग सुखी हो, सभी रोग रहित हो, सभी प्रिय का दर्शन करे, और कोई दु ख दैन्य को न प्राप्त हो। वेद के समान ही बौद्ध के सारनाथ धर्मचक मे "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" का उपदेश दिया गया है।

भारतीय दार्शनिक विचारधाराओ की मुख्य विशेषताओ का उल्लेख करते हुये "कर्म एव पुनर्जन्म के सिद्धान्त" का वर्णन करना भी आवश्यक है। चार्वाक को छोडकर सभी भारतीय दर्शन को मान्यता प्रदान करते है। इस प्रकार कर्म सिद्धान्त को छ आस्तिक दर्शनो ने एव दो नास्तिक दर्शनो ने भी स्वीकार किया है। कुछ लोग यह मानते है कि कर्म सिद्धान्त मे विश्वास करना भारतीय विचारधारा मे अध्यात्मवाद का प्रमाण है।

कर्मवाद के सिद्धान्त की मूल पृष्टभूमि मे भारतीय दर्शन की यह मान्यता निहित है कि विश्व मे एक शाश्वत नैतिक व्यवस्था है। इस व्यवस्था मे किसी भी प्रकार का व्यवधान नही है। कर्मो द्वारा ही जीवन का सचालन होता है तथा कर्मबन्धन से जन्म–पुनर्जन्म का चक्र चलता रहता है। कर्मो के कारण ही आत्मा को बारम्बार शरीर धारण करना पडता है। इससे अलग कर्म बन्धन से मुक्त होना ही मोक्ष की स्थिति है।

प्रो० हरेन्द्र प्रताप सिह ने अपनी पुस्तक 'भारतीय दर्शन की रूपरेखा' मे लिखा है कि ''कर्म सिद्धान्त का अर्थ है जैसा हम बोते है वैसा ही हम काटते है। इस नियम के अनुकूल शुभ कर्मो का फल शुभ तथा अशुभ कर्मो का फल अशुभ होता है। इसके अनुसार 'कृतप्रणाश' अर्थात किये हुए कर्मो का फल नष्ट नही होता है तथा 'अकृताभ्युगम्' अर्थात बिना किये हुए कर्मो के फल भी नही प्राप्त होते है। हमे सदा कर्मो के फल प्राप्त होते है। सुख और दुख क्रमश शुभ और अशुभ कर्मो के अनिवार्य फल माने गये है। इस प्रकार कर्म सिद्धान्त 'कारण नियम' हैं। जो नैतिकता के क्षेत्र मे काम करता है।''[1] कर्म तीन प्रकार के माने गये है–

१. **सचित कर्म**– उस कर्म को कहते है जो अतीत कर्मो से उत्पन्न होता है परन्तु जिसका फल मिलना अभी बाकी है अत इसका सबध अतीत जीवन से है।

२. **प्रारब्ध कर्म**– वह कर्म है जिसका फल मिलना शुरू हो गया है, इसका सबध अतीत जीवन से है।

३. **सचीयमान कर्म**– इन्हे क्रियमाण कर्म भी कहते है। ये वे कर्म है जिन्हे व्यक्ति वर्तमान समय मे करता है सचीयमान कर्म ही भविष्य मे प्रारब्ध एव सचित कर्म बनते है।

समान्यत यह मान्यता है कि तत्त्व ज्ञान से सचित कर्म का क्षय होता है और क्रियमाण कर्म का निवास होता है। परन्तु तत्त्व ज्ञान से प्रारब्ध कर्म का निवारण नही किया जा सकता है। प्रारब्ध कर्मो का विनाश उसके भोग सपादन क्रिया से ही होता है। यह क्रिया 'कुलालचक्रवत' ही होती है।

भारतीय दर्शन की एक विशेषता 'ऋत के नियम मे विश्वास भी है।' भारतीय दर्शन के अनुसार जिस प्रकार मानवीय जगत मे नैतिक व्यवस्था है उसी प्रकार भौतिक जगत मे भी एक प्रकार की कल्पना की गयी है। भौतिक जगत्त मे इस प्रकार की

कल्पित व्यवस्था को 'ऋत का नियम' कहा गया है। इस प्रकार के नियम का सर्वप्रथम परिचय हमे वैदिक साहित्य से प्राप्त होता है। मीमासा मे इसको ही 'अपूर्व' तथा न्याय वैशेषिक मे इसे 'अदृष्ट' कहा गया है।

भारतीय–दर्शन मे विचारो मे समन्वयवाद को विशेष स्थान दिया गया है। यह सत्य है कि दार्शनिक सिद्धान्तो का अनुसधान एव प्रतिपादन बौद्धिक रूप मे हुआ है। फिर भी जीवन के अन्य सभी पहलुओ की अवहेलना नही की जा सकती है।

भारतीय दार्शनिक परपरा की यह विशेषता 'प्रगतिशीलता' भी है। भारतीय दार्शनिक परपरा मे समय समय पर तत्कालीन प्रचलित सिद्धान्त के प्रतिवादी सिद्धान्त को प्रस्तुत कर प्रगतिशीलता को प्रमाणित किया है। इसी प्रगतिशीलता का परिणाम है कि भारतीय दार्शनिक परपरा मे जडवाद, अध्यात्मवाद, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद विशिष्टाद्वैतवाद आदि सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये है।

यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि भारतीय दर्शन धर्म के साथ समन्वित हैं। तो भी भारतीय दार्शनिक विचारो की अवहेलना बिलकुल नही हुई है। दार्शनिक सत्य के अनुसधान के लिए बुद्धि को प्रबल साधन के रूप अपनाते आये है।

दार्शनिक चिन्तन का व्यावहारिक उद्देश्य होता है। मानव जिज्ञासा को शान्त करना ही दर्शन का प्रधान लक्ष्य है। दार्शनिक जब तक जीवन और जगत को ठीक ढग से नही जान लेते है। तब तक उसका चिन्तन मनन निरन्तर जारी रहता है। जीवन और जगत को नश्वर समझने पर व्यक्ति अपने जीवन को सुखी बना सकता है। इस प्रकार जीवन के मूल समस्याओ का हल प्राप्त करना ही दर्शन अपना कर्तव्य समझता है।

भारतीय दर्शन की एक विशेषता यह भी है कि दर्शन चिन्तन निष्पक्ष होता है। विश्व का अध्ययन करते समय दार्शनिक अपने स्वार्थभाव रागद्वेष एव पक्षपातपूर्ण

भावनाओ से पूर्णतया मुक्त हो जाता है। सम्पूर्ण विश्व को उसकी सम्पूर्णता मे जानना ही उसका लक्ष्य रहता है।

इस प्रकार दर्शन विश्व को उसकी समग्रता मे समझने का प्रयास करता है। भारतीय–दर्शन की दृष्टि व्यापक है। यद्यपि भारतीय–दर्शन की अनेक शाखाएँ है। तथा उनमे मतभेद है फिर भी वे एक दूसरे की उपेक्षा नही करती हैं। सभी शाखाए एक दूसरे के विचारो को समझने का प्रयास करती है। तथा विचारो की युक्तिपूर्वक समीक्षा कर किसी सिद्धान्त तथा निष्कर्ष पर पहुँचती है। इस उदार मनोवृत्ति का यह परिणाम है कि भारतीय दर्शन मे विचार विमर्श के लिए एक विशेष प्रणाली की उत्पत्ति हुई। इसमे पहले पूर्व पक्ष होता है फिर उत्तर पक्ष होता है इसमे पूर्वपक्ष विरोधी मतो का प्रकाशन करता है जबकि उत्तर पक्ष सिद्धान्तो का प्रतिपादन करता है। इस प्रकार उपरोक्त भारतीय दर्शन की सामान्य विशेषताओ से स्पष्ट होता है कि सभी भारतीय दर्शन का एक ही मुख्य उददेश्य है दुख की चरम निवृत्ति या परमानन्द की प्राप्ति। इन्ही उदे्देश्यो की प्राप्ति के लिए सभी भारतीय दार्शनिक प्रवृत्त होते है।

भारतीय दर्शन का वर्गीकरण–विधाएँ

समय के साथ–साथ भारत मे विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायो का प्रादुर्भाव हुआ। और यह प्रत्येक मुनि की अपनी अलग–अलग विचारधाराएँ थी। इतना तो निश्चित रूप से स्पष्ट होता है कि उपनिषदो के पश्चात अवान्तर काल मे इच्छा सबध विषय प्रयोजन इत्यादि के भेद से परम मूल तत्व के विषय मे शनै–शनै यथामत वैविध्यता होती गयी वैसे –वैसे दर्शन के भी वर्गीकृत भेद होते गये जो अन्त न होकर आदि था। और काल क्रमेण इन भेदो के भी आवान्तर भेद होते गये और परिणामत वैदिक और अवैदिक दर्शन संप्रदाय के रूप मे देश मे उत्पन्न हो गये ऐसा दर्शन मध्यकालिक व्याख्याकारो ने अपने साप्रदायिक अखाडे का प्रभुत्व स्थापित करने के लिए परस्पर विरोधपूर्ण विचारधाराए उत्पन्न कर दार्शनिक सघर्ष को जन्म दिया।

उपनिषद् काल मे हम देखते है कि ऋषि मुनि लोग बिना कठिनाई के सम्पूर्ण स्वरूप को सरलता से समझ लेते थे। इसलिए उस समय सभी विचारधाराओ के होने पर भी विचारो के वर्गीकरण की आवश्यकता नही पडी। क्योकि उन्हे तत्व से सबधित आक्षेपो के समाधान करने का तथा विरोधी पक्षो के साथ तर्क वितर्क करने का कोई विशेष अवसर नही प्राप्त हुआ। इसलिए उपनिषद् मे वर्णित इस तत्व के स्वरूप का विश्लेषण कर भिन्न–भिन्न क्रम से पृथक–पृथक उनके वर्गीकरण का प्रयोजन पहले नही हुआ।

यह इतना तो तय है कि किसी भी विषय का वर्गीकरण तभी किया जाता है जब उसको समझने मे कोई कठिनाई उपस्थित हो रही हो या कोई अन्य प्रयोजन या उद्देश्य हो।

सम्भवत यही कारण रहा होगा कि विभिन्न दृष्टिकोण से साक्षात देखे हुए सम्पूर्ण तत्व उस समय तक उपनिषदो मे छिन्न–भिन्न रूप मे पड रहे जब तक कि पूर्व पक्षी और उत्तर पक्षी मत समक्ष नही आया। किन्तु इस प्रकार की परिस्थिति अधिक समय तक न रह सकी, क्योकि इसके बाद तर्क प्रवीण जिज्ञासुओ का आविर्भाव होने लगा। इस समय वेदो के ऊपर आरोप लगने शुरू हो गये तथा वेदो के विरूद्ध मतो का प्रचार वैदिक जगत मे होने लगा। इससे समाज मे विचलन की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इस स्थिति से निपटने के लिए तथा एक बार फिर वेद तथा वैदिक धर्मो की रक्षा के लिए उपनिषदो का सहारा लेना आवश्यक हो गया था। इन उपनिषदो मे से तत्वो को खोजकर आक्षेपो के निवारण के लिए सामग्री एकत्र की गयी। तत्वो को शृखला बद्ध करने का प्रयत्न भिन्न भिन्न दृष्टिकोणो से होने लगा। इन तत्व विचारो को समन्वय की दृष्टि से सोपान परम्परा के रूप मे शृखलाबद्ध बनाकर प्रतिपक्षियो के साथ तर्क वितर्क करने के लिए सब तरह से एकत्रित किया गया। किन्तु इस प्रकार की बाते उपनिषदो के बाद देखने को मिलती है। इस तर्क–वितर्क वाद–सवाद से

दार्शनिक सूत्रो का निर्माण होने लगा था, इसी सघर्ष के समय दर्शनो का पुन वर्गीकरण हुआ होगा ऐसा अनुमान किया जाता है।

छान्दोग्य उपनिषद् के सातवे अध्याय मे नारद और सनद कुमार सवाद यह स्पष्ट होता है कि अन्धकाल मे अर्थात उपनिषदो के पूर्व भी शास्त्रो का वर्गीकृत रूप अवश्य विद्यमान थे। क्योकि यदि पृथक वर्गीकृत न होता तो नारद किस प्रकार शास्त्रो को पृथक गिना सकते थे। किन्तु शास्त्रो के स्वरूप के सबध मे स्पष्ट ज्ञान प्राप्त नही होता है किन्तु व्यवस्थित वर्गीकरण उपनिषदो के बाद का है।

अक्षपाद गौतम के 'न्याय सूत्र' नामक ग्रन्थ लिखने के पीछे मुख्य रूप से दो उद्देश्य निहित था। १– एक तो बौद्धो के साथ साथ तर्क वितर्क करने के लिए और दूसरा वैदिक मत्रो के अभिप्राय को सुरक्षित रखने के लिए। इसी अभिप्राय से जैमिनी ने भी ''मीमासा सूत्र'' की रचना की। इस प्रकार अन्य दार्शनिक सूत्र ग्रन्थो की रचना हुई होगी। भारतीय दर्शन का मुख्य रूप से विभाजन दो विधाओ मे किया गया है–

१– आस्तिक विधा।   २– नास्तिक विधा।

अब प्रश्न यह है कि इस वर्गीकरण मे कितने और कौन कौन से दर्शन बने? इस सबध मे ''षड्दर्शन'' का नाम लिया जाता है। परन्तु षडदर्शन के अन्तर्गत कौन –कौन से दर्शन गिने जा सकते है इस पर विद्वानो मे मतभेद है।

पुष्पदन्त ने शिवमहिम्नस्त्रोत् मे साख्य, योग, पशुपतिमत, तथा वैष्णव, कौटिल्य ने अर्थशास्त्र मे साख्य योग तथा लोकायत का उल्लेख किया है।

सर्वसिद्धान्तसग्रह मे शड्कराचार्य ने लोकायत, आर्हत बौद्ध (वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार तथा माध्यमिक) वैशेषिक न्याय भट्ट और प्रभाकर मीमांसा, सांख्य पतंजलि, वेद व्यास तथा वेदात, ग्यारहवी सदी की पूर्ववर्ती जयन्त भट्ट ने मीमासा, न्याय, वैशेषिक, साख्य, अर्हत, बौद्ध तथा चार्वाक। बारहवी सदी के हरिभद्र सूरि ने अपने 'षडदर्शन समुच्चय' मे बौद्ध न्यायिक, कपिल, जैन, वैशेषिक तथा जैमिनि का

उल्लेख किया है। तेरहवी सदी के जिनदत्त सूरि ने अपने षडदर्शन समुच्चय मे जैन मीमासा बौद्ध, साख्य, शैव तथा नास्तिक का वर्णन किया है। चौदहवी सदी के राज शेखर सूरि ने जैन साख्य, जैमिनियोग (न्याय) वैशेषिक तथा सौगत का उल्लेख किया है। प्रसिद्ध काव्यो के टीकाकार मल्लिनाथ के पुत्र ने पाणिनि, जैमिनि, व्यास, कपिल, अक्षपाद तथा गौतम को वर्णित किया है। 'सर्वमत सग्रह' के रचयिता ने भी मीमासा, साख्य, तर्कबौद्ध अर्हत तथा लोकायत का उल्लेख किया है।

माधवाचार्य ने अपने ग्रथ 'सर्वदर्शन सग्रह' मे चार्वाक दर्शन बौद्ध, जैन, रामानुज दर्शन, पूर्णप्रज्ञ (माध्व) दर्शन, पाशुपत दर्शन, शैव दर्शन, प्रत्याभिज्ञा दर्शन (त्रिक दर्शन काश्मीर शैव मत) औलूक्य दर्शन (वैशेषिक) अक्षपाद दर्शन (न्याय) रसेश्वर दर्शन, आयुर्वेद दर्शन, जैमिनि, पाणिनि साख्य, पतजलि और शाकर दर्शन मे इन षोडश दर्शनो का उल्लेख है। मधुसूदन सरस्वती ने 'सिद्धान्त विन्दु' तथा 'शिवमहिम्नस्त्रोत' की टीका मे न्याय, वैशेषिक, कर्म मीमासा, शारीरिक मीमासा, पातञ्जल, पचरात्र, पाशुपत, बौद्ध, दिगम्बर, चार्वाक, साख्य और औपनिषद आदि का वर्णन मिलता है।आस्तिक और नास्तिक पदो को परिभाषित करने का एक प्रमुख आधार ''वेद प्रामाण्य की स्वीकृति और अस्वीकृति से है।''

वेदो मे आस्था रखने वाले या श्रुति को प्रमाण मानने वाले दर्शन आस्तिक दर्शन है तथा वेदो की निन्दा करने वाला और श्रुतियो का विरोध करने वाला दर्शन नास्तिक दर्शन कहलाता है।[१]

वेदानुयायी और वेदविरोधी परम्परा के क्रमश ब्राह्मण परम्परा और श्रमणपरम्परा भी कहा जाता है। आस्तिक दर्शनो के अन्तर्गत 'षड्दर्शन' आता है इसमे न्याय, साख्य, मीमासा, योग, वैशेषिक, वेदान्त की गणना की जाती है। नास्तिक दर्शन भी एक अन्य

---

[१] योऽवमन्यते ते मूलहेतुशास्त्रनयाद द्विज । स साधुभिर्वहि कार्यो नास्तिको वेद निन्दक ।। (मनु० २/११)

वर्गीकरण से ''षडदर्शन'' कहा जाता है। यथा इसमे चार्वाक, जैन, (बौद्ध) वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार, माध्यमिक दर्शनो को रखा जाता है।

प्राचीन भारतीय दार्शनिक साहित्य मे आस्तिक और नास्तिक का एक अन्य अर्थ भी लोक और परलोक को लेकर प्राप्त होता है। इसके अनुसार इहलोक के साथ परलोक मे विश्वास करने वाले दर्शन को आस्तिक दर्शन कहते है। तथा जो परलोक मे न विश्वास करके केवल इहलोक मे विश्वास करता है, नास्तिक दर्शन है। इस प्रकार इहलोक या सादृश्य जगत को स्वीकार करने वाला ''लोकायत् दर्शन'' है जिसे ''चार्वाक दर्शन'' भी कहते है। चार्वाक दर्शन अपनी भौतिकवादिता के कारण शेष सभी दर्शनो से अलग पड जाता है। इसके अतिरिक्त इस अर्थ मे अन्य सभी आठ दर्शन आस्तिक हैं।

एक अन्य मत से पुनर्जन्म मे विश्वास रखने वाला ही आस्तिक कहा गया है और इसके विपरीत नास्तिक कहा गया है। किन्तु इसको स्वीकार करने मे एक कठिनाई यह सामने आती है कि जैन और बौद्ध पुनर्जन्म मे विश्वास रखते है फिर भी उन्हे नास्तिक के अन्तर्गत रखा गया है। अत पुनर्जन्म मे विश्वास ही आस्तिक–नास्तिक का निर्णायक है, नही कहा जा सकता है।

एक अन्य अर्थ मे ईश्वरवादी दृष्टिकोण से भी आस्तिक–नास्तिक का भेद किया गया है। इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने वालो के अनुसार ईश्वर की सत्ता मे विश्वास करने वाला आस्तिक है और ईश्वर की सत्ता मे विश्वास न करने वाला नास्तिक है। इस दृष्टि से चार्वाक, जैन, बौद्ध के साथ साख्य एव मीमासा भी नास्तिक दर्शन की श्रेणी मे आ जाते है क्योकि ये भी अपने को मुक्त कठ से निरीश्वरवादी स्वीकार करते है और इसके अतिरिक्त योग, न्याय, वैशेषिक, वेदान्त ईश्वरवादी होने के कारण आस्तिक दर्शन के अन्तर्गत आते हैं। किन्तु इस तथ्य को उल्लेखित करना अतिमहत्वपूर्ण है कि इन आस्तिक–नास्तिक पद के विभिन्न अर्थो मे प्रथम अर्थ– (वेद प्रामाण्य मे विश्वास) सर्वाधिक प्रचलित एव महत्वपूर्ण है और इस दृष्टि से चार्वाक, जैन,

बौद्ध दर्शनो को वेद विरोधी होने के कारण नास्तिक दर्शन कहा गया है। और इसके विपरीत श्रुति परम्परा मे श्रद्धा रखने वाले साख्य–योग, न्याय–वैशेषिक, मीमासा–वेदान्त ये षड् आस्तिक दर्शन है। "तत्र षट् श्रुति सापेक्षाणि षट् च श्रुति निरपेक्षाणि" आज केवल बारह दर्शनो का स्वरूप उपलब्ध होता है आस्तिक और नास्तिक शब्द की जो परिभाषा महात्मा मनु ने दिया है वह प्राय मान्य है। महात्मा मनु के अनुसार– "वेद को प्रामाण्य मानने वाले आस्तिक और न मानने वाले नास्तिक है" ।

इस प्रकार भारतीय दर्शन मे वेद का विशेष महत्व है। अधिकाश भारतीय दार्शनिक सिद्धान्तो का उद्‌गम श्रोत बेद ही है। इनमे मीमासा एव वेदान्त का प्रादुर्भाव सीधे वेदो से ही हुआ है। इनमे चार्वाक दर्शन का कोई भी प्रामाणिक ग्रन्थ प्राप्त नही होता है–

'एष्वापि चार्वाक दर्शनस्य न कोऽपि ग्रन्थ प्राप्यते केवल तत्तच्छास्त्रेषु।
तत्तच्छास्त्र, टीकासु च खण्डनाय तन्मतानुवाद एवोपलभ्यते ।।'

भारतीय दर्शन के विस्तृत वर्गीकरण को निम्नलिखित तालिका द्वारा भी दिखाया जा सकता है।
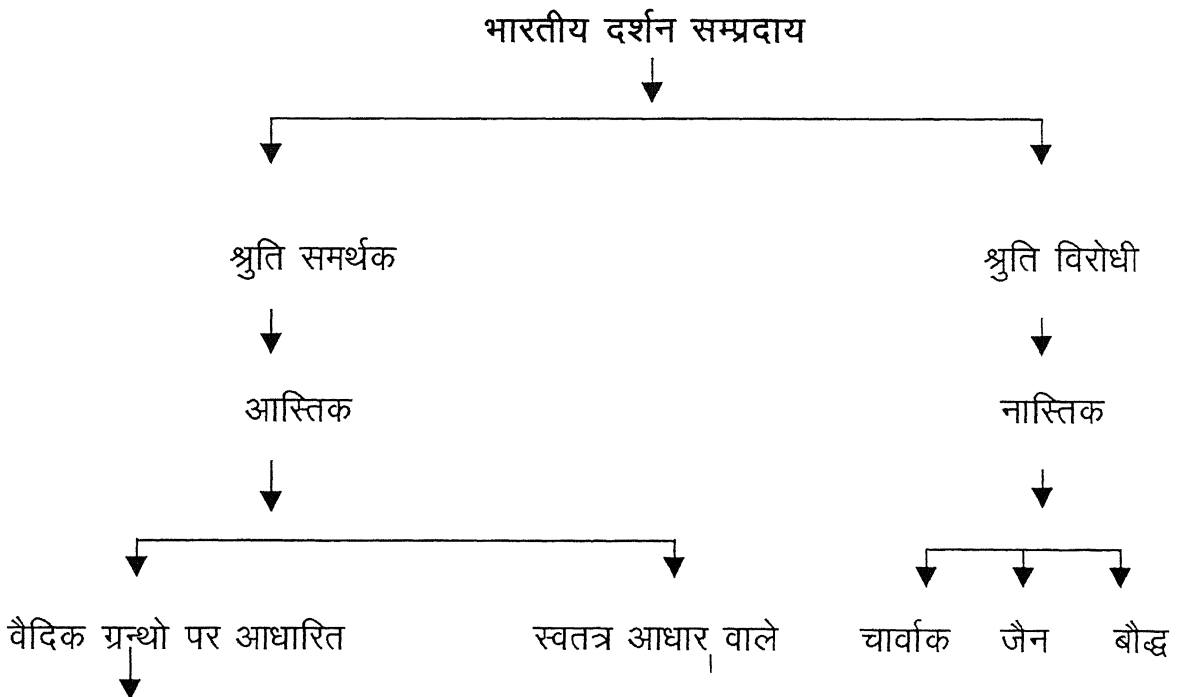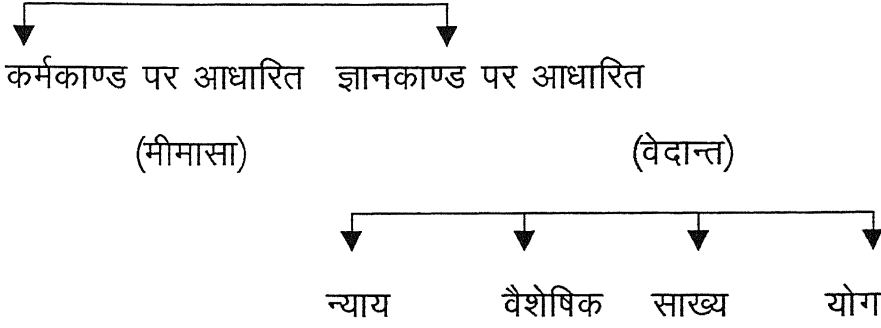
कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ अर्थशास्त्र मे साख्य योग और लोकायत को 'आन्वीक्षिकी विद्या' के अर्न्तगत उल्लिखित किया है।

'साख्य योगो लोकायत चेत्यान्तीक्षिकी' (१/२/१०)

यहा साख्य पद कपिल दर्शन, पातञ्जलयोग दर्शन तथा बादरायण का वेदान्त दर्शन इन तीनो का ग्रहण करता है। 'योग' पद न्यायवैशेषिक का तथा 'लोकायत' पद 'चार्वाक' आदि अन्य अवैदिक दर्शनो का बोधक है।

वात्स्यायन मुनि ने 'योग' पद का प्रयोग न्यायसूत्र के (१/१/२६)के भाष्य मे उक्त अर्थ को प्रकट करने के लिये किया है।

इस प्रकार हिन्दू मतानुसार भारतीय दर्शन आस्तिक और नास्तिक वर्गो मे विभाजित है। आस्तिक सम्प्रदाय वेद को स्वत प्रमाण मानते है और नास्तिक वेद को एक साधारण ग्रन्थ से ज्यादा कुछ नही मानते है। ये नास्तिक दर्शन मुख्यतया तीन है बौद्ध, जैन, चार्वाक। आस्तिक दर्शन जो सनातन धारा को स्वीकार करता है और षडाङ्ग के रुप मे जाना जाता है। ये निम्न छ शाखाओ मे प्रचलित है। साख्य, योग, न्याय–वैशेषिक, मीमासा, वेदान्त। ये साधारणतया षड्दर्शन के नाम से (आख्यायित) विख्यात है।

नास्तिक दर्शन

चार्वाक दर्शन

नास्तिक दर्शन के अन्तर्गत चार्वाक दर्शन का स्थान प्रमुख है। लोक मे अत्यन्त

प्रिय लोकायत् दर्शन ही चार्वाक दर्शन कहलाता है। अवैदिक दर्शनों के अन्तर्गत चार्वाक दर्शन का जडवाद या भौतिकवाद सर्वाधिक प्राचीन है। यह मत कब से चला है यह निश्चित रूप से किसी ठोस प्रमाण के अभाव मे नही कहा जा सकता है। किन्तु इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह हमारे ज्ञान के विकास का सबसे प्रथम रूप है। ऐसी स्थिति मे यह सबसे प्राचीन मत है ऐसा कहने मे किसी को कोई आपत्ति नही है।

चार्वाक दर्शन के उदय के (प्रमाण) साक्ष्य उपनिषद दर्शन के पश्चात् और नास्तिक जैन तथा बौद्ध दर्शन के उदय के पूर्व के काल मे मिलते है। 'उपनिषद् दर्शन' का उच्च विज्ञान वाद, वैदिक कर्मकाण्ड को ब्राहमणो द्वारा अपनी जीविका का साधन बनाकर उसका दुरुपयोग तथा यज्ञो मे पशुबलि की प्रथा, उस समय की सामाजिक तथा राजनीतिक अव्यवस्था एव अस्थिरता आदि के कारण चार्वाक मत का प्रचार हुआ।[1] यद्यपि इन्द्रिय सुखो के उपभोग की परम्परा उतनी ही प्राचीन है जितना मानव का उद्भव। इन्द्रिय सुखो के उपभोग की परम्परा अनादि काल से चली आ रही है और यह सदैव स्थिर बनी रहेगी क्योकि यह मानव की नैसर्गिक प्रवृत्ति है। ईसा पूर्व आठवी और छठी शताब्दी के मध्य भारत मे अनेक भौतिकवादी दार्शनिक और विविध भौतिकवादी विचारधाराए थी इन विचारधाराओ से ही लोकायत अथवा चार्वाक दर्शन का उदय हुआ।

देवताओ के गुरु बृहस्पतिदेव द्वारा प्रणीत होने के कारण इसका अन्य नाम 'बार्हस्पत्यदर्शन' भी है। सभवत. ये बृहस्पति सुरगुरु बृहस्पति से भिन्न रहे होगे। किन्तु कुछ विद्वान मानते है कि ये सुरगुरु ही थे जिन्होने छद्म रूप से असुरो के नाश के लिये इस मत का प्रतिपादन किया। छान्दोग्य उपनिषद के इन्द्र विरोचन और प्रजापति

---

[1]सी०डी० शर्मा– भा०दर्शन पृ० २२

सवाद मे उल्लेख है। एक मत के अनुसार शुक्राचार्य की अनुपस्थिति मे दानवो को बृहस्पति ने इस मत का उपदेश दिया था। यह मत पहले सूत्रो मे रचित था अत एव इन सूत्रो को "बार्हस्पत्यसूत्र" भी कहते है।

ईश्वर और वेद के प्रामाण्य का सर्वथा खण्डन करने के कारण यह नास्तिक दर्शन की श्रेणी मे गिना जाता है। यद्यपि बौद्ध और जैन को भी भारतीय–दर्शन मे नास्तिक–दर्शन की उपाधि से विभूषित किया जाता है किन्तु नास्तिको मे अग्रणी होने के कारण 'चार्वाक–दर्शन' को "नास्तिक शिरोमणि" दर्शन समझा जाता है।

कुछ लोगो का मत है कि चार्वाक नामक ऋषि ने जिनकी चर्चा महाभारत मे है, इस मत को चलाया। कुछ विद्वानो का मत है कि चार्वाक किसी व्यक्ति का नाम नहीं है यह शब्द 'चर्व' धातु से बना है, जिसका अर्थ है "चबाना" अर्थात् जो व्यक्ति ईश्वर, आत्मा, परलोक तथा सारे आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्यो को चबा जाय, उसे चार्वाक कहते है। अथवा यह शब्द 'चारूवाक' से बना है क्योकि चार्वाक से तात्पर्य मधुर वचन से है।[1]

कुछ विद्वानो का मत है कि ऋग्वेद मे भी इस दर्शन का उल्लेख मिलता है। बृहदारण्यक उपनिषद् मे भी इस मत का उल्लेख मिलता है इस उपनिषद् मे याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी मैत्रेयी को इस मत का उपदेश दिया है कि इन्ही पाच भूतो के मिलने से ज्ञान उत्पन्न होता है और फिर नष्ट हो जाता है और मृत्यु के उपरान्त ज्ञान नही रह जाता है। "एतेभ्यो भूतेभ्य समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रत्येसज्ञास्तीति। (बृहदा० २/४/१२)

बाल्मीकि रामायण मे भी लोकायत ब्राहमणो का उल्लेख किया गया है–

"क्वचिन्न लोकायतिकान् ब्रह्मणास्तात सेवसे"। (२/१००/३८)

---

[1] पिब् जाद च जात शोभने। (प्र०च० २/५०)

अयोध्या–काण्ड मे यहॉ तक कहा गया है कि ये लोग असत्य बातो का ही घूम–घूम कर प्रचार करते थे और अपने को ज्ञानी समझते थे।[2]

'लोकायत्' की परिभाषा के विषय मे श्री शड्कराचार्य ने कहा है कि लोकायत् वह है जो देह से भिन्न आत्मा की सत्ता को न स्वीकार करे।–

"लोकायतिकानामाणि चेतन एव देह इति–शकराचार्य।"

हरिभद्रसूरि ने अपने ग्रन्थ "षडदर्शन समुच्चय" मे चार्वाक के लिये लोकायत शब्द को ही प्रयुक्त किया है।

'लोकायतावदन्त्येयम् । (ष०द०समु०–१,८)

मनुसहिता तथा अन्य पौराणिक ग्रन्थ मे भी इस मत का उल्लेख मिलता है। वात्स्यायन ने अपने 'वात्स्यायन सूत्र' नामक ग्रन्थ मे चार्वाक् के लिये लोकायत् शब्द का ही प्रयोग किया है–

'बर साशयिकान्निष्काद साशयिक कार्षापण इति लोकायतिका। (वा०सू०)

श्री वाचस्पति मिश्र ने अपने ग्रन्थ "तत्त्वकौमुदी" मे प्रमाण के सन्दर्भ मे लोकायत् का उल्लेख किया है श्री मिश्र ने अनुमान को अप्रमाण मानने वालो को "लोकायतिक" कहा है –"अनुमानमप्रमाणमितिलोकायतिका" (त०कौ०)

सभवत प्रत्यक्ष को ही एक मात्र प्रमाण मानने के कारण इस दर्शन का नाम लोकायत् (लोक+आयत्) पडा। चार्वाक दर्शन सर्वाधिक प्राचीन दर्शन है इसकी प्राचीनता का प्रमाण इससे भी स्पष्ट हो जाता है कि वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, स्मृति, पुराण आदि सभी शास्त्रो मे यह मत अत्यन्त प्रचलित था। सर्वाधिक लोकप्रियता होने के कारण इस दर्शन की "लोकायत्" सज्ञा सार्थक है।

चार्वाक व्यक्ति विशेष और सम्प्रदाय विशेष दोनो का ही नाम हो सकता है। 'लोकायत्' कहलाने वाले दर्शन के सर्वप्रथम आचार्य चार्वाक हुये जो सुरगुरु बृहस्पति

---

[2] अयोद्धयाकाण्ड–१००–३८–३६

के शिष्य थे अतएव चार्वाक नामक व्यक्ति विशेष के द्वारा प्रचारित होने के कारण यह दर्शन चार्वाक दर्शन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बृहस्पति के सूत्र जो भिन्न–भिन्न ग्रन्थो मे मिलते है इसे डा० उमेश मिश्र ने अपने ग्रन्थ 'भारतीय दर्शन' मे उल्लिखित किया है–

१ 'अथात तत्व व्याख्यास्याम'– अब हम इस मत के तत्वो का निरुपण करेगे।

२ 'पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति तत्वानि'– पृथिवी, जल, तेज वायु ये चार तत्व है।

३ 'तत्समुदाये शरीरेन्द्रिय विषय सज्ञा'– इन्ही भूतो के सघटन को शरीर इन्द्रिय तथा विषय नाम दिया गया है।

४ 'तेभ्यैश्चैतन्यम्'– इन्ही भूतो के संघटन से चैतन्य उत्पन्न होता है।

५ 'किण्वादिभ्यो मदशक्तिवत् विज्ञानम्'[1]– जिस प्रकार किण्व आदि अन्न के सघटन से 'मादक' शक्ति उत्पन्न होती है उसी प्रकार इन भूतो के सघटन से विज्ञान (चैतन्य) उत्पन्न होता है।

६ 'भूतान्येव चेतयन्ते'– 'भूत ही चैतन्य' उत्पन्न करने का कार्य करते है।

७ ''चैतन्य विशिष्ट काय पुरुष''– चैतन्य युक्त स्थूल शरीर ही आत्मा है।

८ ''जलबुदबद्रज्जीवा''– जल के उपर जैसे बबूले दिखाई पडते हैं और शीघ्र ही आप से आप वे नष्ट हो जाते है उसी प्रकार जीव है।

९ ''परलोकिनोऽभावात् परलोकाभाव''– परलोक मे रहने वाला कोई नही होता अतएव परलोक ही नही होता।

१० 'मरणमेवापवर्ग'– मरण ही मोक्ष है।

११ 'धूर्तप्रलायस्त्रयी स्वर्गोत्पादकत्वेन विशेषाभावात्'– स्वर्ग का सुख धूर्तो के प्रलापजन्य सुख से भिन्न नही है इसलिये स्वर्ग (सुख) को देने वाले तीन वेद वस्तुत धूर्तो का प्रलाप ही है।

---

[1]विज्ञानम् के स्थान पर 'चैतन्यम्' भी प्राप्त होता है।

१२ 'अर्थकामौ पुरुषार्थौ' – अर्थ और काम ये दोनो ही पुरुषार्थ है।

१३ 'दण्डनीतिरेव विद्या' – (अत्र वार्ता अन्तर्भवति) राजनीति ही एक मात्र विद्या है इसी मे कृषि शास्त्र भी सम्मिलित है।

१४ 'प्रत्यक्षमेवप्रमाणम्' – प्रत्यक्ष ही एक मात्र प्रमाण है।

१५ लौकिकोमार्गोऽनुसर्तव्य'– साधारण लोगो के मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। इन्ही बातो का उल्लेख हमे पूर्वपक्ष के रुप मे शास्त्रो मे मिलता है।

महान आदर्शवादी माधवाचार्य ने, अपने ग्रन्थ 'सर्वदर्शन सग्रह' मे चार्वाक प्रणाली का सक्षिप्त सार इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

लोकायतिक केवल, इस जीवित जगत मे ही विश्वास करते थे, किसी अन्य जगत मे नही। वे सन्यास, मोक्ष या आत्मा मे विश्वास नही करते थे। ईश्वर मे विश्वास नही करते थे, जो समस्त सृष्टि का स्रष्टा है। आत्मा शरीर ही है जो इन गुणो की अभिव्यक्ति से प्रकट होता है– 'मै मोटा हूँ', 'मै नौजवान हूँ', 'मै बडा हो गया हूँ', मै बूढा हो गया हूँ आदि। इस शरीर से भिन्न कुछ और नही है। मोरो को कौन रगो से सजाता है अथवा कौन कोयल से गाना गवाता है ? प्रकृति के अतिरिक्त दूसरा कोई कारण नही है।

शुचिता तथा ऐसे ही अन्य नियमो को चतुर किन्तु कमजोर लोगो ने बनाया है। सोने और भूमि की दान दक्षिणा की व्यवस्था तथा भोजनो मे निमत्रण की परिपाटी अशुद्ध लोगो ने बनायी है, जिनके पेट भूख से चिपके हुये है। चार्वाक का मत है कि बुद्धिमान लोगो को इस ससार के सुख उचित साधनो जैसे कृषि पशुपालन, व्यापार, राजनीतिक प्रशासन इत्यादि के जरिये प्राप्त करना चाहिये।

चार्वाक साहित्य

चार्वाक दर्शन का कोई भी स्वतत्र प्रामाणिक ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता है। भारतीय दर्शन

की प्रत्येक शाखाएँ अपने–अपने दृष्टिकोण से चार्वाक दर्शन का खण्डन की है। इससे[1] यह प्रमाणित होता है कि भारतीय समाज इस दर्शन का प्रचुर प्रचार था तथा चार्वाक दर्शन का साहित्य भी बहुत विशाल रहा होगा, परन्तु कालक्रम से वह लुप्तप्राय है। वर्तमान युग मे चार्वाक दर्शन से सम्बन्धित सामग्री अन्य भारतीय दर्शनो मे चार्वाक के खण्डन से ही प्राप्त होती है। तथा कुछ इससे सम्बद्ध सामग्री इतस्तत· विकीर्ण रूप मे उपलब्ध होती है जैसे आर्षमहाकाव्य, रामायण, महाभारत इत्यादि मे। आचार्य वृहस्पति रचित वृहस्पति सूत्र ग्रन्थ मे चार्वाक दर्शन से सम्बद्ध सभी सिद्धान्त बीजरूप मे उपलब्ध होते हैं।

ब्रह्म सूत्र मे कहा गया है कि अर्थसाधन के लिये लोकापतिक शास्त्र ही वस्तुत शास्त्र है– ''सर्वथा लोकायतिकमेव शास्त्रमर्थ ज्ञान काले।''।

वृहस्पति सूत्र मे लिखा गया है कि लोकायतिक अग्निहोत्र सध्या, जप आदि भी अर्थ के लिये ही करता है– ''एवमथार्थ करोत्यग्निहोत्र–सन्ध्याजपादीन।''

कृष्णमिश्र द्वारा प्रणीत 'प्रबन्धचन्द्रोदय' के द्वितीय अध्याय मे चार्वाक दर्शन का सिद्धान्त वर्णित मिलता है– चार्वाक शास्त्र ही एक मात्र शास्त्र है। पृथिवी, जल, तेज, वायु ये ही चार तत्व है। अर्थ और काम ये दो पुरूषार्थ है। होता, हवन और हव्य इसके नष्ट होने पर भी यदि स्वर्ग प्राप्त हो तो वनाग्निदग्ध वृक्षो मे भी मीठे फल लटक आये।[2]

'हरिभद्र सूरि' रचित 'षड्दर्शन समुच्चय' मे षड्दर्शनो की गणना मे चार्वाक दर्शन को भी परिगणित किया गया है। इसके आठ श्लोको मे चार्वाक दर्शन के मूल विषयो का वर्णन किया गया है।

श्री 'माधव' रचित 'सर्वदर्शन सग्रह' मे चार्वाक दर्शन के लगभग सभी सिद्धान्त वर्णित मिलते है। वर्तमान समय मे चार्वाक दर्शन का अध्ययन–अध्यापन इसी ग्रन्थ से होता है।

यद्यपि चार्वाक–दर्शन के स्वतत्र और मौलिक ग्रन्थ तो सख्या मे बहुत कम है किन्तु चार्वाक सिद्धान्त का वर्णन सम्पूर्ण वेद और वेदागो मे प्राप्त होता है।

वैदिक साहित्य मे भी इतस्तत स्वेच्छाचार और कामाचरण का सिद्धान्त प्राप्त होता है। दासी के साथ ऋषि–मुनियो का अवैध यौन सम्बन्ध, जीर्ण और वृद्धवयस मे विवाह आदि विविध कामाचरणो का स्थल–स्थल पर दिग्दर्शन मिलता है।[1]

वेद के समान पुराणो मे भी कामाचरण के अनेक उदाहरण मिलते है– जीर्ण–शीर्ण च्यवन ऋषि ने राजाशर्याति की कन्या सुकन्या को पत्नी रूप मे प्राप्त करने के लिये राजा से प्रार्थना की तथा राजा ने शाप भय से उन्हे अपनी कन्या दे दी–"प्रतिगृह्यत वा कन्या भगवान प्रसाद ह।"

महाभारत मे चार्वाक का स्पष्ट उल्लेख हुआ है– महाभारत का युद्ध समाप्त होने पर राजा युधिष्ठिर ने अपने वल के साथ हस्तिनापुर मे प्रवेश किया। नगर की जनता ने विजयी राजा का सत्कार किया। पाण्डवो के जयघोष से आकाश व्याप्त हो उठा उसी समय चार्वाक नामक एक राक्षस बनावटी ब्राह्मण वेश धारण करके आया जो दुर्योधन का मित्र था। वह जपमाला, शिखा और त्रिदण्ड धारण किये था।[2]

लोकायत् प्रणाली का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उसका ज्ञान सिद्धान्त है। प्राय सभी भारतीय दर्शन प्रमा के साधन के रूप मे प्रमाण को स्वीकार करता है– 'प्रमाकरण प्रमाण'। प्रमा यथार्थ ज्ञान होता है– 'यथार्थज्ञान प्रमा'। प्रमाण को सभी भारतीय दर्शन स्वीकार करते है किन्तु इसकी सख्या को लेकर आपस मे मतभेद है। इन प्रमाणो की सख्या एक से लेकर आठ तक बतायी जाती है। ऐसा मानसोल्लास मे वर्णन मिलता है।[3]

---

[1] चार्वाक दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा – सर्वानन्दपाठक प्र० १५

[2] राजान ब्रह्मणस्छद्मा चार्वाको राक्षसोऽब्रबीत्। तत्र दुर्योधन राजा भिक्षुरूपेण सवृत ।।
साक्ष शिखी त्रिदण्डीच धृष्टो विगत साध्व स ।। महाभारत राजधर्मनुशासन पर्व– (अ० ३८)

[3] प्रत्यक्षमेक चार्वाक कणाद सुगतौपुन । अनुमान च तच्चापि साख्या शब्द च ते उभे।।
न्यायैकदेशिनोऽयेवमुपमान च केचन्। अर्थापत्या सहैतानि चत्बार्याहु प्रभाकरा सभवैतिहयुक्तानि तानि पौराणिका जगु ।।
(मानसोल्लास प्रकाशन– २/१७/२०)

१– चार्वाक –१– प्रत्यक्ष ।

२– बौद्ध –२– प्रत्यक्ष + अनुमान ।

३– साख्य –३– प्रत्यक्ष + अनुमान + शब्द ।

४– न्याय –४– प्रत्यक्ष + अनुमान + शब्द + उपमान ।

५– प्रभाकर मीमासक –५– प्रत्यक्ष + अनुमान + शब्द + उपमान + अर्थापत्ति।

६– भाट्ट मीमाक –६– प्रत्यक्ष + अनुमान + शब्द + उपमान + अर्थापत्ति + अनुपलब्धि ।

७– पौराणिक –८– (अर्था० + अनुप०) + सभव + ऐतिहासिक।

चार्वाक केवल प्रत्यक्ष का ही प्रमाण मानता है 'प्रत्यक्षमेवैक प्रमाणम'– (वार्हस्पत्यसूत्र–२०)

चार्वाक मानता है कि इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष है। अर्थात् प्रत्यक्षेतर अनुमान प्रमाण सर्वथा अमान्य है। पचेन्द्रियो के बाहर कोई वस्तु नही है। इस पञ्चविधिन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा अनुभूत वस्तु प्रमाण सिद्ध है और अन्य वस्तुए कल्पना प्रसूत है। प्रत्यक्ष के द्वारा जो भी ज्ञान प्राप्त होता है वह अधिक विश्वसनीय होता है इसमे शका या तर्क के लिए कोई स्थान नही होता है। अतेव प्रत्यक्ष निर्विवाद रूप से यथार्थ ज्ञान है। प्रत्यक्ष से दृष्टिगोचर होने वाले पदार्थ का ही अस्तित्व है।[1]

यद्यपि सभी शास्त्रकारो ने एकमात्र प्रत्यक्ष प्रमाण मानने के कारण, चार्वाको की बहुत निन्दा की है। और अनेक प्रकार से इनका खण्डन किया है परन्तु उन लोगो ने अपने–अपने दृष्टिकोण से चार्वाक के स्थान को देखकर उसका तिरस्कार किया है। वस्तुत एक दर्शन का दृष्टिकोण दूसरे दर्शन के दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न है अतेव इन दर्शन के सिद्धान्तो मे भेद होना ही स्वाभाविक उचित और सत्य है।

---

[1] त्यक्षगम्यमेवास्ति नात्स्यद्रष्टमद्रष्टत । दृष्टवादिभिश्चापि नादृष्ट सदृष्टमुच्यते।। (सर्व० सि० सग्रह)

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि यथार्थ मे सर्वथा एव सबसे अधिक विश्वसनीय एकमात्र प्रमाण तो 'प्रत्यक्ष' ही है। जब तक किसी वस्तु का प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा ज्ञान नही होता है तब तक उस वस्तु के विषय मे जो भी ज्ञान प्राप्त होता है वह सन्देह से मुक्त नही होता है, केवल सभावित मात्र होता है। 'देखने' का अर्थ है 'प्रत्यक्षप्रमाण का गोचर करना'। यही कारण है कि श्री शकराचार्य को भी, ब्रह्म को जानने के लिये 'अपरोक्षानुभूति' ही माननी पडी।

चार्वाक को छोडकर प्राय सभी भारतीय दर्शन अनुमिति को प्रमाण मानते है किन्तु चार्वाक मानता है कि अनुमान से निश्चयात्मक ज्ञान नही प्राप्त होता है अनुमान अज्ञात का ज्ञान है। अनुमान का आधार व्याप्तिज्ञान है अत. व्याप्तिज्ञान के नि सन्देह होने पर ही अनुमान निश्चयात्मक हो सकता है। धूम और अग्नि मे यदि व्याप्ति ज्ञान का निश्चय हो जाय तभी धूम देखकर अग्नि का अनुमान किया जा सकता है। परन्तु सभी धूम के साथ सभी अग्नि का व्याप्ति सम्बन्ध सभव नही। अतेव किसी भी प्रमाण से धूम और अग्नि के व्याप्ति सम्बन्ध का निश्चय ज्ञान सभव नही हो सकता है। चार्वाको के अनुसार अनुमिति वही तक सही हो सकती है जहा तक प्रकृति के क्रियाकलापो की बात है। अन्यत्र जरूरी नही है कि वह सही ही हो।सभी अनुमान अप्रमाण नही है लोकसिद्ध अनुमान प्रमाण है परन्तु अतीन्द्रिय परलोक आदि का साधक अनुमान प्रमाण नही।[1] चार्वाक शब्द प्रमाण को भी ज्ञान का स्रोत नही मानते थे क्योकि कि वे वेदो की प्रामाणिकता को चुनौती देते थे। चार्वाक भौतिकवादी मानते है कि शब्द अनुमान मे ही सन्निविष्ट है[2]। शब्द प्रमाण अतिदेशवाक्य पर निर्भर होते है और अतिदेशवाक्य की प्रामाणिकता दूसरे पर निर्भर होगी इस प्रकार इसमे अनवस्था दोष स्पष्ट है–

'तस्मादप्रमाणशब्द अनृतव्याघात पुनरूक्त दोषेभ्य' (न्याय भाष्य २/१/५७)।

---

[1] लोकप्रसिद्धमनुमान चार्वाकैरपीष्यत एव यत्तु। कैश्चिल्लौकिक भगिमतिकृम्यानुमानमुच्यते तन्निषिध्यते।।३५।। बृ० सूत्र।

[2] शब्दोऽनुमानर्थस्यानुपलब्धेरनुमेयत्वात्– न्याय द० (२/१/४६)

इस प्रकार चार्वाको का तर्क था कि ज्ञान का एकमात्र विश्वसनीय श्रोत प्रत्यक्ष है। दूसरे शब्दो मे चार्वाक कहते थे कि ऐसी कोई चीज जो हमारे सज्ञान से परे है सत्य अथवा यथार्थ नही है। के० दामोदरन ने अपने ग्रन्थ 'भारतीय चिन्तन परम्परा' मे लिखा है कि– 'लोकायत् सिद्धान्त का उद्भव ऐसे काल मे हुआ था जब ब्राह्मण पुरोहित अनुमिति और शब्द जैसेअपने प्रमाणों को बलि, यज्ञ, कर्मकाण्डो आदि को न्यायसगत सिद्ध करने के लिये इस्तेमाल कर रहे थे। उनसे लोहा लेना लोकायत् दर्शन के अनुयायियो के लिये जरूरी हो गया था। और उनका कारगर ढग से मुकाबला करने के लिये ज्ञान के श्रोतो के बारे मे उनकी अवधारणा के विरूद्ध सघर्ष करना भी जरूरी था। फलत उन्होने ज्ञान के भौतिकवादी सिद्धान्त का विकास किया।[1]

तत्त्वविचार

चार्वाक् दर्शन मे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, इन्ही चार तत्त्वो की सत्ता स्वीकार की गयी है। आकाश को तत्त्व के रूप मे नही माना गया है क्योकि आकाश का प्रत्यक्ष नही होता है यह केवल अनुमान पर आश्रित होता है अत आकाश तत्त्व नही है। ये चारो तत्व जड या भौतिक हैं और इन्ही के सयोग से ही शरीर, इन्द्रिय, विषय आदि सबकी सृष्टि होती है–

'पृथिव्यातेजोवायुरिति तत्वानि।

तत्समुदायेशरीरेन्द्रिय विषयसज्ञा'।।२ (वार्हस्पत्य सूत्र)

और इन्ही भौतिक तत्वो के सयोग से चैतन्य उत्पन्न होता है। ''तैभ्यैश्चैतन्यम्''– (१/३ बार्ह० सूत्र)। इन चार भूत पदार्थो के सयोग से चैतन्य स्वय उत्पन्न हो जाता है जैसे मादकता के उत्पादक अन्न या वनस्पति आदि के रस से निर्मित मदिरा मे मादकता स्वय आ जाती है– 'किण्वादिभ्यो मद्शक्तिवत् चैतन्यमुपजायते।।४।। (वार्ह० सूत्र)।

---

[1] के० दामोदरन– भारतीय चिन्तन परम्परा। पृ० ११६

सभी आस्तिक दर्शनो मे आत्मा को शरीर से भिन्न नित्य, अपरिगामी, कूटस्थ आदि माना गया है और शरीर के धर्म आत्मा के धर्म नही है। चार्वाक आत्मा को शरीर से पृथक नही मानता है जिस प्रकार शरीर अनित्य, परिणामी, विकारी है वैसे आत्मा भी है। आत्मोत्पत्ति के सम्बन्ध मे चार्वाक दर्शन का स्पष्ट सिद्धान्त है जड पदार्थो के विकार से चैतन्य उसी प्रकार उत्पन्न होता है जैसे पान–सुपारी और चूने के योग से पान की लाली निकलती है, जैसा कि सर्वदर्शन सग्रह मे कहा गया है–

'जडभूत विकारेषु चैतन्य यत्तुदृश्यते।

ताम्बूल पूगचूर्णाना योगादिद्राग इवात्यितम्'।।

आत्मा को भूत चतुष्टय का सम्मिलित सघात कहा है। आत्मा के सम्बन्ध मे चार्वाक दर्शन मे चार सिद्धान्त प्रचलित है–

१– शरीरात्मवाद।   २– इन्द्रियात्मवाद।

३– मनात्मवाद।   ४– प्राणात्मवाद।

शरीरात्मवाद की मान्यता के अनुसार शरीर को ही आत्मा स्वीकार किया गया है, 'मै मोटा हूँ', 'मै तरूण हूँ', मै वृद्ध हूँ', इन विशेषणो के प्रयोग से सिद्ध है कि शरीर ही आत्मा है '<u>चैतन्य विशिष्ट देह एव आत्मा</u>' और आत्मा ही देह है अत. चार्वाक के इस अभेदात्मक आत्मविचार को देहात्मवाद भी सर्वदर्शन सग्रह मे कहते है–

'स्थूलोऽह तरूणोवृद्धो युवेत्यादि विशेषणे।

विशिष्टो देह एवात्मा न ततोऽन्यो विलक्षण।।'

चार्वाक देह आत्मा के सम्बन्ध मे कहता है कि यदि शरीर से पृथक आत्मा है तो शरीर के मर जाने पर जीवात्मा का प्रत्यक्ष होना चाहिये और यदि यह कहा जाय कि आत्मा अदृश्य या गुप्त रूप से शरीर मे व्याप्त रहता है तो यह भी निरर्थक है क्योंकि कालान्तर मे शरीरागो के नष्ट हो जाने पर आत्मा के गुप्तरूप का अस्तित्व सभव नहीं है। चार्वाक दर्शन का कोई सम्प्रदाय स्थूल शरीर को आत्मा न मानकर इन्द्रियो को ही आत्मा

मानता है उनका तर्क है कि 'मै देखता हूँ', 'मैं सुनता हूँ' इत्यादि क्रिया व्यापारो मे इन्द्रिय ही सहाय्य मात्र है अत इन्द्रिय ही आत्मा है। बार्हस्पत्य सूत्र मे कहा गया है–

'पश्यामि श्रृणोमीत्यादि प्रतीत्या मरणपर्यन्त।

यावन्तीन्द्रियाणि तिष्ठन्ति तान्येवात्मा'।।३६।।

चार्वाक् पन्थी यदि इन्द्रिय को ही आत्मा माने तो यह भी ठीक नही है क्योकि 'इन्द्रियाणामुपघाते कथ स्मृति'। ऐसा खण्डन न्याय सि० मु० ने किया है। अर्थात् "पूर्वचक्षुषा साक्षात्कृताना चक्षुषोऽभावे स्मरण न स्यात् अनुभवितुरभावात। अन्यदृष्टस्यान्येन स्मरणासम्भवात्"। अत स्मरणानुपत्ति होने से इन्द्रियात्मवाद भी खण्डित हो जाता है।

मनसात्मवादी चार्वाक के अनुसार नित्यमनस् इन्द्रिय ही आत्मा है क्योंकि कभी इन्द्रियादि के अभाव मे भी मन का अस्तित्व बना रहता है। जैसे चक्षुरिन्द्रिय के नष्ट हो जाने पर भी उसके द्वारा देखे गये पदार्थो का भान होता है।[1]

चार्वाक का एक अन्य सम्प्रदाय प्राण को ही आत्मा स्वीकार करताहै– "प्राण एव आत्मा"। वार्हस्पति सूत्र ३८। शरीर मे प्राण की ही प्रधानता है क्योकि इस प्राणवायु के निकल जाने पर शरीर, इन्द्रिया तथा मन निष्क्रिय हो जाते है। श्रुति भी कहती है–

"अन्योतर आत्मा प्राणमय" (तै० ३०२/२/१)।

चार्वाक् "चैतन्य विशिष्ट देह ही आत्मा है" इस तथ्य के प्रति दृढ तर्क देते है कि यदि शरीर से भिन्न कोई आत्मा है जो शरीर से निकलकर परलोक चला जाता है तो वह अपने बन्धु–बान्धवो के करूण क्रन्दन को सुनकर वापस क्यो नही आता है जब कि आ जाना चाहिये।

विद्वानो का मत है कि सभी चार्वाक्, आत्मा और शरीर की अभिन्नता मे विश्वास नही करते है ये लोग चार्वाक् को दो रूपो मे वर्गीकृत करते है–

१– धूर्त चार्वाक्, २– सुशिक्षित चार्वाक्।

---

[1] इतरेन्द्रिया हा भावेऽसत्वात् मन एवात्मा।।३७।।

धूर्त चार्वाक् आत्मा और शरीर की अभिन्नता को मानते है जबकि सुशिक्षित नही। चार्वाक् मानता है कि आत्मा अमर नही है शरीर नाश से आत्मा का नाश है वर्तमान जीवन के अतिरिक्त और कोई दूसरा जीवन नही है। पुनर्जन्म को मानना निरर्थक है।

नैतिक विचार

भारतीय दर्शन मे अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष ये चार पुरूषार्थ माने गये है, ये चारो जीवन के चरमलक्ष्य है। अतएव इसे निःश्रेयस् भी कहते है। इन चारो मे आस्तिक धर्म और मोक्ष को पुरूषार्थ मानते है और नास्तिक लोग अर्थ और काम को **"अर्थकामौ पुरूषार्थे"**। (वार्ह०सू० २७)

चार्वाक् दर्शन केवल 'काम' को ही पुरूषार्थ मानता है "काम एवैक पुरूषार्थ ।" क्योकि अर्थ काम का सहायक है इसलिये ये लोग अर्थ की सत्ता भी स्वीकार करते है। चार्वाक् दर्शन का सिद्धान्त 'सुखवादी' सिद्धान्त कहलाता है, स्वेच्छारपूर्वक सुखमय जीवन व्यतीत करना ही पुरूषार्थ है अपने पास द्रव्य न रहने पर भी कर्ज लेकर घी पीना चाहिये, कर्ज को लौटाने की चिन्ता व्यर्थ है क्योकि शरीर के भस्म होने पर जीव लौटकर आने वाला नही।

"यावत् जीवेत सुख जीवेत ऋण कृत्वा घृत पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य कि पुनरागमन कुत ।।

(बार्हस्प० सूत्र)

कुछ लोगो का तथा श्रुतियो का मत है कि सुख भोग क्षणिक होता है अत मिथ्या है किन्तु इसके उत्तर मे चार्वाक् कहते है कि ऐसा मानना ठीक नही है क्योकि मालती कुसुम की आयु, किशुक के समान दीर्घनही होती तब भी उसे कोई मिथ्या मानकर त्याग नही देता है। कुछ लोगो का कहना है कि सुख दु ख से मिश्रित है अत

त्याज्य है इसपर चार्वाक का कहना है कि कोई भी चतुर व्यक्ति अन्न खाना इसलिये नही छोड देता है कि उसमे भूसा लगा है।[1]

चर्वाक परलोक का भी निराकरण करता है। चार्वाक के मत मे स्वर्ग और नरक का विचार कल्पना मात्र है क्योकि चार्वाक के मत मे जब शरीर से भिन्न आत्मा ही नही है तब स्वर्ग–नरक की प्राप्ति किसे होगी। चार्वाको का आरोप है कि ब्राह्मणो ने अपने हित और जीवन निर्वाह के लिये स्वर्ग और नरक का भय पैदा किया है जिससे वह अपनी प्रभुता को स्थापित करने मे सफल रहे। चार्वाक मानते है कि स्वर्ग और नरक का प्रत्यक्षीकरण नही होता है अत इसका अस्तित्व नही है। चार्वाको का विचार है कि यदि थोडी देर के लिये स्वर्ग और नरक का अस्तित्व मान भी ले तो वह स्वर्ग और नरक इसी ससार मे निहित है। इस ससार मे जो व्यक्ति सुखी है वह स्वर्ग मे है और जो दुखी है वह नरक मे है। इसलिये चार्वाक मानते हें ''सुखमेव स्वर्गम्'' ''दुखमेव नरकम्''। अत इस लोक के अतिरिक्त किसी पारलौकिक जगत की कल्पना करना व्यर्थ है।

चार्वाक दर्शन ईश्वर की सत्ता का भी निषेध करता है। और आध्यात्मिक धार्मिक तथा नैतिक मूल्यो को मानसिक भ्रान्ति कहता है। अत चार्वाक उनके रक्षक के रूप मे ईश्वर की आवश्यकता अनुभव नही करता है। चार्वाक का मानना है कि सृष्टि का कारण कोई नही हो सकता है यह सृष्टि स्वभावत ही होती है चारो मूल भौतिक पदार्थ आपस मे मिलकर समस्त जगत के पदार्थ को उत्पन्न करते है।

चार्वाक् ज्ञान मीमासीय तर्क से खण्डन करते हुये कहता है कि, ईश्वर का ज्ञान प्रत्यक्ष के द्वारा नही होता है अत ईश्वर का अस्तित्व नही है। चार्वाक ईश्वर को वेद प्रमाणित भी स्वीकार नही करता है क्योकि उसके मत मे वेद प्रामाणिक नहीं है अत वेद मे वर्णित ईश्वर का विचार भी प्रामाणिक नही है। आधुनिक वैज्ञानिक भौतिकवाद

---

[1] त्याज्य सुख विषय   ब्रीहिन जिहासहति सितोत्ततमण्डुलाद्यान

की दृष्टि से देखने पर दर्शन की हमारी यह प्राचीन लोकायत् प्रणाली, स्पष्ट ही अनेक त्रुटियो से भरी थी। वह एक किस्म के स्वयस्फूर्त और सीधे–सादे भौतिकवाद का स्वरूप थी। किन्तु प्राचीन भारत के इस भौतिकवाद ने प्रकृति और ससार के बारे मे हमारे ज्ञान के प्रथम तत्व को मोटे तौर से प्रकट किया था। यद्यपि इसका कोई ठोस वैज्ञानिक आधार नही था तो भी इसने सामाजिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया। इस दर्शन ने अन्धविश्वास और मानवीय क्रियाकलापो मे दैवी हस्तक्षेप के विचारो को ठुकराया।

इस प्रकार लोकायत दर्शन एक प्रगतिशील और आशावादी दर्शन था। यह दर्शन न केवल परिकल्पना के महान सृजनात्मक प्रयासो के लिये बल्कि जनता की भौतिक खुशहाली और सास्कृतिक प्रगति के लिये भी रास्ता तैयार किया।

जैन दर्शन

जैन दर्शन भारतीय दर्शन के विशाल परिवार का एक विशिष्ट सदस्य है, जिसे विद्वान जैनाचार्यो ने चिन्तन, मनन, आलोचन प्रत्यालोचन आदि अनुशीलन के विविध प्रकारो का आहार दे ऐसा पुष्ट और बलवान ऐसा समृद्ध और सम्पन्न बनाया है जिससे वह अनन्त काल तक जिज्ञासु जनो का मनस्तोष करता रहेगा।

नास्तिक दर्शन की परम्परा मे चार्वाक दर्शन के उपरान्त जैन दर्शन का महत्वपूर्ण स्थान है। जिस समय भारतवर्ष मे बौद्ध दर्शन का विकास हो रहा था। दोनो ही दर्शन छठी शताब्दी मे विकसित होने के कारण समकालीन दर्शन कहे जाते है। किन्तु दोनो दर्शनो मे अनेक मौलिक अन्तर विद्यमान होने पर भी ये दोनो धर्म अपने बाह्य रूप मे समान लगते है। कारण इसका यह है कि ये दोनो धर्म ब्राह्मण धर्म से पृथक हैं और दोनो भिक्षुओ के धर्म के रूप मे प्रसिद्ध है।

जिस प्रकार विष्णु को देवता मानने वाले अपने को 'वैष्णव' कहते है और शिव को शक्ति मानने वाले अपने को 'शाक्त' कहते है उसी प्रकार 'जिन' को देवता मानने

वाले को 'जैन' कहते है। तथा उनके द्वारा अपनाये गये धर्म को जैन धर्म कहते है।'जिन' शब्द का अर्थ है 'जीतने वाला' अर्थात जो व्यक्ति अपने इन्द्रियो पर तथा सभी प्रकार के विकारो पर विजय प्राप्त कर लिया हो उसे 'जिन्' कहते है। 'जिन' लोग स्वभाव सिद्ध, जन्म सिद्ध, शुद्ध, बुद्ध, भगवान नही होते है। वरन् साधारण प्राणिमात्र की तरह जन्म ग्रहण करते है तथा सभी विकारो पर विजय प्राप्त कर परमात्मा बन जाते है, अर्थात् ईश्वरत्व को प्राप्त होते है। ऐसे वीतराग व्यक्ति ही 'जिन' है तथा इसके द्वारा उपदिष्ट धर्म 'जैन धर्म' कहलाता है।

जैन अनुश्रुति के अनुसार जैन धर्म के आदि प्रवर्तक 'ऋषभदेव' थे और इन्ही से जैन धर्म तथा परम्परा का प्रारम्भ है भगवान ऋषभदेव को जैन ग्रन्थो के अनुसार 'जिन' या तीर्थकर मानते है। सम्पूर्ण जैनधर्म तथा दर्शन ऐसे ही चौबीस तीर्थकरो की वाणी या उपदेश का सकलन मात्र है इन तीर्थकरो की परम्परा मे भगवान ऋषभदेव को आद्य तथा पार्श्वनाथ को २३वा और भगवान महावीर को अन्तिम तीर्थकर माना जाता है जैन आचार्य परम्परा मे जो चौबीस तीर्थकर हुये है उनका नाम इस प्रकार है–आदिनाथ (ऋषभदेव), अजितनाथ, सभवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयासनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, या मल्ली देवी, मुनि सुवृत्, रमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर। इसी आचार्य परम्परा के द्वारा जैन सिद्धान्त अनादि काल से सुरक्षित है।

चौबीसवे तथा अन्तिम जैन तीर्थकर वर्धमान महावीर का जन्म आज से लगभग २५३३ वर्ष पूर्व ईसा पूर्व ५४० मे तत्कालीन वैशाली जनपद के कुण्ड ग्राम मे हुआ था। उनके पिता सिद्धार्थ एक लिच्छवी राजा थे तथा माता त्रिशला विदेह के राजा की बहन थी । जन्म के पूर्व माता ने १४ अति शुभ स्वप्न देखे थे[१] । बुद्ध की महावीर के बचपन

[१] भबावन महाबीर की वाणी– प्रकाशन

का नाम वर्द्धमान था। ये राजवश के थे। तीस वर्ष की अवस्था मे परिव्राजक हुये और केवल ज्ञान की प्राप्ति के लिये वृत्तो का पालन करते हुये इन्होने कठोर तपस्या की और इनका मनोरथ सफल हुआ और यह सर्वज्ञ हो गये। तभी से ये महावीर के नाम से प्रसिद्ध हुये तीस वर्ष तक धर्म प्रचार कर ७२ वर्ष की अवस्था मे इन्होने पावा नगरी मे निर्वाण लाभ किया। इनकी मृत्यु के बाद जैनियो मे दो सम्प्रदाय हो गये—एक **श्वेताम्बर** दूसरा **दिगम्बर**। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार महावीर का विवाह हुआ था तथा उनकी एक कन्या थी। लेकिन दिगम्बर मान्यता के अनुसार महावीर का विवाह नही हुआ था। वे अन्तर्मुखी प्रकृति के थे तथा सदा आत्मचिन्तन मे निमग्न रहा करते थे।

भगवान महावीर के उपदेशो से जैन धर्म के द्वादशाग रूप शास्त्रो की रचना हुई है। भगवान महावीर ने अपने उपदेश तत्कालीन लोकभाषा <u>अर्धमागधी</u> मे दिये थे। उनकी उपदेश सभा <u>समवसरण</u> कहलाती थी तथा उसमे पशु—पक्षी से लेकर देवताओ तक सभी के लिये स्थान रहता था। महावीर ने साधु—साध्वी, पुरूष गृहस्थ भक्त तथा महिला गृहस्थ भक्त (श्राविका) के एक चतुर्विध धर्मसघ की स्थापना की जो आज भी विद्यमान है।

महावीर के पूर्व पार्श्वनाथ थे जिन्होने बहुत से कठोर नियमो का पालन कर अन्तकरण की शुद्धि के लिये अपने शिष्यो को उपदेश दिया था। पार्श्वनाथ के उपदेशो के आधार पर महावीर ने अपना कर्त्तव्य निश्चय किया। महावीर ने कहा कि साधुओ को भी इन्द्रिय निग्रह कर कठोर रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये तथा ससार से निर्लिप्त रहना चाहिये। और अन्तत सभी साधुओ को भी दिगम्बर रहने का आदेश दिया। ऐसा आदेश देने के पीछे कारण यह था कि उनके अनुसार जब तक साधु लोग वस्त्र का भी परित्याग नही कर देगे तब तक उनके मन से अच्छे तथा बुरे का विचार दूर नही हो सकेगा एव वे लोग निर्लिप्त न हो सकेगे। इस तरह के उपदेश से ही जैन

धर्म मे दो विभाग हुये श्वेताम्बर–दिगम्बर। किन्तु इन दोनो सम्प्रदायो मे (विभागो से) इनके बाह्य रूप मे ही भेद हुआ किन्तु तात्विक विचार मे कोई परिवर्तन न हुआ।

साहित्य

आचार्य स्थूलभद्र के प्रयास से पाटलिपुत्र की सभा मे धार्मिक ग्रन्थो का जो सग्रह हुआ था, वह मान्य नही हुआ। अतएव ४५४ ई० मे भावनगर मे (गुजरात के समीप) वल्लभी मे देवार्धिगण की अध्यक्षता मे दूसरी सभा हुई और उसमे इन ग्रन्थो के सग्रह के लिये विचार किया गया। भगवान महावीर ने जो भी उपदेश दिया था उसको उनके गणधरो ने ग्रन्थ रूप मे रचा। महावीर के प्रधान गणधर गौतम इन्द्रभूति थे उन्होने महावीर के उपदेशो को वारह अग और चौदह पर्व के रूप मे निबद्ध किया। यह श्रुत अग प्रविष्ट और अग बाह्य रूप से दो भागो मे बटा है। अग प्रविष्ट श्रुत 'द्वादशाग श्रुत' कहलाता है। आगम् ग्रन्थो से जानकारी प्राप्त होती है। देवराजसूरि ने जो दिगम्बर सम्प्रदाय के एक बडे तार्किक माने जाते है इन्होने 'एकीभावस्त्रोत' लिखा। मल्लिषेणसूरि ने स्याद्मञ्जरी की रचना की। यशोविजय, हेमचन्द्र, देवसूरि, वादिराजसूरि गुणरत्न आदि अनेक जैन साहित्य के आचार्य कवि थे।

जैन दर्शन के सिद्धान्त

जैन दर्शन के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त सक्षेप मे इस प्रकार हैं–

अनेकान्तवाद

जैन दर्शन की मुख्य विशेषता इस बात मे है कि वह नितान्त निष्पक्ष दृष्टि से वस्तु को देखने का प्रयत्न करता है। वह वस्तु के कतिपय अश को ही देखकर सतुष्ट नही हो जाता है बल्कि उसको समग्र रूप से देखना चाहता है। हरिभद्रसूरि के वचनो मे जैन दर्शन की यह धारणा है कि–

"आग्रहीवत् निनीषति युक्तितत्र, यत्र मतिरस्य निविष्टा।।
पक्षपातरहितस्यातु युक्तिर्यत्र तत्र मतिरेनि निवेशम्।।

किसी आग्रही मनुष्य की बुद्धि एक बार जब किसी बात को पकड लेती है तब उसी की पुष्टि मे वह युक्तियो के प्रयोग का सहारा लेता है किन्तु जो निष्पक्ष और अनाग्रही होता है उसकी बुद्धि युक्ति का अनुगमन करती है। इस प्रकार युक्तियो के माध्यम से जो वस्तु का स्वरूप प्रकट होता है, निष्पक्ष विचारक उसी को स्वीकार करता है।

जैन दर्शन यह मानता है कि प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक होती है–"अनन्त धर्मात्मकमेव तत्वम"। इसलिये किसी मनुष्य के स्वरूप ज्ञान के लिये उसके देशकाल–जाति, जन्म, धर्म–वर्ग आदि सत्तात्मक धर्मो का ज्ञान आवश्यक है। पुन उस मनुष्य के निषेधात्मक गुणो की भी जानकारी अत्यन्त अपेक्षित है। प्रत्येक पदार्थ के तीन लक्षण सामान्य रूप से होते है– उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य। इस प्रकार द्रव्य नित्यानित्य है सत् और असत् दोनो है। जो धर्म जिस पदार्थ मे विद्यमान होता है उन्हें उस पदार्थ का स्वपर्याय कह जाता है और जो धर्म नही रहता है उसे पर्याय कहा जाता है। इस प्रकार वस्तुत अनन्त धर्मो का आस्पद होती है।

स्याद्वाद

पदार्थ का अनेकान्त रूप जिस पद्धति से ज्ञात होता है उसे स्याद्वाद कहा जाता है जिसे सप्तभगीनय के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है–सप्तभगीनय के सात अग होते है–जैसे–

१– (घट) स्यादस्ति– घट् कथचित–किसी अपेक्षा से–किसी रूप से है।

२– (घट) स्यान्नास्ति– घट् कथचित् नही है।

३– (घट) स्यात् अस्ति च, नास्ति च–घट् कथचित् है भी–कथचित् नही भी है।

४– (घट) स्याद् वक्तव्य–घट् कथचित अवक्तव्य–अनिर्वाच्य है।

५– (घट) स्यात् अस्ति च, अवक्तव्यश्च–घट् कथचित् अस्तित्ववान् और अवक्तव्य है।

६– (घट) स्यान्नास्ति च अवक्तव्यश्च–घट् कथचित–अस्तित्वशून्य और अवक्तव्य है।

७– (घट) स्यात् अस्ति च, नास्ति च, अवक्तव्यश्च– घट् कथचित् अस्तित्वयुक्त, अस्तित्वशून्य और अवक्तव्य है।

इन विरोधी धर्मो की विवक्षा 'स्यात्' से ही सभव है। इस दर्शन मे यह माना गया है कि एक वस्तु को जो व्यक्ति पूरी तरह जानता है वह सारे वस्तुओ का ज्ञाता है और जो सारे वस्तुओ का ज्ञाता है वही एक वस्तु का पूर्ण ज्ञाता होता है।[1]

द्रव्य विचार

'गुण पर्यायवद् द्रव्यम्'। जिसमे 'गुण' व 'पर्याय' हो वह द्रव्य है। जैन दर्शन मे सात पदार्थ माने गये है– जीव, अजीव, आसव, बन्ध, सम्वर, निर्जरा, मोक्ष।

जैनो के मतानुसार द्रव्य का विभाजन दो वर्गो मे हुआ है १– अस्तिकाय, २– अनस्तिकाय। काल ही ऐसा द्रव्य है जिसमे विस्तार नही है। और काल को छोडकर सभी द्रव्यो को अस्तिकाय द्रव्य कहा जाता है। अस्तिकाय का विभाजन जीव और अजीव मे होता है।
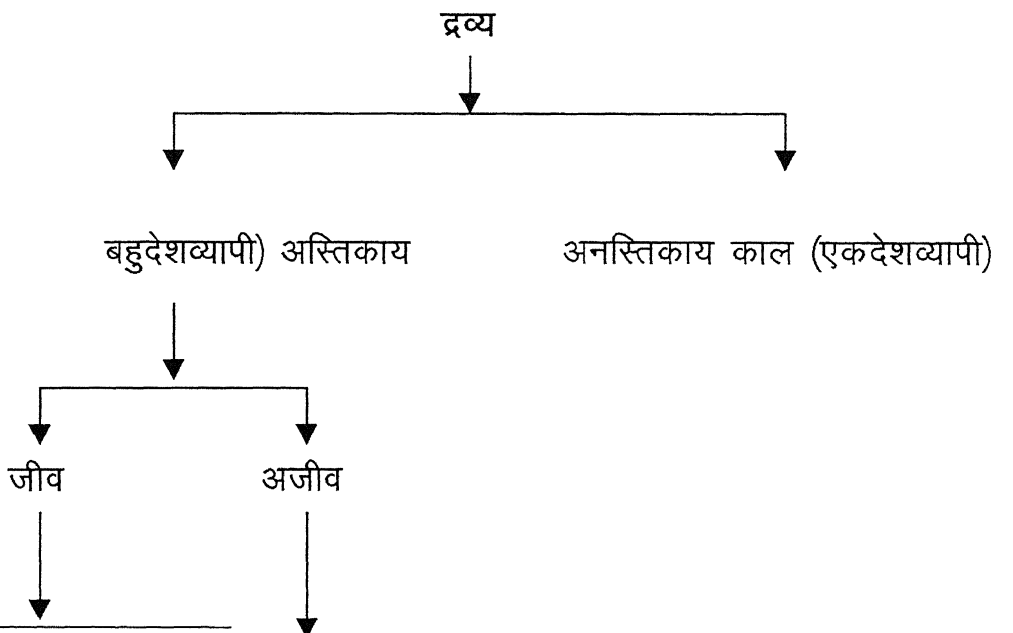
[1] एको भाव सर्वथा येन द्रष्ट सर्वे भावा सर्वथा तेन द्रष्टा। सर्वभावा सर्वथा येन द्रष्टा एकोभाव सर्वथा तेन द्रष्टा ।। (षडदर्शन समु० टीका पृ० २३२)
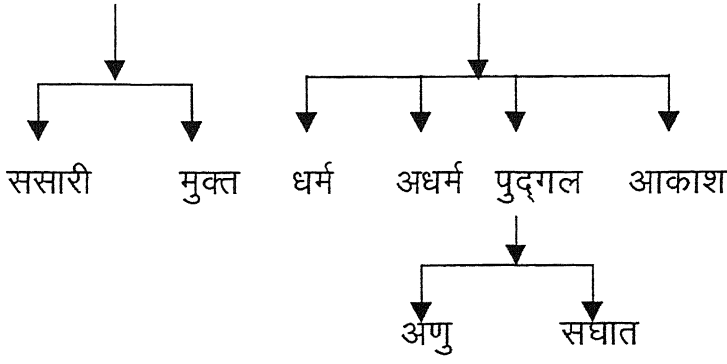
जीव – जीव एक चेतन द्रव्य है जो शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण और पौदगलिक आठ घाती कर्मो से अनादि काल से आवृत्त है। ये चेतन द्रव्य ही ऐसा है जिसके कारण मनुष्य, पशु–पक्षी आदि सभी प्राणियो का वास्तविक स्वरूप है अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्तश्रद्धा और अनन्त सुख से युक्त होती है। इसी को 'अनन्त चतुष्टय' भी कहते हैं। यह आत्मा की शुद्ध अवस्था का द्योतक है। किन्तु जब पुदगल[1] से सम्बन्धित हो जाता है तब 'जीव' कहलाता है। जीव ससारी है और आत्मा स्वयप्रकाश है और अन्य वस्तुओ को भी आलोकित करता है। आत्मा नित्य और चेतन है यह जगह नही घेरता है। इसीलिये 'जीव' की परिभाषा इन शब्दो मे दी गयी है– 'चेतना लक्षणेजीव'। यह जैनो का जीव विचार न्यायवैशेषिक से भिन्न है, क्योकि न्याय वैशेषिक मे 'चैतन्य' को आत्मा का 'आगन्तुक लक्षण' माना गया है। आत्मा का शुद्ध रूप इन आठ प्रकार के कर्मो से ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय से आवृत्त होने के कारण इस ससार दशा मे तिरोहित रहता है। सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चरित्र के निष्ठापूर्वक सतत् देखने से जब घाती समस्त कर्मो का पूर्णतया क्षय या विनाश हो जाता है तब मोक्षावस्था मे जीव के इस नैसर्गिक निर्मल स्वरूप का प्राकट्य होता है। जीव दो प्रकार के होते है– **मुक्त** और **बद्ध**।

जिन्होने मोक्ष प्राप्त कर लिया, वे मुक्त कहलाते है। ये अनन्त चतुष्टय से सम्पन्न होकर निरन्तर उर्ध्व गतिशील रहता है। और जो 'बन्धन' मे होता है वह 'बद्ध

---

[1] पूर्यन्ते गलन्तीति पुद्गला।

जीव' कहलाता है 'बद्ध जीव' भी दो प्रकार का होता है– **'त्रस'** और **स्थावर**। 'त्रस' जीव गतिमान और स्थावर गतिहीन होते है। जीव अपने आयतन भूत शरीर के अनुसार दीपक प्रकाशवत सकोच–विकास प्राप्त करता है जिससे हस्ति शरीर मे पहुचकर हस्ति परिणाम और पुत्तिका शरीर मे पुत्तिका परिणाम का बन जाता है। किन्तु ऐसा मानना ठीक नही है क्योकि इससे छतादिगत प्रदीप प्रकाशवत् चीटी के शरीर मे जीव की महानता तथा गृहगत् प्रदीप प्रकाशवत् हस्त के शरीर मे अल्पचेतना उत्पन्न होगी तथा शरीर मात्र परिच्छिन्न जीव अवयवो के आनन्त्य की कल्पना करनी होगी जो सम्भव नही।

अजीव – चैतन्यहीन द्रव्य 'अजीव' है। इसके पॉच भेद हैं– पुद्गल, आकाश, काल, धर्म और अधर्म। पुदगल के दो भेद हैं–अणु रूप और सघातरूप। इन दोनो मे स्पर्श, रस, गन्ध तथा रूप गुणो का अस्तित्व होता है। जैन दर्शन मे शब्द और कर्म को पौदगलिक–पुद्गल जन्य माना जाता है।

आकाश

आवरण का अभाव ही 'आकाश' है। अस्तिकाय– मूर्त्तद्रव्यो को प्रवेश और निर्गम के लिये अवकाश देने वाला पदार्थ आकाश है। आकाश दो प्रकार का होता है–लोकाकाश और अलोकाकाश। लोकाकाश मे जीव, पुद्गल, धर्म और अधर्म निवास करते है। जगत के बाहर जो अन्य भाग है अलोकाकाश है।

काल– पदार्थ के विविध परिणामो का निमित्तभूत पदार्थ काल है। इसके दो भेद है – १–व्यवहारिक। २–परमार्थिक।

व्यवहारिक काल अनित्य होता है और परमार्थिक काल नित्य होता है। काल 'अनस्तिकाय' कहा जाता है क्योकि यह स्थान नही घेरता है।

धर्म और अधर्म– द्रव्यो को गतिशील बनाने मे सहायक पदार्थ को धर्म कहा जाता है। और अधर्म–धर्म का प्रतिलोम है। पदार्थो के गति का अवरोधक पदार्थ 'अधर्म' है।

आश्रव– चूँकि जीव अपने शुभ–अशुभ कर्मो के अनुसार ही पुद्गल कणो को आकृष्ट करता है, इसलिये आकृष्ट पुद्गल–कण को 'कर्म–पुद्गल' कहा जाता है। उस स्थिति मे जब कर्म–पुद्गल आत्मा की ओर प्रवाहित होते है उसे 'आश्रव' कहा जाता है।

बन्ध– आश्रव से जीव अपने स्वरूप को भूल जाता है और 'बन्धन' की ओर ले जाता है। जब वे पुद्गल–कण जीव मे प्रविष्ट हो जाते है तब उस अवस्था को बन्धन कहा जाता है। बन्धन दो प्रकार का होता है – १– भाव बन्धन, २– द्रव्य बन्धन

जब आत्मा मे चार प्रकार की कुप्रवृत्तियॉ प्रविष्ट कर जाती है त्यो ही आत्मा बन्धन को प्राप्त होती है इसी को 'भाव–बन्ध' कहते है और जब जीव का पुद्गल से सयोग होता है तो 'द्रव्य–बन्ध' कहलाता है।

सम्वर–जीव और कर्म के सम्बन्ध का उदय जिस साधन से प्रतिरुद्ध होता है, वह सम्वर है। नये पुद्गल के कणो को जीव की ओर प्रवाहित होने से रोकना 'सवर' कहा जाता है।

निर्जरा– जिस साधन से जीव और कर्म के सम्बन्ध की निवृत्ति होती है, वह 'निर्जरा' है। पुराने पुद्गल के कणो का क्षय 'निर्जरा' कहा जाता है इस प्रकार आगामी पुद्गल के कणो को रोककर तथा सचति पुद्गल के कणो को विनष्ट कर जीव कर्म पुद्गल से मुक्त हो जाता है।

मोक्ष– जीव के स्वरुप को आवृत्त करने वाले समस्त कर्मो का क्षय ही 'मोक्ष' है। जैन दर्शन मे मोक्षानुभूति के लिये सम्यक ज्ञान, सम्यक दर्शन और सम्यक चरित्र अर्थात् तिरल को आवश्यक माना गया है। **सम्यक दर्शन–ज्ञान चरित्राणि मोक्षमार्ग·** ।[1]

मोक्ष के लिये त्रिरत्न के साथ–साथ 'पच–महाव्रत' का पालन भी आवश्यक है। बौद्ध धर्म मे इसे 'पचशील' के नाम से अभिहित किया गया है। ये महाव्रत है– अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

---

[1] तत्वार्थधिगम सूत्र–१,२–३।

१. **अहिसा**– 'ज्ञानी होने का सार यही है, कि वह किसी भी प्राणी की हिसा न करे इतना जानना ही पर्याप्त है, कि अहिसामूलक समता ही धर्म है अथवा यही अहिसा का विज्ञान है।[1]सभी जीव जीना चाहते है, मरना नही। इसलिये प्राणवध कोभयानक जानकर निर्ग्रन्थ उसका वरण करते है। जीव का वध अपना ही वध है। जीव की दया अपनी ही दया है। अत आत्महितैषी पुरुषो ने जीवहिसा का परित्याग किया है।

२ **सत्य**– सत्य का अर्थ है मनसा वाचा,कर्मणा असत्य का परित्याग करना। स्वय अपने लिये तथा दूसरो के लिये क्रोधादि या भय आदि के वश होकर हिसात्मक असत्य वचनो को न तो स्वय बोलना चाहिये, न दूसरो से बुलवाना चाहिये।

३ **अस्तेय**– अस्तेय का अर्थ है चोरी का निषेध। ग्राम, नगर अथवा अरण्य मे दूसरे की वस्तु को देखकर उसे ग्रहण करने का भाव त्याग देने वाले साधु के तीसरा अचौर्यव्रत होता है।

४ **ब्रह्मचर्य**– इससे तात्पर्य है 'वासनाओ का त्याग' करना। 'ब्रह्मचर्य' का अर्थ साधारणत इन्द्रियो पर रोक लगाना है।

५ **अपरिग्रह**– अपरिग्रह का अर्थ है 'विषयासक्ति का अभाव'। निरपेक्षभावनापूर्वक चरित्र का भार वहन करने वाले साधु का बाह्याभ्यन्तर, सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करना, पाचवपरिग्रह त्याग महाव्रत कहा जाता है। इस प्रकार यदि जैन प्रणाली को समग्र रुप से देखे तो हम उसमे पर्याप्त मात्रा मे आदर्शवाद पाते है किन्तु वह भौतिकवाद के तत्त्वो से भी सम्बद्ध है। यह दर्शन जगत के मूल मे अनेक तत्त्वो की सत्ता स्वीकार करता है। बहुतत्ववाद का समर्थक होने के साथ–साथ वास्तववाद का अनुवायी है। जैन मत प्रारम्भ मे धर्म के रुप मे उदित हुआ किन्तु बाद मे यह दर्शन के रुप मे प्रसिद्ध हो गया।

---

[1] भगवान महावीर की वाणी प्रकाशन रामकृष्ण मठ नागपुर– पृ० १६।

सर्वदर्शन सग्रह मे लिखा गया है कि आस्रव तथा सवर के मोक्षोपयोगी तत्वो का प्रतिपादन ही जैन दर्शन का प्रधान विषय है।[1]

आश्रवोभवर्हतु स्यात सवरो मोक्षकारणम्। इतीयमार्हती दृष्टिरन्यदस्या प्रपचनम् ।।

३. बौद्ध दर्शन

अवैदिक दर्शनो मे अन्तिम बौद्ध दर्शन है। बौद्धमत के प्रवर्तक गौतमबुद्ध थे। इस धर्म के उदय होने मे सहायक उस समय सभवत भारत की परिस्थितिया थी। दास प्रथा का प्रचलन अत्यधिक बढ गया था। समाज मे पुरोहित वर्ग का बौद्धिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रो मे प्रभुत्व बढ रहा था। बौद्ध धर्म का दृष्टिकोण पुरोहित विरोधी था। और यह दर्शन कर्मकाण्ड का विरोध करता था। ब्राह्मण धर्म का हरास बौद्ध धर्म के उदय से शुरू हो गया था।

बौद्ध धर्म के सस्थापक महात्मा बुद्ध का जन्म ईसा की छठी शताब्दी ईसा पूर्व हुआ था इनका जन्म आज के नेपाल की सीमा पर स्थित लुम्बिनी वन मे ईसा पूर्व ५६७ मे हुआ था। उनके पिता शुद्धोधन शाक्य वश के राजा थे, उनकी मॉ का नाम रानी महामाया था। राजकुमार सिद्धार्थ का मन राजमहल के वैभव और विलास मे नही लगता था कारण कि उनका हृदय अपने चारो ओर व्याप्त पीडा और दु ख के दृश्यो से द्रवित रहता था। २६ वर्ष की आयु मे उन्होने अपने एक वर्ष के पुत्र, पत्नी यशोधरा तथा राजप्रासाद के सुख–भोग को त्याग दिया। इसे 'महाभिनिष्क्रमण' कहते है। ३५ वर्ष की अवस्था मे गया के समीप बोधिवृक्ष के नीचे कठिन तपस्या करते हुये 'बुद्धत्व' को प्राप्त किये। यहा से मृगदाव (सारनाथ) जाकर पॉच भिक्षुओ को उपदेश दिया जिसे 'धर्मचक्र प्रवर्तन की सज्ञा दी जाती है। और यही से बौद्ध धर्म का आरभ हुआ। भगवान बुद्ध धर्म की शिक्षा जनसाधारण की भाषा 'मागधी' मे देते रहे। अन्त मे मल्लगणराज्य की राजधानी कुशीनगर (कसया, जिला देवरिया उ० प्र०) में ८० वर्ष की अवस्था मे

---

[1] सर्वदर्शन सग्रह – पृष्ट १४३–३० प्रो० उमाशकर 'ऋषि' चौखभा विद्याभवन वारणसी।

निर्वाण प्राप्त किया। किन्तु यह एक अद्भुत सयोग की ही बात कही जा सकती है कि भगवान बुद्ध का जन्म, बोधिप्राप्ति एव निर्वाण ये तीनो घटनाए एक ही दिन बैसाख पूर्णिमा को हुई। कुछ ही समय बाद यह धर्म विश्व धर्म बन गया।

बुद्ध ने कोई पुस्तक नही लिखी उनके उपदेश मौलिक ही होते थे बुद्ध की मृत्यु के बाद उनके शिष्यो ने उपदेशो का सग्रह 'त्रिपिटक' के रूप मे किया। त्रिपिटक अपने मूल रूप मे पाली भाषा मे लिखे गये है। इनमे सुत्त पिटक, अभिधम्म पिटक विनय पिटक है।

'सुत्त पिटक' मे धर्म सम्बन्धी वर्णन है और 'अभिधम्म पिटक' मे बुद्ध के दार्शनिक विचारो का उल्लेख है और 'विनयपिटक' मे नीति सम्बन्धी वर्णन है। त्रिपिटक के अलावा मिलिन्दपन्हो, बुद्धचरित (अश्वघोष) से भी बौद्ध धर्म की जानकारी प्राप्त होती है। बुद्ध एक समाज सुधारक थे दार्शनिक नही थे क्योकि दार्शनिक वही होता है जो आत्मा–जीव जगत आत्मा–परमात्मा आदि के विषय मे सतत चिन्तन मे क्रियाशील रहता है किन्तु बुद्ध दर्शनशास्त्र से सम्बन्धित किसी प्रश्न पर 'मौन' रहा करते थे 'अव्याकतानिप्रंश्नानि' कहकर टाल जाते थे ऐसे १० प्रश्न थे।

१ क्या यह विश्व शास्वत है?

२ क्या यह विश्व अशास्वत है?

३ क्या यह विश्व असीम है?

४ क्या यह विश्व ससीम है?

५ क्या आत्मा और शरीर एक है?

६ क्या आत्मा शरीर से भिन्न है?

७ क्या मृत्यु के बाद तथागत का पुनर्जन्म होता है?

८ क्या मृत्यु के बाद तथागत का पुनर्जन्म नही होता है?

९ क्या उनका पुनर्जन्म होना और न होना दोनो ही बाते सत्य है?

१० क्या उनका पुनर्जन्म होना और न होना दोनो ही बाते असत्य है?

इसमे चार प्रश्न विश्व से, दो आत्मा से, चार प्रश्न 'तथागत' से सम्बन्धित है। बौद्ध दर्शन मे 'तथागत' निर्वाण प्राप्त व्यक्ति को कहा जाता है।

बौद्ध दर्शन के सिद्धान्त

बौद्ध दर्शन के मुख्य सिद्धान्त सक्षिप्त रूप मे निम्नवत् है–

चार आर्यसत्य– भगवान् बुद्ध के सारे उपदेश इन्ही चार आर्य सत्यो मे सन्निहित हैं। ये चार आर्यसत्य इस प्रकार हैं–

१ ससार मे दु ख है।   २ दु खो का कारण है।

३ दु खो का निरोध सभव है।   ४ दु खो के निरोध का मार्ग है।

इन्ही चार आर्य सत्य को अन्य शब्दो मे दु ख, दु ख समुदाय दु ख निरोध और दु ख निरोधगामिनी प्रतिपदा क्रमश कहा गया है। ये चार आर्य सत्य 'मज्झिम निकाय' मे वर्णित है। बुद्ध का प्रथम आर्यसत्य है– ससार दु खमय है, सब कुछ दु खमय है (सर्व–दुख दु खम्) "जन्म मे दु ख है, नाश मे दु ख है रोग दु खमय है, मृत्यु दु खमय है, अप्रिय से सयोग दु खमय है और प्रिय से वियोग दु खमय है सक्षेपत से उत्पन्न पन्चस्कन्ध दु खमय है।[1]

ये चारो आर्य सत्य प्रामाणिक है और आर्य–पुरूषो को भी मान्य है क्योकि दु ख के अस्तित्व मे किसी का मतभेद नही है क्योकि इसका अनुभव प्रत्येक प्राणीमात्र को होता है। बौद्ध धर्म के चार आर्यसत्य के समान योगशास्त्र मे महर्षि व्यास ने अध्यात्म क्षेत्र मे कहा है कि "अध्यात्मशास्त्र भी चिकित्साशास्त्र की तरह चतुर्व्यूह है। अध्यात्मक्षेत्र मे ससार है, (दु ख), ससार हेतु (दु ख समुदाय), मोक्ष (दु ख निरोध) और मोक्षेपाय (दु ख निरोधका उपाय) ये चार सत्य है। बुद्ध का द्वितीय आर्यसत्य है दु ख समुदाय अर्थात

---

[1] मज्झिम निकाय (१५४)।

ससार मे दु ख ही मात्र नही है बल्कि इस दु ख का कारण भी है। बिना कारण के कार्य नही होता है।

बौद्ध दर्शन मे दु ख के द्वादश हेतु बताये गये है। यह प्रतीत्यसमुत्पाद चक्र ही दु ख समुदाय का कारण है और अविद्या इसकी मूल जननी है। प्रतीत्यसमुत्पाद को पाली भाषा मे 'पाटिच्चसमुत्पाद' कहा जाता है। प्रतीत्यसमुत्पाद से तात्पर्य है कि– 'अस्मिन् (कारणे), सति, इद (कार्य) भवति। अर्थात् कारण विद्यमान होने पर कार्य की अवश्यमेव सिद्धि होती है। जो उत्पन्न होता है वह कार्य होता है कार्य वस्तुत सापेक्ष होता है और न यह सत् होता न असत् होता है केवल 'प्रतीति' होती है। परमार्थिक दृष्टि से प्रतीत्यसमुत्पाद प्रपञ्चोपाशम, शिव और अमृत यह निर्वाण है। इसलिये भगवान बुद्ध ने स्वय प्रतीत्यसमुत्पाद को 'बोधि' कहकर सम्बोधित किया है।

बौद्ध दर्शन मे वर्णित द्वादशनिदाकडिया भूत वर्तमान तथा भविष्य के जीवनो से सम्बद्ध है। भूतकालीन जीवन से सम्बद्ध कडियां है–'भव', 'जाति', 'जरामरण। शेष सात का सम्बन्ध वर्तमान जीवन से है। इस प्रतीत्यसमुत्पाद को तालिका के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

१ अविद्या	२ सस्कार	३ विज्ञान
४ नामरूप	५ षडायतन	६ स्पर्श
७ वेदना	८ तृष्णा	६ उपादान
१० भव	११ जाति	१२ जरामरण

३ तृतीय आर्य सत्य– तृतीय आर्यसत्य है दु ख निरोध। यदि दु ख के कारण का अन्त हो जाय तो दु ख का भी अन्त अवश्य होगा। जब कारण नही रहेगा तब कार्य कैसे हो सकता है? वह अवस्था जिसमे दु खो का अन्त होता है "दु ख निरोध" कही जाती है। दु ख निरोध को बुद्ध ने 'निर्वाण' कहा है। निर्वाण और परिनिर्वाण मे अन्तर उपनिषदो के जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति की तरह है।

निर्वाण मे जीवन का अन्त नहीं होता है अपितु यह जीवन काल मे ही प्राप्त होता है और 'परिनिर्वाण' का अर्थ है मृत्यु के उपरान्त निर्वाण की प्राप्ति।

४ चतुर्थ आर्य सत्य– चतुर्थ आर्य सत्य को 'दुख निरोध गामिनी प्रतिपद' अर्थात् दुख निरोध मार्ग कहा गया है। दुख निरोध मार्ग को बुद्ध दर्शन मे "अष्टाग मार्ग" कहा गया है। इस 'अष्टागिक मार्ग' को बुद्ध ने 'मध्यमा प्रतिपद' कहा है। इस आर्य मार्ग के आठ अक है– जो इस प्रकार है–

१ सम्यक् दृष्टि, २ सम्यक् सकल्प,

३ सम्यक् वाक्, ४ सम्यक् कर्मान्त,

५ सम्यक् आजीव, ६ सम्यक् व्यायाम,

७ सम्यक् स्मृति, ८ सम्यक् समाधि।

बौद्ध धर्म अष्टाग मार्ग के अलावा त्रिरत्न को भी शील, समाधि और प्रज्ञा को निर्वाण प्राप्ति मे अत्यन्त सहायक माना गया है। निर्वाण को पाली भाषा मे 'निब्बान' कहा गया है। 'निर्वाण' का अर्थ है 'बुझा हुआ'। इससे आशय है कि निर्वाण की स्थिति मे विविध वासनाओ की अग्नि बुझ जाती है तथा मनुष्य के स्वभावगत लोभ, घृणा, क्रोध तथा भ्रम की अग्नि शान्त हो जाती है।

बौद्ध दर्शन में आत्मा को स्थायी न मानकर परिवर्तनशील माना गया है। बुद्ध ने शाश्वत आत्मा का निषेध इन शब्दो मे किया है– 'विश्व मे न कोई आत्मा और न आत्मा की तरह कोई अन्य वस्तु है। आत्मा विज्ञान का प्रवाह है। बुद्ध का आत्मा सम्बन्धी विचार से अलग है। महात्माबुद्ध ने नित्य आत्मा की सत्ता का निषेध किया है। पुनर्जन्म से तात्पर्य है विज्ञान प्रवाह की अविच्छिन्नता है। जब एक विज्ञान प्रवाह का अन्तिम विज्ञान समाप्त हो जाता है तब अन्तिम विज्ञान का विनाश हो जाता है फिर एक नये शरीर मे एक नये विज्ञान का प्रादुर्भाव होता है इसी को बुद्ध ने 'पुनर्जन्म' कहा है।

बुद्ध ने अनात्मवाद के साथ[2] अनीश्वरवाद को भी स्वीकार किया है। ईश्वर विश्व का स्रष्टा नही है यह विश्व केवल प्रतीत्य समुत्पाद के नियम से ही सचालित होता है। ईश्वर को मानना हास्यास्पद है।

सम्प्रदाय

बुद्ध के निर्वाण के लगभग १०० वर्ष बाद वैशाली मे कालाशोक के समय मे सम्पन्न द्वितीय बौद्ध सगीत मे ही इस धर्म मे मतभेद शुरू हो गये थे। इसी समय बौद्ध धर्म के थेर भिक्षु और महासघिक भिक्षु मे विवाद हुआ और कालान्तर में थेर भिक्षु हीनयान के रूप मे और महासघिक भिक्षु महायान के रूप मे प्रसिद्ध हुये। हीनयान अनीश्वरवादी दर्शन है, यह बहुतत्ववादी होने के साथ[2] वस्तुवादी दर्शन भी है। इसमे व्यक्तिगत निर्वाण को महत्व दिया जाता है। इसका आदार्श 'अर्हत' है जबकि इसके विपरीत महायान दर्शन है जो सर्वमुक्ति की कल्पना पर आधारित है और इसका आदर्श बोधिसत्व है।
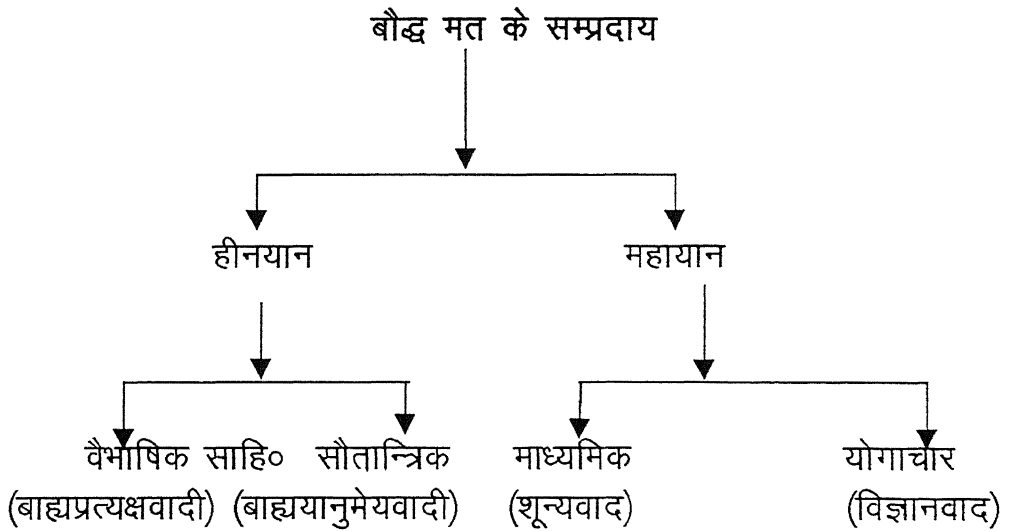
वैभाषिक सम्प्रदाय मे बाह्य और अन्तर दोनो प्रकार के पदार्थों की सत्यता स्वीकार की गयी है और दोनो को प्रत्यक्ष माना गया है। इस सम्प्रदाय मे रूप, विज्ञान

वेदना, सज्ञा, सस्कार को अर्थात् इन पाचो की समष्टि को मनुष्य का स्वरूप माना गया है। इस सम्प्रदाय मे विज्ञान के दो रूप माने गये है– १ प्रवृत्ति, २ आलय।

जिस ज्ञान से विभिन्न क्रियाओ मे मनुष्य की प्रवृत्ति होती है उसे प्रवृत्ति विज्ञान कहा जाता है और अहमाकार ज्ञान को आलय विज्ञान कहा जाता है। आलय विज्ञान निरन्तर प्रवाहमान रहता है।

'अभिधर्म विभाषाशास्त्र' नामक ग्रन्थ मे प्रतिपादित सिद्धान्त को स्वीकार करने के कारण इस सम्प्रदाय को वैभाषिक शब्द से अभिहित किया गया है। वैभाषिक के मतानुसार बाह्य विषयो का ज्ञान प्रत्यक्ष से होता है। बाह्य विषयो को प्रत्यक्ष का विषय मानने के कारण उन्हे 'बाह्य प्रत्यक्षवादी' कहा गया है। वैभाषिक निर्वाण को भावरूप मानते है उनके अनुसार इसमे दु ख का पूर्णत विनाश हो जाता है।

२. सौत्रान्तिक मत

यह हीनयान सम्प्रदाय का ही रूप है। सौत्रान्तिक मत 'सुत्त पिटक' पर आधारित है। इसी कारण इसे सौत्रान्तिक कहा जाता है। जिस सम्प्रदाय में बुद्ध के सूत्रात्मक उपदेशो की व्याख्या को प्रमाण न मानकर सूत्रो का ही प्रमाण माना जाता है और सूत्रो की भाषा से जो सिद्धान्त बुद्धिस्थ होता है उसी सिद्धान्त को बुद्ध द्वारा स्वीकृत सिद्धान्त माना जाता है। उसे ही सौत्रान्तिक कहा जाता है। इस सम्प्रदाय मे भी बाह्य और अन्तर दोनो प्रकार के वस्तुओ का अस्तित्व स्वीकार किया गया है किन्तु वैभाषिक से अन्तर मुख्य रूप से यह है कि इसमे बाह्य पदार्थो को प्रत्यक्ष न मानकर अनुमानगम्य माना गया है। किसी को जब कोई ज्ञान उत्पन्न होता है तब उसकी उसे प्रत्यक्ष रूप से अनुभूति होती है यह अनुभूति निराकार रूप मे न होकर साकार रूप मे होती है। बाह्य विषय मन मे प्रतिरूप उत्पन्न करते हैं। वाह्य विषयो के अलग आधार होने से उनके प्रतिरूप अलग होगे। इस प्रकार वाह्य विषयो का ज्ञान उनसे उत्पन्न

मानसिक आकारो से अनुमान द्वारा प्राप्त होता है। इसलिये इस मत को बाह्यानुमेयवाद कहा जाता है। इस मत को परोक्ष पथार्थवादी भी कहा जाता है।

३. माध्यमिक शून्यवाद

यह महायान सम्प्रदाय का मुख्य उप सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक नागार्जुन को माना जाता है। नागार्जुन की 'माध्यमिक कारिका' से इस विषय मे जानकारी मिलती है। अश्वघोष का 'महायानश्रद्धोत्पाद' शास्त्र नामक ग्रन्थ मूल सस्कृत मे उपलब्ध नही है। 'सौन्दरानन्द और बुद्धचरित' सस्कृत महाकाव्य उपलब्ध है। इस सम्प्रदाय की यह मान्यता है कि 'सर्वशून्यता ही परमार्थिक है, यथार्थ मे न कोई विषय है और न कोई ज्ञान है शून्यता ही वास्तविकता है उसे सत्, असत्, सदसत् नोसदसत, इन चार कोटियो मे कही भी अन्तर्भूत नही किया जा सकता है। वह पूर्णरूप से अनिरूप्य और अनिर्वाच्य है। उसका वास्तविक स्वरूप अनादिकाल से प्रवाहमान सवृत्ति, अविद्या किवा वासना से आवृत्त है। इसीलिये उसका अवभास न होकर उसके स्थान मे ससार का अवभास होता है। इस सम्प्रदाय की यह मान्यता है कि मनुष्य को दु ख से मुक्त होने के लिये ससार के सम्बन्ध मे सर्वक्षणिकम् सर्वदु खम्, सर्वस्व लक्षणम और सर्वशून्यम इस भावना चतुष्ट्य का निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये जिससे मनुष्य का चित्त ससार मे अनासक्त हो शून्यता मे उसे समाहित कर सदा के लिये दु खरहित बनाने मे समर्थ हो सके। माध्यमिक शून्यवाद का दर्शन शकराचार्य के अद्वैत वेदान्त से मिलता–जुलता है। शून्यवाद भी सवृत्ति और परमार्थिक सत्य को मानता है शकराचार्य ने इसे व्यवहारिक और परमार्थिक सत्य के रूप मे माना है। नागार्जुन ने कहा परमार्थिक दृष्टिकोण से सभी असत्य है शकराचार्य ने भी ईश्वर, जगह आदि को असत ही माना है। नागार्जुन का शून्य और शकर का निर्गुण ब्रह्म लगभग एक ही है। इन समानताओ के कारण ही शकर को कुछ विद्वानो ने 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहा है।

४. योगाचार विज्ञानवाद

योगाचार विज्ञानवाद की मान्यता है कि 'विज्ञान ही एक मात्र सत है'– 'विज्ञानमेव सत्यम'। विज्ञानवाद से आशय क्षणिक विज्ञान से है। इसे चित्त भी कहा जाता है यही वास्तविक है इससे भिन्न जो कुछ भी प्रतीत होता है वह विज्ञान का विवर्त है। विज्ञान के अतिरिक्त और किसी पदार्थ की सत्ता नही है।

योगाचार विज्ञानवाद के प्रवर्तक असग और वसुवन्धु थे। इस सम्प्रदाय का मुख्य ग्रन्थ 'लकावतार सूत्र' है। बाद मे आगे चलकर दिडनाग, ईश्वरसेन, धर्मपाल, धर्मकीर्ति आदि विद्वानो ने अपना योगदान दिया। विज्ञानवादी बाह्य वस्तुओ की सत्ता का खण्डन करते है किन्तु चित्त की सत्ता को स्वीकार करते है। ऐसे पदार्थ जो मन से (बाह्य) बर्हिगत प्रतीत होते है किन्तु वे मन के ही अन्तर्गत रहते है– 'यदन्तेर्ज्ञेय रूप तद वर्हिवद अवभासते।'

आस्तिक दर्शन

१– न्याय दर्शन

न्याय दर्शन की गणना आस्तिक दर्शनो की श्रेणी मे किया जाता है। भा० दर्शन का इसे 'तर्कशास्त्र' भी कहा जाता है। न्याय दर्शन के प्रणेता आचार्य 'महर्षि गौतम' को माना जाता है। इनको एक अन्य नाम अक्षपाद से भी जाना जाता है। जिससे इस दर्शन को 'अक्षपाद दर्शन' भी कहते है। न्याय दर्शन के विषय मे वात्स्यायन ने कहा है कि न्याय विद्या समस्त विद्याओ का प्रदीप है सब कर्मो का उपाय, प्रवर्तक है तथा समग्र धर्मो का आश्रय है। इस प्रकार वात्स्यायन भाष्य मे उद्धृत उक्ति से इसकी महत्ता और उपयोगिता ज्ञात होती है।[1] यह उक्ति इस प्रकार है–

'प्रदीप सर्व विद्यानामुपाय सर्वकर्मणाम्।
आश्रय सर्व धर्माणा विद्योदेशेप्रकीर्त्तिता।

(न्या० सू० भाष्य १/१/१)

---

[1] न्याय दर्शनम् पृ० १५ चौखम्बा सस्कृत सस्थान वाराणसी।

न्याय दर्शन वस्तुवादी दर्शन है। इसमे प्रमाण प्रमेय आदि का वर्णन है। 'न्याय' शब्द की व्युत्पत्ति है– 'नीयते प्राप्यते विवक्षितार्थ सिद्धिरनेन इति न्याय।'[1] अर्थात् जिसके द्वारा किसी प्रतिपाद्य विषय की सिद्धि की जाती है वह न्याय है। दूसरे शब्दो मे जिस साधन से हम अपने विवक्षित (ज्ञेय) साध्य परमतत्व के पास पहुच जाते है या उसे भली–भॉति जान पाते है वही साधन न्याय है। भारतीय दर्शन के अध्ययन से पता चलता है कि यह अत्यन्त प्राचीन शास्त्र है। याज्ञवल्क्य ने चौदह विद्याओ की गणना मे न्यायशास्त्र को द्वितीय स्थान दिया है। महर्षि मनु ने धर्म के अध्ययन के लिये भी तार्किक दृष्टि से न्याय को महत्वपूर्ण माना है।[1]

कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' मे चार प्रकार की विद्याओ का उल्लेख किया है जिनमे आन्वीक्षिकी अर्थात न्यायशास्त्र की गणना भी है।

'आन्वीक्षिकी' सम्पूर्ण विद्याओ का प्रकाशक, समस्त कर्मो का साधक और समग्र धर्मो का आश्रय है। 'आन्वीक्षिकी' से तात्पर्य है– 'प्रत्यक्षदृष्ट तथा शास्त्रश्रुत, विषयो के तात्विक स्वरूप को अवगत कराने वाली विद्या। जैसा कि न्याय दर्शन के प्रथम सूत्र के भाष्य मे वात्स्यायन ने कहा है– 'प्रत्यक्षागमाभ्या पामीक्षितस्यान्वीक्षणमन्वीक्षा, तया प्रवर्तत इति आन्वीक्षिकी–न्यायविद्या–न्यायशास्त्रम।'

न्यायसूत्र को इस दर्शन का सर्वप्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है इसके रचयिता महर्षि गौतम हैं। 'न्यायसूत्र' पर आगे चलकर वात्स्यायन ने 'न्याय भाष्य' लिखा है किन्तु 'दिड्नाग' आदि बौद्ध दार्शनिको ने इतना प्रबल खण्डन किया है कि उद्योतकर को (५वी से ६वी शताब्दी मे) 'न्यायभाष्य' पर एक 'न्यायवार्तिक' नाम की टीका लिखनी पडी। किन्तु खण्डन–मण्डन का प्रहार क्रम रूका नही और ९वी शदी मे 'वाचस्पति मिश्र' ने 'न्यायवार्तिकतात्पर्य टीका' लिखी। उदयनाचार्य ने तात्पर्यटीका पर 'परिशुद्धि'

[1] आर्षधर्मोपदेश च वेद शास्त्र विरोधिना। यस्तर्केणनुसन्धत्ते स धर्म वेद नेतर ।। मनु स्मृ० १२।। १०६

नामक टीका लिखी। उदयन ने न्यायकुसुमान्जलि और 'आत्मतत्व विवेक' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे।

न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका पर श्री उदयानाचार्य की 'तात्पर्य परिशुद्धि है। जयन्त भतत की 'न्याय मजरी' भी अधिक लोकप्रिय ग्रन्थो की श्रेणी मे है। यद्यपि इसमे बौद्धो का खण्डन है फिर भी इसे न्यायसूत्र की विवृति ग्रन्थ माना जाता है। 'न्यायमञ्जरी' के बाद प्राचीन न्याय का सभवत महत्वपूर्ण ग्रन्थ भासवर्ज्ञ का 'न्यायसार' है। इस ग्रन्थ मे न्यायशास्त्र को सकलित करने का प्रयास किया गया है।

कालक्रमानुसार परवर्ती साहित्य को गगेश से लेकर यज्ञपति तक की कृतियो को 'नव्यन्याय' की श्रेणी मे रखा गया है। १२वीं शताब्दी से नव्यन्याय का प्रारम्भ माना जाता है। इसके सर्वप्रथम आचार्य गगेशोपाध्याय है इनकी अमरकृति 'तत्वचिन्तामणि' सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। जहा नव्य–न्याय के अन्तर्गत तर्कशास्त्रीय विषयो का विवेचन किया गया है वहा प्राचीन न्याय मे तत्वशास्त्र पर जोर दिया गया है।

न्याय विचार की उस विधि का नाम है जिसमे वस्तुतत्त्व का निर्धारण करने के लिये सभी प्रमाणो का उपयोग किया जाता है। 'प्रमाणैरर्थ परीक्षण न्याय' (न्याय भाष्य का प्रथम सूत्र) 'न्याय' शब्द से उन वाक्य के समूहो को भी व्यक्त किया जाता है जो अनुमान के माध्यम से अन्य पुरूष को किसी विषय का बोध कराने के लिये प्रयुक्त होते है यह वाद, जल्प और वितण्डा के रूप मे विचारो का मूल एव तत्व निर्धारण का आधार है।

न्याय दर्शन की मान्यता है कि ज्ञान स्वरूपत एक ऐसी वस्तु की ओर इशारा करता है जो उसके बाहर ओर उससे स्वतत्र है। 'नचाविषया काचिदुषलब्धि' (न्यायसूत्र भाष्य ४, १, ३२)

अन्य भारतीय दार्शनिको की तरह 'न्याय' का भी चरम उद्देश्य 'अपवर्ग' है। अपवर्ग– दु ख की निश्चित और शाश्वत निवृत्ति है। मोक्ष की अनुभूति तत्वज्ञान अर्थात

वस्तुओ के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान है। यहॉ न्याय का दृष्टिकोण यथार्थवादी परिलक्षित होता है। इसी उद्येश्य एव प्रयोजन हेतु न्याय दर्शन (सोलह) षोडश पदार्थो को मानता है जो इस प्रकार है–

१ प्रमाण,	२ प्रमेय,	३ सशय,	४ प्रयोजन,
५ दृष्टान्त,	६ सिद्धान्त,	७. अवयव,	८ तर्क,
६ निर्णय,	१० वाद,	११ जल्प,	१२ वितण्डा,
१३ हेत्वाभास,	१४ हल,	१५ जाति,	१६ निग्रह स्थान।

न्याय दर्शन मे द्रव्यो की सख्या ६ मानी गयी है। जो इस प्रकार है– १– पृथ्वी, २– जल, ३– तेज, ४– वायु, ५– आकाश, ६– काल, ७– दिक, ८– आत्मा, ६– मनस्। सम्पूर्ण जगत इन नौ द्रव्यो से तथा इनके विभिन्न गुणो तथा सम्बन्धो से बना हुआ है। ये सब नित्य है या तो विभु है या अणु रूप है। सावयवी वस्तुए अनित्य होती है।

पृथ्वी, जल, तेज वायु नित्य, निरवयव आदि अतीन्द्रिय है। आकाश निरवयव, विभु है इससे कोइ वस्तु पैदा नही होती है। काल और दिक्–बाह्यार्थ माने गये है आकाश की तरह विभु और निरवयव है। काल को मापा नही जा सकता है। आत्मा अनेक है और प्रत्येक को नित्य, सर्वव्यापी माना गया है। ज्ञान आत्मा का आवश्यक गुण न होकर आगन्तुक होता है। मनस् अणु और नित्य है प्रत्येक आत्मा का अपना अपना मनस् होता है। आत्मा के सासारिक बन्धन मे पडने का मूलकारण निश्चय ही उसका मनस् से सम्बद्ध होना है (बन्धनिमित्त मन – न्याय मजरी पृ० ४६६)।

'आत्मा' मे समवाय सम्बन्ध से 'बुद्धि' गुण रहता है। अत 'आत्मनिष्ठ समवायावच्छिन्नवृत्तित्त्वसम्बन्ध' से बुद्धि का स्मरण हो जाता है। ज्ञान दो प्रकार का माना गया है– १–स्मृति और २– अनुभव। सस्कार मात्र से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को

स्मृति ज्ञान कहा गया है। और अनुभव के विषय मे कहा गया है कि जो ज्ञान स्मृति से भिन्न होता है वह अनुभवजन्य होता है। अनुभवजन्य ज्ञान दो प्रकार का होता है–

१ यथार्थ अनुभव २ अयथार्थ अनुभव।

यथार्थ अनुभव को ही 'प्रमा' कहा गया है– 'यथार्थानुभव प्रमा।' तर्क–सग्रह मे कहा गया है।

तद्भवति तत्प्रकार कोऽनुभवो यथार्थ ।[1] किसी वस्तु का जो वास्तव मे वह नही है उससे भिन्न ज्ञान अयथार्थ अनुभव है।

तद्भवति तत्प्रकारकश्चायथार्थ । अयथार्थ अनुभव भी तीन प्रकार की होती है– सशय, विपर्यय, तर्क। 'अनुभूतिश्चतुर्विधेति' अर्थात् अनुभूति चार प्रकार की है– १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शब्द।

[1] तर्कसग्रह –पृष्ठ ५८
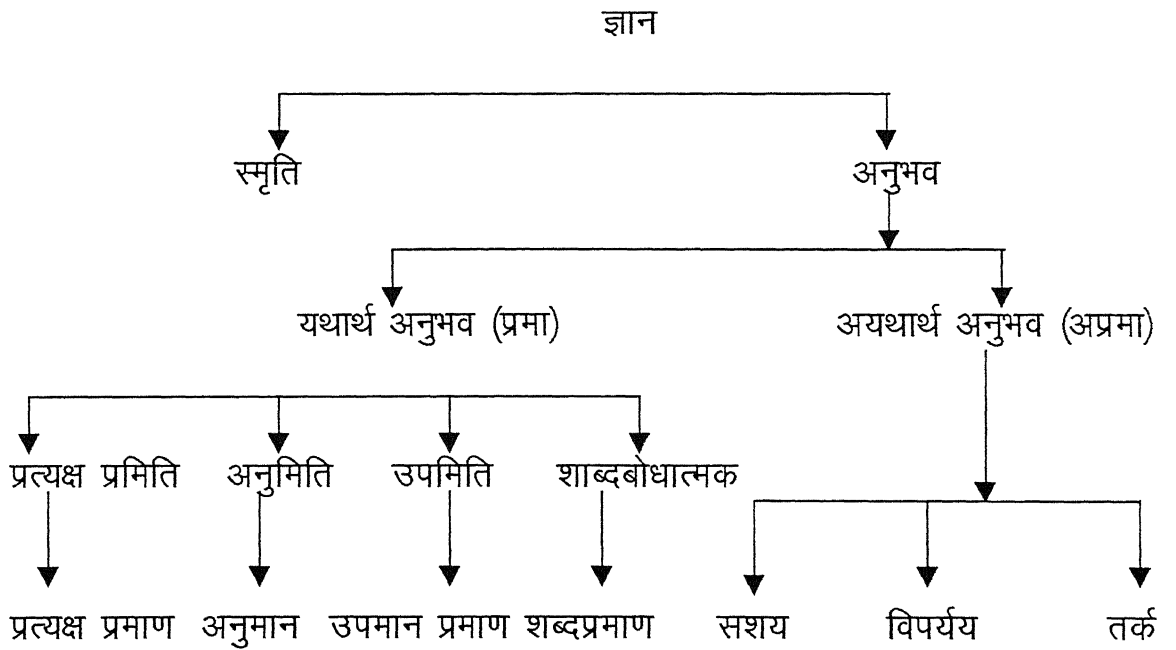
प्रमा को जानने के साधन को प्रमाण कहते है– 'प्रमाया कारण प्रमाण।'[1] न्यायसूत्रकार ने अपने ग्रन्थ मे लिखा है–

१ प्रत्यक्ष

'प्रत्यक्षानुमानोपमान शब्दा प्रमाणानि।' (न्या० सूत्र १/१/३) अर्थात् प्रत्यक्षप्रमिति का कारण षड्विधिसन्निकर्षा दिव्यापार से मुक्त करण (इन्द्रिय) को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते है। भारतीय दर्शन मे प्रत्यक्ष एक अकेला ऐसा प्रमाण है जो निर्विवाद रूप से आस्तिक और नास्तिक दोनो दर्शनो को मान्य है। प्रत्यक्ष की परिभाषा न्याय सि० मुक्तावलीकार ने इस प्रकार दिया है– इन्द्रिय जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष। अर्थात् इन्द्रिय जन्यत्वे सति ज्ञानत्व प्रत्यक्ष प्रमाया लक्षणम्। इन्द्रिय से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमा कहते है।[2] न्यायसूत्र मे महर्षि गौतम ने प्रत्यक्ष की परिभाषा इस प्रकार किया है–प्रत्यक्ष इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न न ज्ञान है जो अव्यपदेश, अव्यभिचारि और व्यवसायात्मक होता है।[3] अन्नभट्ट ने तर्कसग्रह मे प्रत्यक्ष को इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान बताया है– 'इन्द्रियार्थ–सन्निकर्षजन्य ज्ञान प्रत्यक्षम्।'

प्रत्यक्ष की दो अवस्थाए होती है– १ निर्विकल्पक, २– सविकल्पक। निर्विकल्पक ज्ञान की प्रथम अवस्था है जिसमे भान होता किन्तु सकिल्पज्ञान मे निश्चित रूप से वस्तु का पूरा ज्ञान होता है। प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है– १– लौकिक प्रत्यक्ष, २– अलौकिक प्रत्यक्ष।

लौकिक प्रत्यक्ष– यह भी दो प्रकार का होता है– १ वाह्य, २ मानस। वाह्य प्रत्यक्ष–पचज्ञानेन्द्रियो से चक्षु, रसना, घ्राण, त्वक, श्रोत के सन्निकर्ष से उत्पन्न होता है। मानस मे आत्मा और मन का अर्थात् आत्ममन सयोग से होता है।

अलौकिक प्रत्यक्ष– यह प्रत्यक्ष तीन प्रकार का होता है–

---

1 इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न ज्ञानम अव्यपदेश्यम् अव्यभिचारी व्यवसायात्मक प्रत्यक्षम् (न्यायसूत्र १/१/४)

2 तर्कभाषा पृ० १८

१ सामान्यलक्षण। २ ज्ञान लक्षण। ३ योग।

२– अनुमान

अनुमितिरूप प्रमिति का परामर्शात्मक व्यापार से युक्त कारण अर्थात् करण (साधन) को अनुमान प्रमाण कहते है। यानि– 'अनुमीयते अनेन इति अनुमानम'–जिससे अनुमिति की जाती है उस व्याप्ति ज्ञान को अनुमान कहते है। अनु+मान, इसमे 'अनु' का अर्थ पश्चात और मान का अर्थ ज्ञान है अत अनुमान का अर्थ है जो ज्ञान प्रत्यक्ष के पश्चात हो। इसीलिये गौतम ने अनुमान का प्राण व्याप्ति है–व्याप्ति के सम्बन्ध मे लिखा गया है– 'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वाह्विरिति साहचर्य नियमोव्याप्ति।' नित्य साहचर्य नियम को 'व्याप्ति' कहते है। जैसे–धूम और अग्नि मे नित्य साहचर्य सम्बन्ध है अत इसमे व्याप्ति सम्बन्ध है। किन्तु वृद्धि और धूम मे व्याप्ति सम्बन्ध नही है, यथा– तप्तलौह पिण्ड। क्योकि तपते हुये लोहे के गोले मे वृद्धि तो है किन्तु धूम नही है। वृद्धि का धूम के साथ सम्बन्ध आद्रन्धन सयोग के कारण होता है और इस सयोग को उपाधि कहते है साध्यत्यापक सन् साधनाऽव्यापक उपाधि (कारिका० १३८)। अनुमान दो प्रकार का होता है–

१ स्वार्थानुमान तथा २ परार्थानुमान।

स्वार्थानुमान एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है इसमे पञ्चाचयव की आवश्यकता नही पडती है। परार्थानुमान मे पञ्चात्रयव वाक्य की आवश्यकता पडती है इसे 'न्यायवयव' भी कहते है– उनके नाम है– प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। प्रतिज्ञा मे शब्द प्रमाण का, हेतु मे अनुमान प्रमाण का उदाहरण मे प्रत्यक्ष प्रमाण का और उपनय मे उपमान प्रमाण का समावेश होता है। निगमन से एक अर्थ के साधन मे सभी प्रमाणो के योगदान का प्रदर्शन होता है। वात्स्यायन ने न्यायदर्शन के प्रथम सूत्र के भाष्य में पचावयव वाक्य के सन्दर्भ को इसप्रकार वर्णित किया है– ''साधनीयार्थस्ययावतिशब्दसमूहे सिद्धि परिसमाप्यते, तस्य पञ्चावयवा प्रतिज्ञादय

समूहमपेक्ष्याऽवयवा उच्यन्ते, तेषु प्रमाण समवाय आगम· प्रतिज्ञा। हेतुरमानम् उदाहरण प्रत्यक्षम्। उपमानमुपमानम्। सर्वेषामेकार्थसमवाये सामर्थ्य प्रदर्शन निगमनमिति। सोऽय परमोन्याय इति। एतेनवाद जल्पवितण्डा प्रक्र्तन्ते नातोऽन्यथेति। तदाश्रया च तत्व व्यवस्था।"[1]

इस प्रकार सत् हेतु मे पाच गुण होते है– पक्षसत्व, सपक्षसत्व, विपक्षाऽसत्व, असतप्रतिपक्षत्व और अवाधितत्व। इनमे से किसी एक मे दोष होने पर वह हेतु सदहेतु न रहकर 'हेत्वाभास' बन जाता है। हेत्वाभास भी पञ्चविध है– सव्याभिचार, विरूद्ध, सत्प्रतिपक्ष, असिद्ध और बाधित।

३. उपमान

उपमिति रूप प्रमिति का उपदिष्ट वाक्यार्थ स्मरणात्मक व्यापार से युक्त कारण अर्थात् करण (साधन) को उपमान कहते है। यानि 'उपमीयते अनेन इति उपमानम्' अर्थात् सादृश्यज्ञान को उपमान कहते है।

पूर्वानुभूति वस्तु के सदृश होने के कारण जहा वैसी वस्तु का ज्ञान हो उसे उपमिति कहते है– यथा 'गोस्तथा गवय।' इसलिये उपमान को 'सज्ञा–संज्ञि ज्ञान' कहा गया है।

४ शब्द प्रमाण

शब्दबोधात्मक प्रमिति का पदार्थस्मरणात्मक व्यापार से युक्त कारण अर्थात करण को शब्द (पदज्ञान) प्रमाण कहते है– 'शब्दयते प्रतिपाद्यते अर्थ अनेन इति शब्द – शाब्दी प्रमा करणम्, उससे जन्य ज्ञान को शाब्दीरूप अनुभूति कहते है।'

---

[1]अन्यायदर्शन (वात्स्यायन भाष्य) पृष्ठ ३६ आचार्य ढुढिराज शास्त्री (चौखम्भा सस्कृत सस्थान वाराणसी)

शब्द को "आप्त वाक्य" माना गया है। न्यायसूत्र मे कहा गया है– 'आप्तोपदेश शब्द'[1] (न्या० सू० १/१/७) षडदर्शन समुच्चय मे भी आप्त के उपदेश को शब्द– आगम प्रमाण कहते है।[2]

'आप्त' वह होता है जो वस्तु जिस प्रकार की है उसे उसी प्रकार का बतलानेवाला 'आप्त' होता है। शब्द प्रमाण का वर्गीकरण दृष्टार्थ शब्द और अदृष्टार्थ शब्द के रूप मे भी किया जाता है। एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार वैदिक शब्द तथा लौकिक शब्द के रूप मे भी किया जाता है।

कारणवाद

प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण होता है बिना कारण के कार्य सभव नही होता है इस प्रकार कारण और कार्य मे आनन्तर्य सम्बन्ध होता है। कारण कार्य का पूर्ववर्ती होता है और कार्य कारण का पश्चातवर्ती होता है। किन्तु सभी पूर्ववर्ती को कारण नही माना जा सकता है– पूर्ववर्ती भी दो रूपो मे उपस्थित होता है– १. नियत पूर्ववर्ती, २. अनियत पूर्ववर्ती।

नियत पूर्ववर्ती कार्य की उत्पत्ति से पूर्व नियत रूप मे रहता है। अनियत पूर्ववर्ती का स्वभाव है कि कभी रहता है कभी नही। इस प्रकार कारण कार्य भाव को निरूपाधिक या अन्यथासिद्ध होना चाहिये। कारण कार्य का अन्यथासिद्ध नियतपूर्ववृत्ति होता है।[3] न्यायदर्शन कारण–कार्य सिद्धान्त को स्वय सिद्ध मानता है। साख्य दर्शन से इसका यह भेद है जहा साख्य सत्कार्यवाद का पोषक है वहा न्याय असत्कार्यवाद को मानता है। साख्य के अनुसार कारण मे कार्य पूर्व से विद्यमान रहता है कार्य केवल व्यक्त अवस्था, का नाम है– 'नासतो विद्यते भाव ना भावो विद्यते सत्। इस पर साख्य का कारण कार्य सिद्धान्त आधारित है। न्यायदर्शन का सिद्धान्त 'आरम्भवाद' है। क्योकि

---

[1] न्यायदर्शन(वात्स्यायनभाष्य) पृष्ठ११ आचार्य दुन्दिराज शास्त्री (चौखम्भा सस्कृत सस्थान वाराणसी)

[2] शाब्द माप्तोपदेशु मानमेव चर्तुर्विधम हरिभद्रसूरि – षडदर्शन समुच्चय– पृष्ठ –१०६– भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

[3] अन्यथासिद्ध नियतपूर्व वृत्तित्व कारणत्वम। (तर्क सग्रह दीपिका पृ० ६६)

यदि कारण मे कार्य पहले से विद्यमान रहता हो ऐसी स्थिति मे निमित्त कारण की आवश्यकता ही नही पडती। यदि मिट्टी मे घडा पूर्व से ही निहित रहता तो कुम्हार को परिश्रम करने की आवश्यकता ही नही पडती। इस प्रकार न्यायदर्शन मे तीन प्रकार के कारण माने गये है– १–समवायि, २–असमवायि, ३–निमित्त कारण।

ईश्वर – न्याय दर्शन ईश्वर की सत्ता मे विश्वास करता है किन्तु 'न्यायसूत्र' मे ईश्वर का विशेष विवेचन नही है। न्यायभाष्यकार ने ईश्वर को आत्मा का ही एक विशेष रूप माना है।[1] जिस प्रकार जीवात्मा मे ज्ञान आदि गुण विद्यमान रहते है उसी प्रकार ईश्वर मे भी ये सब गुण विद्यमान रहते है। इसलिये जीव और ईश्वर दोनो ही आत्मा है। किन्तु मुख्य अन्तर यह है कि जीवात्मा मे ज्ञान आदि गुण जहा अनित्य होते है वहा ईश्वर मे ये सब गुण नित्य होते है।[2] जीवात्मा का जहा बन्धन तथा मोक्ष होता है वहा

ईश्वर इस सबसे रहित है। अतएव ईश्वर को 'नित्यमुक्त' कहा गया है। ईश्वर परमात्मा है। न तो यह बुद्ध है और न ही मुक्त है। ईश्वर विश्व का सृष्टा होने के साथ[3] विश्व का सहर्ता भी है। आत्मा ही सम्पूर्ण चेतन जगत का वास्तविक स्वरूप है। आत्मा नित्य और विभु है। परमात्मा केवल एक है वह सर्वाविषयक, नित्यज्ञान, नित्य इच्छा, नित्य प्रयत्न का आश्रय है। वेद उसी की रचना है जिसके द्वारा कर्तव्य–अकर्तव्य की शिक्षा मानव को प्राप्त होती है–महान नैय्यायिक उदयनाचार्य ने अपने ग्रन्थ न्यायकुसुमाञ्जलि मे कहा है।

स्वर्गापवर्गयोमार्गमामनन्ति मनीषिण । यदुपास्तिमसावत्र परमात्मा निरूप्यते।।

---

[1] अन्यायदर्शन (वात्स्यायन भाष्य) पृष्ठ ३६ आचार्य ढुढिराज शास्त्री {चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी }।

[2] **शाब्द माप्तोपदेशु मानमेव चर्तुर्विधम हरिभद्रसूरि – षडदर्शन समुच्चय– पृष्ठ –१०६– भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।**

[3] ता० टीका ४११/२१ पृ० ५६५।

३–इच्छान्द्रेष–प्रयत्न–दुख–सुख ज्ञानान्यात्मानो लिगम् (गौ०सूत्र)। १/१/१० न्याय दर्शनम (वात्स्थानभाष्य)आचार्य दुढिराजशास्त्री पृष्ठ–४४न्या० वार्तिक४/१/२१पृष्ठ ४६६

[२] न्या क० पृ० १४२

न्याय मुक्तावली मे विश्वनाथ पञ्चानन ने मगलाचरण से ही ग्रन्थ का आरम्भ किया है[3]—

नूतन जलधर रूचये गोपवधूटी दुकूल चौराय।

तस्मै कृष्णाय नम ससार महीरूहस्य वीजाय।।

आगे और स्पष्ट करते हुये लिखा गया है कि 'ससारेति', ससार एव मही रूहो वृक्षस्तस्य बीजाय निमित्तकारणायेत्यर्थ। एतेन ईश्वरे प्रमाणमपि दर्शित भवति। तथाहि—यथा 'घटादिकार्य कर्तृजन्य तथा क्षित्यडकरादिकमपि।' इस प्रकार ईश्वर को विश्व का निमित्तिकारण माना गया है।

उदयन की 'न्याय कुसुमाञ्जलि' तो ईश्वर के चरणो मे प्रमाण—पुण्य का अर्पण है। इसमे ईश्वर का मुख्य रूप से विवेचन किया गया है।

न्याय दर्शन के अनुसार आत्मा नित्य है, उसका जन्म और मरण नही होता है। जब किसी नये शरीर के साथ किसी आत्मा का भोग नियामक विजातीय सयोगात्मक सम्बन्ध उन्पन्न होता है तब शरीर मे उस आत्मा के सम्बन्ध की उत्पत्ति को ही उस[2] शरीर मे उस आत्मा की उत्पत्ति कहा जाता है, एव जब किसी शरीर के साथ किसी आत्मा के सम्बन्ध का नाश होता है तब उस सम्बन्ध नाश की स्थिति को आत्मा कामरण कहा जाता है। इस प्रकार आत्मा का स्वरूपत जन्म और नाश नही होता है केवल उसमे अज्ञानता के कारण उपचार मात्र किया जाता है। आत्मा को अजन्मा, अविनाशी, नित्य न्याय दर्शन इसलिये मानता है कि यदि आत्मा को नित्य न मानकर 'जन्य'मान लेगा तो यह एक अन्य द्रव्य हो जायेगा जिससे इसे परम महान नही कहा जा सकता है और इसकी व्यापकता भग हो जायेगी और आत्मा परलागू होने वाली सम्पूर्ण बाते अनुपपन्न होगी जिनके लिये आत्मा को व्यापक माना जाता है। और दूसरी बात यह है कि यदि आत्मा को एक द्रव्य के रूप मे मानेगे तब उसमे ज्ञानादि गुणो की

---

[3] न्या० सि० मु०— श्री विश्वनाथ भट्टाचार्याविरचिटा—व्याख्याकार श्री गजानन शास्त्री मुसलगावकर— पृ० ३ (चौ० सुरभा० प्रका० वाराणसी)

उत्पत्ति के लिये उसके अवयवो मे भी अनादि गुणो का अस्तित्व मानना होगा इससे सजातीय गुण प्रकट हाने लगेगे जो आत्मा के निरवयव होने मे बाधक सिद्ध होगे। इसप्रकार आत्मा को जन्म मानने पर एक और दोष प्रवृत्त होगा क्योकि नवजात को किसी सुन्दर वस्तु के देखने पर हर्ष और किसी भयानक वस्तु के देखने पर भय उत्पन्न न हो सकेगा। इन्ही सब बातो को दृष्टि मे रखकर न्यायदर्शन मे आत्मा को नित्य माना गया है।

अपवर्ग – अन्य भारतीय दार्शनिको की तरह न्याय का भी चरम उद्देश्य 'अपवर्ग' को ही माना गया है। 'अपवर्ग' दु ख की निश्चित और शाश्वत निवृत्ति है। मोक्ष की अनुभूति तत्वज्ञान अर्थात वस्तुओ के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान है। यहॉ न्याय का दृष्टिकोण यथार्थवादी परिलक्षित होता है।

गौतम मुनि ने नि श्रेयस– निरतिशय श्रेयस, अर्थात अपवर्ग या मोक्ष के न्याय शास्त्र का मुख्य प्रयोजन माना है। जैसा कि न्याय दर्शन के प्रथम सूत्र– 'प्रमाण प्रमेय सशय तत्त्वज्ञानन्नि श्रेयसाधिगम' से स्पष्ट होता है कि 'आत्मतत्व मे साक्षा से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। गौतम मुनि ने आत्मतत्व ज्ञान से मोक्ष होने का क्रम इस प्रकार बताया है– आत्मतत्व के साक्षात्कार से आत्मविषयक मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होती है और इसके बाद मिथ्याज्ञान की निवृत्ति से राग द्वेष–मोहरूप दोषो की निवृत्ति होती है।और दोषो की निवृत्ति होने के बाद धर्म–अधर्म रूप प्रवृत्ति की निवृत्ति होती है और प्रवृत्ति की निवृत्ति से पुनर्जन्म की निवृत्ति होती है और पुनर्जन्म की निवृत्ति से समस्त दु खो की आत्यान्तिक निवृत्ति होती है यह निवृत्ति ही नि श्रेयस, अपवर्ग या मोक्षोदि के नाम से जानी जाती है। इसको सूत्र रूप मे इस प्रकार व्यक्त किया गया है– 'दु ख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरा भावापवर्ग तदत्पन्त विमोक्षोऽपवर्ग ।

न्या० सू० भाष्यकार– वात्स्यायन ने, गौतम के न्यायसूत्र **'तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्ग'** (१/१/२२)की व्याख्या कर दु ख की आत्यन्तिक निवृत्ति को ही 'अपवर्ग' कहा गया है।१

२– वैशेषिक दर्शन

आस्तिक दर्शन के अन्तर्गत वैशेषिक दर्शन का महत्वपूर्ण स्थान है। वैशेषिक दर्शन का मुख्य प्रणेता कणाद मुनि को माना जाता है।

महर्षि कणाद के नाम पर इसे 'कणाद दर्शन' भी कहा जाता है। उनका एक अन्य नाम 'उलूक' भी था जिसके कारण 'औलूक्य दर्शन' भी कहा जाता है। 'विशेष' नाम क अतिदिपदार्थ की व्याख्या करने के कारण इस दर्शन का नाम वैशेषिक पडा। वैशेषिक दर्शन बहुतत्ववादी वस्तुवाद पर बल देता है। कणाद और पाणिनीय व्याकरण को सर्वशास्त्रोपकारक माना जाता है– 'काणाद पाणिनीय च सर्वशास्त्रोपकारकम्।'

वैशेषिक दर्शन का सबसे मुख्य एव आदि प्रामाणिक ग्रन्थ वैशेषिक सूत्र है। जिसके रचयिता स्वय महर्षि कणाद थे। प्रशस्तपाद भाष्य' अथवा पदार्थ धर्म सग्रह यह कणाद सूत्रो पर आधारित भाष्य के साथ–साथ स्वतत्र ग्रन्थ भी है। इस ग्रन्थ पर दो टीकाओ का भी सकेत मिलता है। जो कि एक उदयनाचार्य की 'किरणावली' है तथा दूसरी 'श्रीधराचार्य' की 'न्यायकदली' के नाम से प्रसिद्ध है।

कणाद सूत्रो पर श्री शकर मिश्र ने 'उपस्कार' नामक टीका ग्रन्थ भी लिखा है। इस पर एक वृत्ति है जिसे 'भारद्वाज वृत्ति' कहते है। वल्लभ की लीलावती टीका भी वैशेषिक दर्शन का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस दर्शन की कुछ अन्य उल्लेखनीय ग्रन्थ है– शिवादित्य रचित सप्तपदार्थी, लौगाक्षिभास्कर द्वारा रचित तर्क कौमुदी आदि है।

आचार्य 'बल्देव उपाध्याय' ने अपनी पुस्तक 'भा० दर्शन' मे (वैशेषिक के बारे मे) लिखा है कि 'वैशेषिक की उत्पत्ति कब हुई[2] बौद्ध ग्रन्थो मे (मिलिन्दप्रश्न, लकावतार सूत्र, ललित विस्तार आदि मे) वैशेषिक दर्शन का नामोल्लेख पाया जाता है। इन ग्रन्थो

मे न्याय सिद्धान्तो को भी वैशेषिक नाम से स्मरण किया गया है। साख्य तथा वैशेषिक मतो को बुद्ध से पूर्वकालीन मानने मे बौद्ध सम्प्रदाय की एकवाक्यता दीख पडती है। जैनो की तत्वसमीक्षा सभवत वैशेषिक पदार्थो की कल्पना पर आश्रित है अत वैशेषिक दर्शन जैन तथा बौद्ध दोनो से प्राचीनतर प्रतीत होता है।"[१] वैशेषिक दर्शन मे कणाद का सबसे महत्वपूर्ण योगदान परमाणुओ से ससार के विकास की अवधारणा है। के० दामोदरन ने अपने ग्रन्थ 'भारतीय चिन्तन परम्परा' मे नन्दलाल सिन्हा के कथन को उधृत किया है– "कणाद ईसा पूर्व दसवी और छठी शताब्दी के मध्य जीवित रहे होगे। जैसा कि हम पहले देख चुके है प्राचीन जैन धर्म की अवधारणा यह थी कि सभी भैतिक वस्तुए अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओ से बनी है। इन परमाणुओ मे अपने गुण होते है और वे एक–दूसरे से मिलकर स्कन्धो का निर्माण करते है। वैशेषिक प्रणाली अवश्य ही पदार्थो की इस प्राचीन अवधारणा से विकसित हुई होगी और बुद्धोत्तर काल मे सूत्रो के रूप मे उसे प्रतिपादित और क्रमबद्ध किया गया होगा।"[२]

महर्षि कणाद ने यह मान है कि इस ससार का अस्तित्व वस्तुगत रूप से, मनुष्य की बुद्धि से बाहर और उससे स्वतत्र है और इसको मनुष्य अपने प्रयत्न विश्लेषण से जान सकता है। वैध ज्ञान को प्राप्त करने की चार विधिया है– प्रत्यक्ष, लैंगिक, स्मृति तथा आर्ष। महर्षि कणाद ने वैशेषिक सूत्र को इस वक्तव्य से प्रारम्भ किया है– "अब हम धर्म की व्याख्या करेगे– (अथातो धर्म व्याख्यास्याम)" अब प्रश्न है कि धर्म क्या है? इसके उत्तर मे कणाद ने कहा धर्म ईश्वर अथवा किसी दैवी और शाश्वत नियति पर विश्वास नही है वरन् धर्म वह है जिससे प्रगति और अन्तिम कल्याण सभव है। मुनि ने यतोऽभ्युदय नि श्रेयस सिद्धि सधर्म" इस दूसरे सूत्र से धर्म का यह लक्षण बताया है कि जिससे अभ्युदय और नि श्रेयस की सिद्धि हो वह धर्म है।

---

[१] आचार्य बल्देव उपा० भा० दर्शन– पृ० २१३ प्रकाशन–चौणम्भा सुरभारती वाराणसी।

[२] के दोमोदरन– भा० चिन्न परम्परा– पृ० १६० (प्रकाशन पिपुल्स पब्लिशिग हाउस (प्रा०) लि० रानी झासी रोड नई दिल्ली।

शङ्कर मिश्र ने 'उपस्कर' नामक अपने ग्रन्थ मे 'अभ्युदय' का अर्थ तत्वज्ञान किया है और नि श्रेयस का अर्थ दु ख की आत्यन्तिक निवृत्ति किया है। अर्थात शकर मिश्र ने माना है कि तत्वज्ञान और नि श्रेयस का साधक धर्म है।

आचार्य प्रशस्तपाद ने वैशेषिक दर्शन के भाष्य की रचना प्रारम्भ करते हुये सूत्रकार द्वारा लक्षित धर्म को पदार्थ धर्म के रूप मे अभिहित किया है– यथा–

'प्रणम्य हेतुमीश्वर मुनि कणादमन्वत । पदार्थ धर्म सग्रह प्रवक्ष्यते महोदय ।।'

इस पद्य से यह ज्ञात होता है कि पदार्थ और लक्षित धर्म ज्ञान केवल तभी सच्चा होता है जब वह वस्तुओ की प्रकृति के अनुरूप होता है अन्यथा व झूठा है। सत्य की पुष्टि केवल ऐसी व्यवहारिक क्रियाओ के द्वारा ही की जा सकती है जो उस ज्ञान पर आधरित हो और सफल सिद्ध हो। विभिन्न पदार्थो के सारतत्व के ज्ञान, उनमे साम्यता और विषमता, समानता और भिन्नता के ज्ञान से ही सर्वोपरि कल्याण होता है। कणाद ने इस प्रकार स्पष्ट किया है कि "धर्म विशेष प्रसूतात् द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवायाना पदार्थाना साधर्म्यवैध्म्र्याभ्या तत्वज्ञानान्नि श्रेयसम्"। (कणाद वैशे०सू० १–४)

मुनि ने इस सूत्र से बताया है कि पदार्थ का साधर्म्य – वैधर्म्य मूलक ज्ञान धर्म विशेष से प्रसूत है। धर्म विशेष के कथन से यह प्रमाणित होता है कि साधर्म्य– वैधर्म्य मूलक पदार्थ तत्वज्ञान का उदय जिस धर्म से होता है वह उस पदार्थ धर्म से भिन्न है जिसका व्याख्यान करने के लिये वैशेषिक दर्शन की रचना हुई है किन्तु वैशेषिक दर्शन मे जिस धर्म विशेष को प्रधान रुप से वर्णित किया गया है वह पदार्थो का साधर्म्य– वैधर्म्य रुप है। साधर्म्य से तात्पर्य है– पदार्थ का समान धर्म– अनुगत धर्म जो कतिपय पदार्थो का सग्राहक होता है, वैधर्म्य का अर्थ है पदार्थ का व्याकृत धर्म, अर्थात जो धर्म जिस पदार्थ मे नही रहता है उस पदार्थ के सम्बन्ध मे वह धर्म ज्ञेयत्व, वाच्यत्व सभी पदार्थो का साधर्म्य है। द्रव्यत्व, गुणत्व आदि कम से द्रव्य, गुण आदि का साधर्म्य है।

किन्तु ये धर्म प्रत्येक पदार्थो मे नही रहता है अतेव जो धर्म जिस पदार्थ मे नही रहता है वह उसका वैधर्म्य होता है।

साधर्म्य समान धर्मा सभी पदार्थो को ग्रहण कर उनमे अन्य पदार्थो के वैधर्म्य से अन्य पदार्थ के भेद का अनुमानिक बोध किया जाता है। जैसे द्रव्यत्व, गुण आदि मे न रहने से गुण आदि का वैधर्म्य है और सभी द्रव्यो मे रहने से सब धर्मो का साधर्म्य है। अतेव द्रव्यत्व रुप साधर्म्य द्वारा सभी द्रव्यो को ग्रहण कर उनमे गुणादि का वैधर्म्य रुप होने से उसी धर्म से गुणादि रुपी भेद का अनुमान होता है ।

अनुमान का प्रयोग इस प्रकार होता है– "द्रव्यगुणादिभ्योभिधते द्रव्यत्वेन गुणादि वैधर्म्यात" यो न यतो भिद्य ते स न तद विधर्मा, यथा गुणादि स्वत अभिन्नतया न स्व विधर्मा"

द्रव्य गुण आदि से भिन्न है, क्योकि उसमे गुणादि का वैधर्म्य द्रव्यत्व विद्यमान है जो जिससे भिन्न नही होता, उसमे उसका वैधर्म्य नही होता, जैसे 'रुप' से अभिन्न गुणादि मे गुणादि का वैधर्म्य नही होता। द्रव्य मे स्थित गुणादि भेद ही द्रव्य का तत्व है इससे यह प्रतीत होता है का साधर्म्य और वैधर्म्य से तत्वज्ञान होता है और उससे ही नि श्रेयस दोनो की सिद्धि हो वह धर्म है, इस लक्षण द्वारा पदार्थ धर्म का ही ग्रहण मुनि को अभीष्ट है यह बात स्पष्ट होती है।

न्यायदर्शन और वैशेषिक दर्शन समानतत्र कहलाते है क्योकि कुछ बातो मे इन मे दोनो का दृष्टिकोण समान है दोनो दर्शन एक–दूसरे पर अन्योन्याश्रित है। एक के अभाव मे दूसरे की व्याख्या नही की जा सकती है।

दोनो का उद्देश्य मोक्ष प्राप्त कराना है। दोनो का मानना है कि समस्त दु खो का मूल कारण 'अज्ञान' है इन दु खो की आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है। दोनो दर्शन 'वस्तुवादी' दर्शन है यह वस्तुवाद अनुभव एव तर्क पर आधारित है। इतनी समानता रहने पर भी दोनो दर्शनो मे कुछ बिन्दुओ को लेकर मतभेद है। जैसा कि न्याय दर्शन

चार प्रमाणो को स्वतत्र रुप से स्वीकार करता है किन्तु वैशेषिक केवल दो प्रमाण प्रत्यक्ष और अनुमान को ही मानता है तथा शब्द और उपमान को अनुमान के ही अन्तर्गत मान लेता है। दूसरा अन्तर, मुख्य रुप से पदार्थो को लेकर है। न्यायदर्शन जहॉ सोलह पदार्थो को मानता है वहा वैशेषिक दर्शन केवल सात पदार्थो को गिनाता है। वैशेषिक दर्शन ने 'ज्ञेयत्व' और 'अभिधेयत्व' को ध्यान मे रखकर सप्त पदार्थो का परिगणन किया है। वैशेषिक दर्शन पदार्थो को दो भागो मे विभाजित करता है– १ भाव पदार्थ २ अभाव पदार्थ। जिस वस्तु की सत्ता है उसे 'भाव पदार्थ' कहते हैं और जिसस वस्तु की सत्ता नही है उसे अभाव पदार्थ कहते हैं। भाव पदार्थ मे 'सत्ता' और 'वृत्ति' का अन्तर किया गया है। जो देश और काल मे विद्यमान रहे वह सत्ता है इस प्रकार द्रव्य, गुण, कर्म ऐसे भाव पदार्थ है। और, जिसका दैहिक–कालिक अस्तित्व नही होता है उसे 'वृत्ति कहते है।

द्रव्य, गुण, कर्म, समवाय, सामान्य, विशेष ये षट् भाव पदार्थ हैं और अभाव सातवा पदार्थ स्वय एक मात्र अभाव पदार्थ के अन्तर्गत है। पॉच महाभूत, काल, दिक, आत्मा और मन ये नौ द्रव्य है। गुणो की स० चौबीस तक बतायी गयी है। भौतिक जगत की व्याख्या भा० दर्शन मे साख्य और वैशेषिक मौलिक रुप से करते है।

उदयनाचार्य ने "द्रव्यगुण, कर्म, सामान्य, विशेष,–समवायीना पदार्थाना साधर्म्यवैधर्म्याभ्या तत्वज्ञान नि श्रेयस हेतु। इस प्रशस्तपाद के प्रथम गद्यभाग की व्याख्या के सन्दर्भ मे अपने ग्रन्थ 'किरणावली' मे उल्लेख किया है– "नि श्रेयस पुन दु ख–निवृत्ति आत्यन्र्तिकी अत्रचवादिना अविवादि एव नहि अपवृक्तस्य दुख प्रत्यापद्यत इति कश्चिदभ्युपैति"। दु ख की आत्यान्तिक निवृत्ति नि श्रेयस है इसमे प्रतिपक्षियो को कोई विवाद नही है क्यो कि "दु ख से मुक्त होना" सब (नि श्रेयस) मोक्ष सबको मान्य है। उदयनाचार्य ने लिखा है यद्यपि दु ख का विनाश सीधे पुरुष प्रयत्न साध्य न होने से पुरुषार्थ नही है किन्तु दु ख के मूल कारण मिथ्याज्ञान का विनाश पुरुष के ज्ञान प्रयत्न

से ही सभव है अत उसके कार्यभूत मिथ्या ज्ञान निवृत्ति से जन्यय होने के कारण परम्परया पुरुष प्रयत्न साध्य होने से पुरुषार्थ है।

न्याय और वैशेषिक दोनो दर्शन यह मानते है कि मोक्ष की अवस्था मे आत्मा के साथ शरीर का और शरीर का मन से सम्बन्ध नही रहता है क्यो कि उस समय सारे सस्कार समाप्त हो चुके रहते है उस समय न तो किसी प्रकार का ज्ञान होता है न सुख, दुख होता है। इसमे दुखो का अभाव होता है। नैषधकार श्री हर्ष ने इस मोक्षावस्था का उपहास अपने ग्रन्थ तैषधचरित मे किया है और कहा है कि मनुष्य इसमे तो पाषाणकल्प हो जाता है।

यथा – मुक्तये य शिलात्वाय शास्त्रमूचसचेतसाम ।

गोतमतमेवेतैव यथा वित्थ तथैव स ।।

न्यायवैशेषिक सम्मत मुक्ति के सम्बन्ध मे ये निर्विवाद रुप से अज्ञानमूलक है। "भारतीय दर्शन की प्रमुख समस्याए" नामक ग्रन्थ मे कहा गया है कि– "न्यायवैशेषिक सम्मत मुक्ति के सम्बन्ध मे युक्तिया निर्विवाद रूप से अज्ञानमूलक है जिसे आत्मा का वास्तविक स्वरुप ज्ञात है वह ऐसी बात कभी नही कर सकता, क्यो कि पाषाण मे चैतन्य का उत्पत्तिस्थल होने की योग्यता नही होती, उसमे कभी भी ज्ञान का उदय नही होता, किन्तु आत्मा मे चैतन्य के उदय की सहज योग्यता है, शरीर आदि का सम्पर्क होने पर उसमे ज्ञान का जन्म होता ही है। मोक्षावस्था मे भी उसकी यह योग्यता समाप्त नही हो जाती है यदि उस अवस्था मे भी उसे शरीर आदि का सम्पर्क प्राप्त हो तो उसमे ज्ञान का उदय यथापूर्व पुन हो सकता है किन्तु शरीर आदि के साथ आत्मा का सम्बन्ध कराने वाले धर्म–अधर्म के न रहने से यह योग नही प्राप्त होता, अतएव उस अवस्था मे आत्मा मे ज्ञान का उदय नही होता किन्तु वह ज्ञान का

आश्रय होने की अपनी सहज शाश्वत योग्यता के कारण समस्त अचेतन पदार्थो की अपेक्षा उत्कृष्ट रूप मे विद्यमान रहता है।''[1]

परमाणुकारणवाद वैशेषिक का परमाणुकारणवाद साख्य के सत्कार्यवाद के विपरीत असत्कार्यवाद को मानता है। इसे 'आरभवाद' भी कहते है। पदार्थ की उत्पत्ति से तात्पर्य यह है– परमाणु से सयोग और विनाश का अर्थ है– परमाणु से सयोग–विभाग। परमाणु नित्य होते है। प्रत्येक नित्यपरमाणु मे "विशेष" होता है जो उसका नित्य और व्यावर्तक होता है। कणाद ने यह माना है कि यह ब्रह्माण्ड शाश्वत परमाणुओ का एक ऐसा ढाचा है जो कर्म के अदृष्ट सर्वव्यापी नैतिक नियम द्वारा परिचालित और विकसित होता है।

इस प्रकार वैशेषिक दर्शन मे जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के प्राथमिक परमाणु है वह शाश्वत है किसी ने इसका निर्माण नही किया है। किन्तु इन परमाणुओ के योग और सम्मिश्रण से बनी वस्तुए अपने स्वभाव के कारण ही विनाशशील और विघटनशील है अत अशाश्वत है। जैसे घडा– उसके भले ही असख्य टुकडे कर दिये जाय किन्तु उसके परमाणुओ को कभी नष्ट नही किया जा सकता है। जो अनन्त काल से वर्तमान है।

शङ्कराचार्य ने अपने ब्रहमसूत्र शाङ्कर भाष्य १/१२ मे वैशेषिक सिद्धान्त को सक्षेप मे लिखा है– 'सामान्यत हम कह सकते हैं कि सम्पूर्ण मे अर्न्तनिहित अगो का निर्माण सयुति के फलस्वरुप होता है। हम कह सकते है कि वे सभी वस्तुए जो विभिन्न अगो अथवा चार पदार्थो– पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के मिलने से बनी है जैसे– पर्वत और सागर, वे सब चार प्रकार के परमाणुओ के विभिन्न प्रकार के सयोगो का परिणाम है। इन वस्तुओ को हम विभिन्न अगो के सम्पूर्ण रुप मान सकते है जो अन्तत परमाणुओ से उत्पन्न मानी जा सकती है तथा जो इस ब्रह्माण्ड के विघटन के

---

[1] भारतीय दर्शन की समस्याए – परिसवाद से तैयार पृष्ठ– ३६ प्रकाशन– राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर।

समय पुन परमाणुओ के रुप मे विघटित हो जाती है। इस प्रकार शङ्कर ने वैशेषिक के पदार्थो को मात्र मान्यता कहा है।

सांख्यदर्शन

षड्आस्तिक दर्शनो मे साख्य का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय दर्शन की आस्तिक विचारधारा मे साख्य दर्शन सर्वाधिक प्राचीन है। इस दर्शन के प्रतिष्ठापक आचार्य महर्षि कपिल माने जाते है। इनके नाम का उल्लेख उपनिषदो, गीता, महाभारत के शातिपर्व आदि मे भी मिलता है। कपिल वैदिक काल के मुनि थे इसमे कोई सन्देह नही है क्यो कि कपिल का उल्लेख श्रुतियो मे मिलता है। श्वेता०उपनि० मे कहा गया है – "ऋषि प्रसूत कपिलम्"।

भगवतगीता मे श्री कृष्ण ने कपिल को अपनी विभूतियो मे गिनाया है– "सिद्वाना कपिलो मुनि"। इस प्रकार साख्य दर्शन की प्रचीनता सिद्ध होती है। शकराचार्य ने अपने भाष्य मे साख्य को वेदान्त का "प्रधान मल्ल" प्रमुखप्रतिपक्षी के रूप मे उल्लेख किया है। महर्षि वादरायण ने 'ब्रह्मसूत्र' मे तथा आचार्य शकर ने अपने ब्रह्मसूत्र शाङ्कर भाष्य के तर्कपाद मे साख्य का युक्तियो के द्वारा खण्डन करने के अलावा श्रुतिमूलक खण्डन भी किया है।

सख्यदर्शन का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'साख्यप्रवचन सूत्र' है इसे कपिल द्वारा प्रणीत माना जाता है किन्तु इसको मानने मे विद्वान एकमत नहीं है। क्यो कि शङ्कराचार्य प्रभृति अन्य आचार्यो ने इस ग्रन्थ का नामोल्लेख तक नही किया है। कुछ विद्वान इसे १५वी शताब्दी की विज्ञानभिक्षु की रचना मानते है। ईश्वरकृष्ण की 'साख्यकारिका' साख्य का प्राचीनतम् ग्रन्थ है। वाचस्पति मिश्र ने 'साख्यकारिका' पर अपनी प्रसिद्ध टीका 'साख्य–तत्व–कौमुदी' लिखी। कपिल की दो रचनाओ का पता चलता है, 'तत्वसमास तथा साख्यसूत्र'। 'तत्वसमास' केवल २२ छोटे सूत्रो का समुच्चय मात्र है। साख्यसूत्र मे ६ अध्याय है और सूत्र ५३७ है। कपिल के शिष्य 'आसुरि' का वर्णन प्राचीन ग्रन्थो मे

उपलब्ध होता है। "स्यादमजरी" के १५वे श्लोक मे आसुरि का एक श्लोक उद्दृत किया गया है। विज्ञान भिक्षु एक प्रकार से साख्य के अन्तिम आचार्य है। इन्होने तीन दर्शनो के उपर अपने भाष्य ग्रन्थ लिखे है– १ साख्यप्रवचन भाष्य साख्यसूत्र पर २ योगवार्तिक व्यास भाष्य पर ३ विज्ञानामृत भाष्य ब्रहमसूत्र पर और इसके अतिरिक्त 'साख्यसार' तथा 'योगसार' म इन दर्शनो के सिद्धान्त का सक्षिप्त प्रतिपादन किया गया है। 'साख्य' शब्द 'सख्या' से निष्पन्न है। इसी दर्शन मे सर्वप्रथम तत्वो का परिगणन किया गया है, जिसका ज्ञान हमे मोक्ष की ओर ले जाता है गिनती साख्य का पर्याय है और सख्या की प्रधानता के कारण ही इसे साख्य कहते है। साख्य २५ पच्चीस तत्वो को सृष्टि विकास मे मुख्य मानता है किन्तु 'सख्या' का दूसरा अर्थ है "सम्यग्" या विवेकज्ञान"। क्योकि प्रकृति–पुरुष के विषय मे अज्ञान ही ससार या बन्धन है तथा प्रकृति–पुरुष का भेदज्ञान ही कैवल्य है– 'व्यक्ताव्यक्त विज्ञानश्च' (योगसूत्र) साख्य दर्शन द्वैतवादी दर्शन है यह प्रकृति और पुरुष दो तत्वो को मानता है।

अचेतन प्रकृति और चेतन पुरुष जीव के अनादि सयोग से ही इस जगत की रचना होती है। साख्य दर्शन निरीश्वरवादी दर्शन है यह आस्तिक तो है किन्तु ईश्वर को जगत का कारण नही मानता है। यह न तो ईश्वर का खण्डन करता है और न ईश्वर के विषय मे कुछ कहता है बल्कि मौन रहता है। साख्य दर्शन मे प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द भेद से कुल तीन प्रमाण स्वीकार किये गये है "त्रिविधप्रमाणमिष्टम–प्रमेयसिद्धि प्रमाणाद्धि ।"

तत्वमीमासा

साख्य की तत्वमीमासा बहुत हीरोचक ढग से वर्णित है। साख्य २५ तत्वो को मानता है। और इन तत्वो को चार वर्गों मे विभाजित करता है– १प्रकृति २. विकृति ३ प्रकृतिविकृति उभयात्मक ४ न प्रकृति न विकृति।

१ प्रकृति से तात्पर्य केवल 'कारण' से है यह कारण मात्र प्रकृति है जो किसी का कार्य नही है।

२ कुछ तत्व केवल कार्य होते है जो किसी को उत्पन्न नही कर सकते है—विकृति ये स० मे १६ है

३ कुछ तत्व कारण और कार्य दोनो होते है ये सख्या मे सात होते है।

४ और जो तत्व न तो प्रकृति कारण है न विकृति न कार्य है वह पुरुष है। यह चेतन आत्मा है। 'न प्रकृति न विकृति पुरुष ।' (साख्य कारिका)

सत्कार्यवाद

प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण होता है बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति नही हो सकती है। जैसा कारण रहेगा उससे वैसी ही प्रकृति के कार्य की उत्पत्ति होगी। इस सिद्धान्त को कारणकार्यवाद कहते है। कारण—कार्यवाद के दो रुप होते है— १ सत्कार्यवाद २ असत्कार्यवाद

साख्य दर्शन सत्कार्यवाद का पोषक है। इसके अनुसार कोई स्त्री कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व कारण मे अव्यक्त रुप से विद्यमान रहता है। इसस प्रकार कारण और कार्यरूप एक ही वस्तु के दो रुप है। कारणावस्था अव्यक्तरुप और कार्यावस्था व्यक्त रुप है।

साख्य दर्शन गीता के इस सिद्धान्त पर टिका हुआ है— 'नासतो विद्यते भव नाभावो विद्यते सत ।' अर्थात् असत् से सत् की उत्पत्ति नही हो सकती है।

असत्कार्यवाद के अनुसार कार्यय अपनी उत्पत्ति से पूर्व अपने कारण मे विद्यमान नही रहता है। कार्य की सत्ता उत्पत्ति से ही आरभ होती है इस मान्यता के कारण असत्कार्यवाद को 'आरम्भवाद' भी कहते है। यदि कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व कारण मे विद्यमान रहता है तो वह सत होने से 'उत्पन्न' है फिर उत्पत्ति का प्रश्न ही नही उठ्ता है। उसकी दुबारा उत्पत्ति पुनरुत्पत्ति है जो व्यर्थ और अनावश्यक है इसको

मुख्य रुप से हीनयानी बौद्ध, वैशेषिक, नैयायिक, तथा कुछ मीमासक असत्कायर्रूवाद को मानते है। सत्कार्यवाद के दो रुप है– १ परिणामवाद २ विवर्तवाद

साख्य योग और रामानुज वेदान्त परिणामवाद को मानते है क्यो कि ये कारण का कार्य मे परिवर्तन वास्तविक मानते है और जो लोग कारण का कार्य मे परिवर्तन वास्तविक न मानकर प्रातीतिक मानते है उन्हे विवर्तवादी कहा जाता है। शून्यवाद, मूलविज्ञानवाद,शाड्कर वेदान्त ब्रहम विवर्तवाद को मानता है। साख्य प्रकृति परिणामवाद को मानता है साख्य ने सत्कार्यवाद की सिद्धि के लिये जो युक्तिया दी गयी है वह निम्न कारिका से स्पष्ट है–

'असद कारणादुपादानग्रहणात् सर्वसभवाभावात।

शक्तस्य शक्य करणात् कारणभावाच्च सतकार्यम् ।सा०का०६

प्रकृति

स्मस्त जड जगत की जननी है किन्तु स्वय अजन्मा है। सृष्टि का आदि कारण होने से इसे 'मूलप्रकृति' भी कहा जाता है। विश्व का प्रथम मौलिक तत्व होने के नाते इसे 'प्रधान' भी कहा जाता है। यह दिखायी नही देती है इसलिये 'अव्यक्त' कहलाती है और इसका केवल अनुमान ही किया जाता है इसलिये 'अनुमान' सज्ञा से भी व्यक्त किया जाता है। यह जड और अचेतन है विवेकशून्य है स्वतत्र है, एक है, किन्तु अनेक पुरुषभोग्य है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है अर्थात् सत, रज, तम तीन गुणो से युक्त है इसलिये यह 'सुख दुख मोहात्मक है। प्रकृति प्रसवधर्मिणी है क्यो कि सम्पूर्ण जगत उसी से प्रसूत है।"त्रिगुणमविवेकि विषय सामान्यमचेतन प्रसवधर्मि'। (साख्य कारिका ११)

साख्य पकृति को ही जगत् का एकमात्र कारण स्वीकार करता है क्यो कि यदि चेतन ब्रहम, आत्मा यापुरुष को जड जगत का कारण मानने पर जगत जड न होकर चेतन हो जायेगा। प्रकृति अचेतन होते हुये भी निरतर सक्रिय है। प्रकृति व्यक्तित्व रहित है क्यो कि व्यक्तित्व उसी का होता है जिसमे बुद्धि होती है और सकल्प किन्तु

प्रकृति मे दोनो का अभाव है। साख्य दर्शन मे प्रकृति को 'माया' कहा गया है– 'माया तु प्रकृति विहात मायिन तु महेश्वरम्' (श्वे०उप०४/१०)। "गुणाना साम्यावस्था प्रकृति" कहा गया है अर्थात् प्रकृति के तीनो गुणो की साम्यावस्था ही प्रकृति है। सा०कारिका मे प्रकृति की सत्ता सिद्ध करने के लिये निम्न कारिका दी गयी है–

भेदाना परिमाणात् समन्वयात् शक्तित प्रवृत्तेश्च।
कारण कार्य–विभागादविभागाद् वैश्वरुप्यस्य।।

सा०का०

प्रकृति और इसके तीन गुण

प्रकृति तीन गुणो से युक्त है इसलिये इसे 'त्रिगुणी' भी कहा जाता है ये तीनो गुण– सत, रज, तम है। ये गुण अति सूक्ष्म और अतीन्द्रिय है। इसलिये गुणो का भी प्रत्यक्ष नही होता है केवल इसका अनुमान होता है। सत्वगुण का कार्य सुख है रजोगुण का कार्य दु ख है और तमोगुण का कार्य मोह है। कौमुदीकार श्री मिश्र जी ने त्रिगुणो का जो विवेचन किया है वह इस प्रकार है–

"प्रीत्यप्रीतिविषादात्मका प्रकाशप्रवृत्ति नियमार्था ।
अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुन वृत्तयश्च गुणा ।"

इस उपर्युक्त कारिका मे त्रिगुणो का सामान्य लक्षण दिया गया है और कहा गया है कि सत्व गुण का स्वरुप प्रीत्यात्मक, रजोगुण का अप्रीत्यात्मक (दु खात्मक) तथा तमोगुण का स्वरुप विषादात्मक (मोहात्मक) है। इसका विशिष्ट लक्षण भी कौमुदीकार श्री मिश्र ने दिया है–

"सत्व लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्ठम्भक चल च रज ।
गुरु वरणकमेव तम प्रदीपचाच्यार्थतो वृत्ति" ।।

अर्थात् सत्वगुण लाघव एव प्रकाश से युक्त होता है यही सत्व गुण अग्नि के उर्ध्वजलन एव तिर्यगगमन मे सहायक होता है। रजोगुण को अप्रवृत्तिशील सत्वतमादि

को स्व–स्व कार्यो मे प्रवृत्त कराने के कारण उपष्ठम्भक (उत्तेजक) एव चचल कहा गया है। तमोगुण को, रजोगुण की प्रवृत्ति मे प्रतिबन्धक होने के कारण गुरु एव आवरणक कहा गया है। ('गुरुवरणकमेवतम')

इन तीनो गुणो का प्रयोजन 'प्रकाश प्रवृत्तिनियमार्था है अर्थात् इस कारिकाश के अनुसार सत्वगुण–प्रकाशार्थ, रजोगुण–प्रवृत्यर्थ तथा तमोगुण नियमार्थ प्रवृत्त होता है। सम्मिलित रुप मे ये तीना गुण बत्ती–तेल–अग्नि समन्वित प्रदीपवत एक ही पुरुषार्थरुपी प्रयोजन को सिद्ध करते है। गुणो की साम्यावस्था प्रलय की होती है और विरुपावस्था मे सृष्टि होती है।

पुरुष

साख्य का दुसरा मूल तत्व पुरुष है। पुरुष की सत्ता स्वयसिद्ध है। पुरुष न तो प्रकृति है न विकृति, अर्थात् न तो कारण है और न तो कार्य। 'न प्रकृतिर्न विकृति पुरुष'।।

पुरुष का स्वरुप प्रकृति से पर्याप्त भिन्न है। प्रकृति एक है– पुरुष अनेक है। प्रकृति अचेतन है किन्तु पुरुष चेतन है। प्रकृति कारण है किन्तु पुरुष न तो कारणहै और न कार्य है। प्रकृति स्वय अजन्मा है किन्तु प्रसवधर्मिणी है क्योकि सारा जड जगत इसी से प्रसूत है। पुरुष चेतन द्रव्य नही बल्कि चैतन्य इसका गुण या धर्म है। पुरुष चैतन्यस्वरूप है और चैतन्य उसका स्वभाव है। पुरुष विशुद्ध विषयी है जो कभी विषय या ज्ञेय नही बन सकता है वह साक्षी है, कूटस्थ नित्य है। पुरुष व्यापक, विभु है वह निगुण या निस्त्रैगुण्य है। पुरुष विधिनिषेध के ऊपर है। पुरुष को १०वी ११वी कारिका मे पुरुष का स्वभाव प्रकृति स्वरुप वाला भी है और उससे भिन्न भी है। जैसा कि साख्य कारिका मे कहा गया है–

'हेतुमद नित्यमव्यापि, सकियमनेकमाश्रित, लिड्गम।

साडवय परतन्त्रम् व्यक्त विपरीतमव्यक्तम् ।।१०।।

त्रिगुणम विवेकिविषय, सामान्यमचेतन प्रसवधर्मि।

व्यक्त तथा प्रधान तद्विपरीतस्तथा च पुमान ।।११।।

११वी कारिका मे पुरुष को प्रकृति के स्वरूप से भिन्न यथा– त्रिगुणातीत, विवेकी, अविषयी, असामान्य, चेतन तथा अप्रसवधर्मी कहा गया है। १०वीं कारिका मे पुरुष को प्रकृति के स्वरूप वाला कहा गया है यथा– अहेतुमत, नित्य, व्यापी, निष्क्रिय, एक, अनाश्रित, स्वतत्र, अलिडग है। पुरुष की सत्ता सिद्ध करने के लिये साख्य कारिका मे निम्न कारिका दी गयी है–

सघातपरार्थत्वात त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।

पुरुषोऽस्ति् भोक्तृभावात् कैवल्यार्थ प्रवृत्तेश्च।। १७ ।।

पुरुष नित्य और एक होते हुये भी शरीर भेद से बहुत है– साख्य पुरुषो मे सख्यागत भेद और गुणगत अभेद मानता है। इस प्रकार साख्य पुरुष बहुत्व को स्वीकार करता है– निम्न कारिका से स्पष्ट है–

"जनन–मरण–करणाना प्रतिनियमाद युगपत्यप्रवृत्तेश्च।

पुरुष बहुत्व सिद्ध त्रैगुण्य वपर्ययाच्चैव ।। १८ ।।

अर्थात् जन्म–मृत्यु और इन्द्रियो के प्रतिनियम से या प्रत्येक शरीर का जन्म–मरण और इन्द्रियो के सघात के पृथक–पृथक होने से तथा त्रैगुण्य के विपर्यय से पुरुष का बहुत होना स्वय सिद्ध है। विभिन्न पुरुषो का जन्म अलग २ होता है और मृत्यु भी अलग २ होती है और ज्ञानेन्द्रिय भी अलग–अलग होती है। अन्यथा एक पुरुष के जन्म से सबका जन्म और एक पुरुष की मृत्यु से सबकी मृत्यु हो जाती। इस प्रकार यदि कोई पुरुष किसी रुप गन्ध आदि का अनुभव करता तो सभी पुरुष वही करते। इससे यही सिद्ध होता है कि पुरुष एक न होकर अनेक है।

प्रकृति–पुरुष सम्बन्ध

साख्य द्वैतवादी है, प्रकृति और पुरुष दो मूल तत्वो को मानता है। ये दोनो तत्व यद्यपि एक दूसरे के स्वभावत प्रतिकूल है किन्तु इनके सयोग से ही सृष्टि होती है। प्रकृति–पुरुष का सयोग अनादि अविद्या के कारण होता है जैसा कि 'योग सूत्र' मे कहा गया है 'द्रण्टुदृश्ययो सयोगो हेय हेतु'। अर्थात द्रष्टा–दृश्य का सयोग हेय का हेतु है। पुरूष चिन्मात्र है। वह अपरिणामी, नित्य और सर्वव्यापी है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है और पुरूष निस्त्रैगुण्य है। साख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति–पुरूष का (सम्बन्ध) सयोग भी अधे और लगडे के समान सप्रयोजन होता है। इसका मुख्य रूप से दो प्रयोजन होता है भोग और मोक्ष प्रकृति का मुख्य प्रयोजन भोग है तथा पुरूष का प्रयोजन मोक्ष है। अर्थात् प्रकृति भोग के लिये पुरूष की अपेक्षा रखती है और पुरुष मोक्ष के लिये प्रकृति की अपेक्षा रखता है। ईश्वर कृष्ण ने इसको इस प्रकार व्यक्त किया है– पुरुषस्य दर्शनार्थ कैवल्यार्थ तथा प्रधानस्य ।पडग्वन्धवदुभयोरपि सयोग तत्कृत सर्ग। (साख्य कारिका १२)

अर्थात् प्रकृति भोग्या है, त्रिगुणात्मिका है, अचेतन है आदि इसलिये कोईऐसा तत्व होना चाहिये जो भोक्ताहो, निस्त्रैगुण्य और चेतन हो। यह पुरुष ही सिद्ध होता है। प्रकृति और पुरुष का सयोग सम्बन्ध किसी देश–काल मे नही होता है यह केवल विचार जगत मे सन्निधि मात्र होता है। और यह सयोग दोनो की आकाक्षा पर निर्भर करता है। यह सयोग सृष्टिकाल (सर्ग) मे होता है, प्रलयकाल मे दोनो का वियोग होता है। प्रकृति पुरुष सयोग अयस्ककान्त मणिवत् होता है।

सृष्टिक्रम

साख्य दर्शन निरीश्वरवादी और सत्कार्यवादी दर्शन है। प्रकृति और पुरुष–जीव के अनादि सयोग से ही लगत् की रचना मानी गयी है। साख्य कारिका मे ईश्वर कृष्ण ने जगत की रचना मे प्रकृति की स्वतत्र प्रवृत्ति का वर्णन इस प्रकार किया है– "वत्स

विवृद्धि निमित्त क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य। पुरूष विमोक्ष निमित्त तथा प्रवृत्ति प्रधानस्य।।"

जिस प्रकार दूध अचेतन होते हुये बछडे के पालन के निमित्त गाय के स्तन से स्वय प्रवाहित होने लगता है उसी प्रकार पुरूष जीव के भोग और मोक्ष के लिये प्रकृति जगत् की रचना मे स्वय व्यापृत होती रहती है। इस प्रकार पंङ्बन्ध्ववत् प्रकृति–पुरूष सयोग होने पर प्रकृति से महत् (बुद्धि) का आर्विभाव होता है यह अचेतन होती है किन्तु पुरूष के प्रतिबिम्ब से प्रतिबिम्बित होकर चेतनवती सी हो जाती है और अध्यवसाय बुद्धि का लक्षण है। फिर महत् तत्व से अहकार और एतद्नन्तर अहकार से षोडश्समुच्चय उत्पन्न होता है। अर्थात् अहकार के सात्विक अश से एकादश इन्द्रिया उद्भूत होती है और तमोगुण के प्रधान अश से पञ्चतन्मात्राएं उद्भूत होती है फिर इन तन्मात्राओ से पचमहाभूत उत्पन्न होता है। जैसा कि सा० कारिका कार ने लिखा है–

"प्रकृतेर्महास्ततोऽहकारस्तस्माद्गणश्च षोऽशक।

तस्मादपि षोडशकात्पञ्चभ्य पञ्च भूतानि।। २२।।"

सृष्टिक्रम विकासवाद को तालिका से इस प्रकार दिखाय जा सकता है–
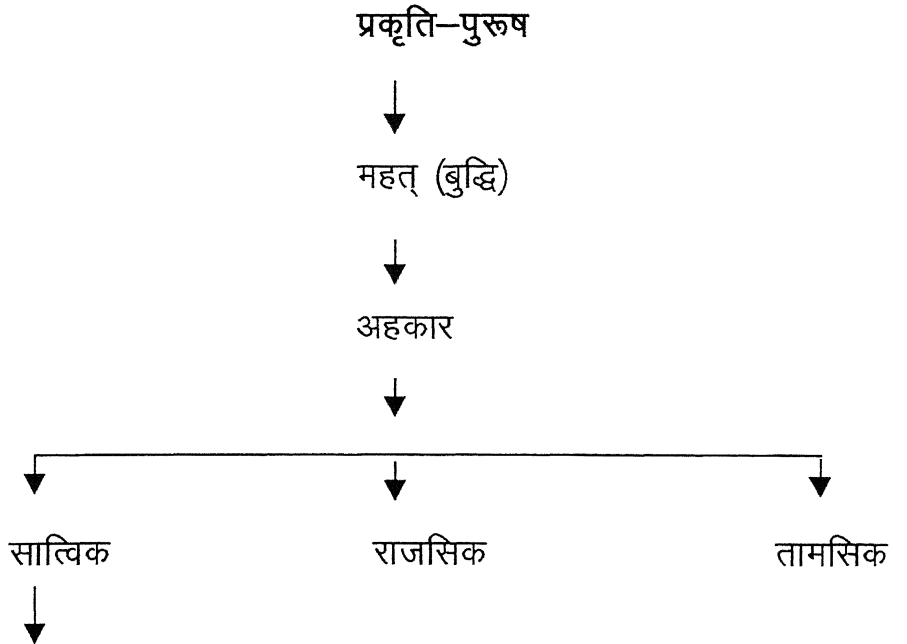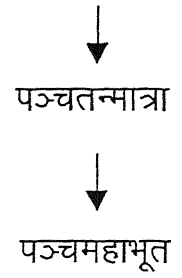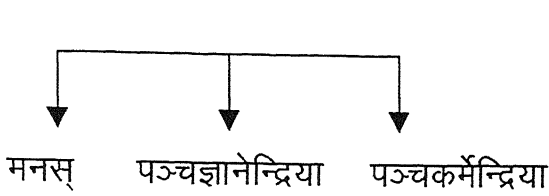
गुणो मे जब क्षोभ उत्पन्न होता है तब उसकी साम्यावस्था भंग हो जाती है और एक गुण दूसरे गुण पर प्रभुत्व जमाने की कोशिश करते हैं और जो गुण शक्तिशाली होता है उसी के अनुरूप वस्तु का निर्धारण होता है। इस प्रकार पच्चीस तत्व साख्य मानता है। साख्यकारिकाकार ने निम्न कारिका से स्पष्ट किया है–

मूलप्रकृतिर विकृतिर्महदाद्या प्रकृति विकृतय सप्त।

षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृति पुरुष ।।

इस प्रकार प्रथम महत् तत्व से प्रारम्भ होकर अन्तिम पञ्चमहाभूतो तक का यह सारा प्रकृतिकृत सृष्टिक्रम प्रत्येक पुरूष को मुक्त कराने के लिये प्रवृत्त होता है। 'प्रतिपुरूषविमोक्षार्थ स्वार्थ इव परार्थआरम्भ'। इत प्रकृति का स्रार्ष्ठ व्यापार पुरूष के भोग और मोक्ष के सम्पादन के लिये होता है।

बन्धन और मोक्ष या अपवर्ग

जब पुरूष का प्रकृति से सयोग होता है तब पुरूष का प्रतिबिम्ब चितिच्छायापपत्ति के माध्यम से प्रकृति (बुद्धि) पर पडता है और बुद्धि चेतनवती सी होकर विषयाकारकारित हो जाती है।[1] और प्रतिबिम्बित पुरूष अस्मिता पुरूष है और प्रकृति के सारे कार्य सम्पादन को अपना समझने लगता है यही पुरूष का बन्धन है। शुद्ध पुरूष या 'ज्ञ' पुरूष का बन्धन नही होता है बल्कि 'अस्मिता पुरूष' का होता है। प्रकृति अपने सात रूपो के द्वारा पुरूष को बाधती है और एक रूप ज्ञान मात्र से मुक्त करती है–

"रूपै सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृति ।

[1] सा० का० मे– तस्माद् तत्सयोगादचेतन चेतनावदिव लिगम्। गुणकर्तृत्वेऽपितथाकर्तेवभवत्युदासीन ।।२०।।

सैव च पुरूषार्थ प्रति विमोचयत्येक रूपेण।।"(सा०का०)

इस प्रकार कहा गया है कि इस बन्धन मे प्रकृति ही बधती और मुक्त होती है पुरूष मे ये उपचार मात्र से आरोपित होती है क्योकि पुरूष तो सर्वथा मुक्त है।

'तस्मान्नवध्यतेऽद्धा न ससरतिवध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृति ।।'

जैसे सेना की जय–पराजय स्वामी (राजा) मे आरोपित होती है वैसे ही भोग और अपवर्ग प्रकृति का होते हुये भी पुरूष मे उपचारित किये जाते है। कैवल्य से तात्पर्य मोक्ष या दु खत्रय की एकान्तिक व आत्यान्तिक निवृत्ति है यह ऐकान्तिक दु खनिवृत्ति, प्रकृति–पुरूष विवेक ज्ञान से ही सभव है– "व्यक्ताव्यक्त विज्ञानात्।" इस प्रकार 'दृष्टा' और 'दृश्य' का सयोग दु ख का कारण है– 'द्रष्टृदृश्ययो सयोगो हेय हेतु' (योगदर्शन १७) और इन दोनो के सयोग का अभाव ही 'अपवर्ग' है। इस प्रकार जब पुरूष को विवेकज्ञान अथवा साक्षात्कार हो जाता है तब पुरूष प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाता है और प्रकृति को रगमच पर नृत्य करती हुयी नर्तकी के रूप मे दर्शक की भाति, बैठकर देखता है और प्रकृति भी इस मुक्त पुरूष के लिये सोचती है कि मैं इसके द्वारा देख ली गयी हूॅ। और ऐसा सोचकर अपना कार्य सम्पादन बन्द कर देती है– 'रङस्यदर्शियित्वा निवर्ततेनर्तकी यथा नृत्यात्'। पुरूष भी प्रकृति को "देखचुका हूॅ" ऐसा सोचकर उपेक्षा कर देता है और पुरूष मे बुद्धि के सात परिणाम दग्ध बीज हो जाते है जिससे उनका कोई फल नही होता है–इसप्रकार यह जीवन मुक्त की अवस्था होती है–

"सम्यग ज्ञानाधिगमाद् धर्मादीनाम कारण प्राप्तौ।

तिष्ठति सस्कार वशाच्चक्रम भ्रमवद्धृतशरीर ।।" (६७ साख्य कारिका)

प्रारब्ध कर्मों के सस्कार के कारण वह सदेह बना रहता है किन्तु जैसे ही प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाते है वह विदेह मुक्त हो जाता है और शरीर नही रह जाता है। पुरूष कभी नाश न होने वाले अवश्यसभावी, ऐकान्तिक व आत्यान्तिक कैवल्य को प्राप्त

होता है–"प्राप्तेशरीर भेदे, चरितार्थत्वात प्रधानविनिवृतौ। ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभय कैवल्यमाप्नोति।।" (सा० का० ६८)

४. योग दर्शन

सभी भारतीय दर्शनो के बीच योग दर्शन का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस दर्शन के मुख्य प्रणेता महर्षि पतजलि माने जाते है। इसलिये इसे **"पातजल दर्शन"** भी कहा जाता है। इस दर्शन का मुख्य ग्रन्थ "योगसूत्र" या "पातजलसूत्र" है जो चार भागो मे विभक्त है– समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद तथा कैवल्यपाद। "योग सूत्रो पर व्यासमुनि का भाष्य है जिसे 'व्यासभाष्य' या 'योगभाष्य' भी कहा जाता है। व्यास भाष्य पर दो टीका (व्याख्याए) है– १– वाचस्पतिमिश्र की योगतत्व वैशारदी है। २– विज्ञानभिक्षु की योग वार्तिक अति प्रसिद्ध है।

'योग' का महत्व स्पष्ट रूप से वेद, उपनिषद, स्मृति, पुराण आदि सभी ग्रन्थो मे वर्णित मिलता है। जैसा कि ऋग्वेद मे कहा गया है– 'योगे–योगेतवस्तर वाजे वाजे हवामहे। सखायइन्द्रमूतये।।' निश्चतरूप से इसमे उल्लिखित "योग" शब्द योग साधना का ही अर्थ देता है। योग की महत्ता और उपयोगिता कावर्णन उपनिषदो मे भी हुआ है– कठोपनिषद मे आत्मज्ञान के एकमात्र साधन के रूप मे योग को स्वीकार किया गया है– अध्यात्मयोगाधिगमेन देव मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।[1]

वृहदारण्य उपनिषद मे भी आत्मज्ञान के लिये समाधि को अनिवार्य रूप से प्रतिपादित किया गया है।[2] श्वेताश्वेतर उपनिषद मे भी योग की मुक्तकठ से प्रशसा की गयी है–'योग प्रवृत्ति प्रथमा वदन्ति।'[3] सभी भारतीय दर्शनो के बीच योग दर्शन का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शङ्कराचार्य और वाचस्पति[4] मानते है कि हिरण्यगर्भापरनामा कपिल ने सर्वप्रथम 'साख्य योग' को उपदेश दिया। साख्य तथा योग

---

[1] कठोपनिषद १/२/२१
[2] तस्मददेव विच्छान्तो दान्त उपरतास्तितीक्षु समाहिते भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मान पश्यति(बृहदा० ४/४/२३)तस्मादेव।
[3] श्वेता० उप० २६१२

एक ही दर्शन के सैद्धान्तिक एव क्रियात्मक पहलू है। दोनो ही दर्शन मे अभिन्नता है। इसकी अभिन्नता का प्रमाण इससे भी स्पष्ट होता है कि योग सूत्र के भाष्यकार व्यास ने अपने भाष्य का नाम "साख्यप्रवचन भाष्य" रखा। श्रीमद्भगवद्गीता भी अपने को योगशास्त्र की सज्ञा देती है तथा जीवन के अभ्युदय के लिये साख्य तथा योग को आधार लेना आवश्यक बताती है।

"लोकेऽस्मिन द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।

ज्ञानयोगेन साख्याना कर्मयोगेन योगिनाम्।।"

यद्यपि गीता मे प्रयुक्त 'साख्य' और 'योग' शब्द को साख्यदर्शन और पातञ्जल दर्शन मे एकदम सटीक पयार्यवाची नही मानते है। किन्तु आन्तरिक हावभाव साख्य और योग का गीता से मिलता–जुलता है। कुछ विद्वानो का मन्तव्य है कि साख्य और योग दोनो उस पुरातन काल मे एक ही दर्शन के सम्मिलित नाम थे। अन्तर मात्र इतना था कि यदि एक तत्वसिद्धान्त था तो दूसरा उस सिद्धान्त को साक्षात्कार करने का साधन पथ था।साख्य और योग की अभिन्नता का प्रतिपादन गीता मे बहुत ही सुन्दर ढग से किया गया है–

साख्ययोगौ पृथग्बाला प्रवदन्ति न पण्डिता ।

एकमाप्यास्थित सम्युगुभयोर्विन्दते फलम्।। (श्रीमद्भगवतगीता ५/४)

इसके (श्री मद्भगवतगीता) पाचवे अध्याय के पाचवे श्लोक मे कहा गया है–

'यत्साख्यै प्राप्यते स्थान तद्योगैरपि गम्यते।

एक साख्य च योग च य पश्यति स पश्यति।। (श्रीमद्भगवतगीता ५/५)

साख्य दर्शन के द्वारा स्वीकृत २५ तत्वो को योग भी स्वीकार करता है किन्तु योग साख्य से हटकर २६वा तत्व 'ईश्वर' को मानता है इसलिये इसे 'सेश्वरसाख्य' भी कहते है। किन्तु ईश्वर को अतिरिक्त तत्व न मानकर 'पुरूषतत्व' मे ही समाहित किया

---

[४] कपिलोनामविष्णोरवतारविशेष प्ररिद्ध स्वयभूहिरण्यगर्भस्तस्यापि साख्ययोगप्राप्तिर्वेदे श्रूयते । स एतेश्वर आदि विद्वान विष्णु स्वयभूरितभाव (त०वैशा० १६२५)

गया है। साख्य द्वारा स्वीकृत तीन प्रमाणो के प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द को योग भी स्वीकार करता है। साख्य दर्शन की तरह योग दर्शन भी द्वैतवादी है और उसके तत्वशास्त्र को पूर्णत स्वीकार करता है केवल ईश्वर को जोड देता है। इसलिये साख्य और योग को 'समान तत्र' कहा जाता है।

'योग' शब्द युज् धातु मे 'घञ्' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। 'युज'–समाधै धातु 'दिवादिगणीय (आत्मने पद) मे पायी जाती है– साख्य योगशास्त्र मे 'योग' शब्द का अभीष्ट अर्थ समाधि अर्थात चित्तवृत्ति का निरोध ही स्वीकार किया गया है।

१– 'योग समाधि स च सार्वभौम चित्तस्य धर्म ।'

२– योगश्चित्त वृत्ति निरोध समाधि । (योग सूत्र १/२)

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि साख्ययोगदर्शन मे प्रयुक्त 'योग' शब्द 'युज्' समाधौ धातु से ही 'घञ्' प्रत्यय लगाकर बना हुआ है। 'योग' शब्द का प्रचलित अर्थ 'मिलन' है अर्थात 'जीवात्मा का परमात्मा से मिलन।' योगियाज्ञवल्क्य मे योग लक्षण दिया गया है 'सयोगो योग इत्युक्त जीवात्मपरमात्मनो ।'

योगसूत्र चार पादो मे विभक्त है समाधि, साधन, विभूति, कैवल्य। समाधिपाद मे चित्त को बाह्य विषयो से हटाकर पुरूष के वास्तविक स्वरूप मे समाहित करने की विधि वर्णित है। साधनपाद मे चित्त की बर्हिमुख वृत्तियो के निरोध और अन्तर्मुख सात्विक वृत्तियो के प्रवर्तन के उपायो का वर्णन है। विभूतिपाद मे उन समस्त उपलब्धियो का वर्णन है जो योग से चित्त के शक्ति सम्वर्द्धन और पुरुष के स्वरूप बोध से होती है। कैवल्यपाद मे पुरूष अपने विवेकख्याति से विशुद्ध, नितान्त निर्मल, चैतन्यस्वरूप मे अवस्थित हो जाता है।

चित्तवृत्ति

'योगश्चित्तवृत्ति निरोध' इस प्रथम सूत्र मे कहा गया है कि चित्त की वृत्तियो का निरोध ही योग है और 'योग समाधि' अर्थात् योग ही 'समाधि' है। वृत्ति से तात्पर्य

है जब चित्त इन्द्रियो द्वारा वाह्य विषयो के सम्पर्क मे आता है अथवा स्वय ही मानस विषयो के सम्पर्क मे आता है तब वह विषय का आकार ग्रहण कर लेता है और इस प्रकार 'तदाकाराकारित' हो जाता है इसे ही 'वृत्ति' कहते हैं। इस प्रकार क्लिष्ट अक्लिष्ट के भेद से वृत्तिया पाच प्रकार की होती है– "प्रमाण विपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतय" (योग सूत्र ६)। अविद्यादि पञ्चक्लेशो से उत्पन्न होने वाली (वृत्तियो) तथा कर्मसस्कार समूहो को उत्पन्न करने वाली वृत्तियॉ क्लिष्ट और विवेकख्यातिविषयक गुणो के कार्य की विरोधनी वृत्तिया अक्लिष्ट कही जाती है। इन चित्त–वृत्तियो का निरोध चित्तभूमियो मे ही होता है। ये चित्त भूमि है– क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र, निरूद्ध, इन पाच भूमियो मे क्रमश पांच वृत्तियो का निरोध होता है। योगशास्त्र मे साधको की तीन श्रेणिया बतायी गयी है– १ उत्तम, २ मध्यम, ३ अधम। इन्हे क्रमश योगरूढ, युञ्जान तथा आरुरक्षु भी कहा गया है।

१ योगसूत्रकार महर्षि पतजलि ने उत्तम साधक को चित्तवृत्ति निरोध के लिये अभ्यास, वैराग्य को बताया है 'अभ्यास्वैराग्याभ्यातन्निरोध ।'

२ मध्यम योगी के लिये क्रिया योग को बताया गया है– 'तप स्वाध्यायईश्वर प्रणिधानक्रियायोग ।'

३ अधम साधको के लिये अष्टाग योग को बताया गया है।

अष्टाग योग

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये योग के आठ अग है। 'यमनियमाऽऽसनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावगानि।'

१ **यम–** 'अहिसा–सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा[२]।।३०।। अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यम हैं।

[२] पातञ्जल योग दर्शनम– डा० सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव– पृ० २६५।

२ **नियम–** 'शौचसन्तोषतप स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानिनियमा ।' शौच, सतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान ये पाच नियम है।

३ **आसन–** 'स्थिरसुखमासनम्' जिसमे स्थिर सुख की प्राप्ति हो वह आसन है।

४ **प्राणायाम–** 'तस्मिन् सति श्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेद प्राणायाम ।' अर्थात् आसन–सिद्धयनन्तर श्वास प्रश्वास की गति का ही विच्छेद 'प्राणायाम' है।

५ **प्रत्याहार–** 'स्वविषया सम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकारइवेन्द्रियाणाम प्रत्याहार ।।' इन्द्रियो का अपने अपने विषय[२] के साथ सयुक्त न होने पर चित्ताकार स्वरूप सा हो जाना ही प्रत्याहार है।

६ **धारणा–** 'देशबन्धचित्तस्य धारणा' अर्थात् चित्त को नासिकादि किसी देशविशेष मे एकाग्र करना ही धारणा है।

७ **ध्यान–** 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'– किसी विषय पर चित्त की एकाग्रता ही ध्यान है।

८. **समाधि–** 'तदेवार्थ मात्र निर्भास स्वरूपशून्यमिव समाधि । अर्थात् ध्यान ही ध्येय के स्वरूप का होकर और स्वस्वरूप से शून्य जैसा हो जाता है। धारणा, ध्यान, समाधि योग के अन्तरङ्ग साधन है और उपर्युक्त पाच वहिरङ्ग साधन है। समाधि के अन्तर्गत दो प्रकार की समाधि वर्णित की गयी है– १ सम्प्रज्ञात समाधि, २ असम्प्रज्ञात समाधि।

सम्प्रज्ञात समाधि

'सम्यक् प्रज्ञायतेऽस्मिन्निति सम्प्रज्ञात'। अर्थात् चित्त की एकाग्र भूमि मे जब वृत्ति का निरोध होता है तब सात्विक बुद्धि पूर्णरूप से उदित हो जाती है और प्रकृति–पुरुष का विवेकज्ञान हो जाता है– 'व्यक्ताव्यक्त विज्ञानात'। सम्प्रज्ञात समाधि असम्प्रज्ञातसमाधि की पूर्ववर्ती साधन मात्र है और इसके सिद्ध होने पर ही असम्प्रज्ञात समाधि होती है। सम्प्रज्ञात समाधि सिद्धिचार सोपानक्रम मे होती है–

१ वितर्कानुगत   २ विचारमुगत

३ आनन्दानुगत   ४ अस्मितानुगत।

चौथे अस्मितानुगत समाधि मे ही विवेक ख्याति का उदय होता है और 'धर्ममेध समाधि' भी इसे कहा जाता है। यह जीवनमुक्त की अवस्था होती है।

असम्प्रज्ञात समाधि

यह सम्प्रज्ञात समाधि की साध्यभूता समाधि है– इसका लक्षण– 'विरामप्रत्ययअभ्यासपूर्व सस्कारशेषोऽन्य' (योग सूत्र १/१८) मे बताया गया है। यह विदेह मुक्ति की अवस्था होती है। यह दो सोपानो मे होती है–

१– भव प्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि।

२– उपाय प्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि।

योग दर्शन का कैवल्य साख्य के कैवल्य या अपवर्ग जैसा ही है। प्रतिकूल वेदनीय दु ख से छुटकारा प्राप्त करना ही कैवल्य है। योग के अनुसार 'पुरूषार्थ शून्य गुणो का प्रतिप्रसव तथा पुरूष का अपने स्वरूप मे अवस्थापन मोक्ष है– 'पुरूषार्थ शून्याना गुणानाप्रतिप्रसव कैवल्य स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।' (४/३३ कैवल्यपाद) पुरुष के अपने स्वरूप मे अवस्थिति हो जाने पर बुद्धि भी मुक्त हो जाती है और पुरूष भी– 'तदाद्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्' (योग सूत्र १/३)।

योगदर्शन समाधि मे सिद्धि के लिये ईश्वर को आवश्यक मानता है। इसका वर्णन योगसूत्र मे १/२४, १/२५, १/२६, १/२७, १/२८, १/२६ मे किया गया है। ईश्वर एक पुरूष विशेष है जो सर्वथा मुक्त है– 'क्लेशकर्म विपाकाशै परामृष्ट पुरूषविशेष ईश्वर।' यो० सू० (१/२४) ईश्वर का वाचक शब्द प्रणव अथवा ओड्कार है।[1] योग साधना मे ईश्वर का महान उपयोग यह है कि उसकी भावना करने और उसके नाम का जप करने से योगमार्ग के सारे विघ्न दूर हो जाते है और साधक को

[1] तस्यवाचक प्रणव यो० सू० (१/२७)

अपने स्वरूप का दर्शन होता है और कैवल्य की सिद्धि होती है। योग दर्शन मे ईश्वर को सर्वज्ञ माना गया है "तत्र निरातिशय सर्वज्ञ बीजम्।"[2] अर्थात् ज्ञान का निरातिशय होना उसकी सर्वज्ञता का द्योतक है। इस दर्शन मे ईश्वर को सबका गुरू कहा गया है– जैसाकि "सर्वेषामपि गुरू काले नानवच्छेदात्" इस सूत्र से विदित होता है। ईश्वर के चिन्तन से प्रत्येक चेतन बुद्धि के प्रति सम्वेदी पुरूष अर्थात जीव का उसके वास्तव विशुद्ध चैतन्य रूप मे बोध होता है और इस बोध के प्रयास मे होने वाले विघ्नो का निराकरण होता है– 'तत प्रत्यक्चेतनाभिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।।" (१/२६ योग सूत्र)।

मीमासा दर्शन

आस्तिक दर्शनो की श्रेणी मे मीमासा दर्शन का महत्वपूर्ण स्थान है। इस दर्शन के मुख्य प्रणेता महर्षि 'जैमिनी' माने जाते है। 'मीमासा' शब्द का अर्थ है– 'पूजित विचार'। यह शब्द पहले कर्मकाण्ड विषयक जिज्ञासा के लिये प्रयुक्त होता था। अर्थात् 'मीमासा' का अर्थ है– किसी वस्तु के स्वरूप का यथार्थ वर्णन। मीमांसा दर्शन का उद्देश्य है– ब्राह्मणो के कर्मकाण्डो और यज्ञो आदि का प्रणालीबद्ध विवेचन प्रस्तुत करना। वेद के दो भाग है– १ कर्मकाण्ड, २ ज्ञानकाण्ड।

कर्मकाण्ड के अन्तर्गत यज्ञ–यागादि की विधि तथा अनुष्ठान का वर्णन कर्मकाण्ड का विषय है। ज्ञानकाण्ड के अन्तर्गत जीव–जगत–ईश्वर के परस्पर सम्बन्ध का वर्णन किया जाता है। मीमासा दो प्रकार की है– १ कर्ममीमासा, २ ज्ञान मीमासा।

कर्ममीमासा

कर्म विषयक ज्ञानो का परिहार करती है। और ज्ञान मीमासा ज्ञान विषयक बातो का परिहार करती है। कर्ममीमासा को पूर्वमीमासा या मीमासा भी कहते है। ज्ञान मीमासा को उत्तर मीमासा या वेदान्त कहते है। वेदान्त वेद के उत्तर भाग अर्थात उपनिषद भाग या ज्ञानकाण्ड पर आधारित है इसलिये इस उत्तर मीमासा, ब्रह्ममीमासा

[2] यो० सू० १/२५।

या ज्ञान मीमासा भी कहते हे। पूर्व मीमासा का मूल–ग्रन्थ जैमिनि का सूत्र है। जिसकी सूत्र सख्या २७४५ है। मीमासा सूत्र १६ अध्यायो मे विभक्त है। जिनमे प्रथम १२ अध्यायो के द्वादशलक्षणी मीमासा भी कहते है। और अन्तिम ४ अध्यायो को 'सकर्षण काण्ड' या 'देवता काण्ड' के नाम से भी जाना जाता है। महर्षि जैमिनी ने मीमासा के आठ आचार्यो के मत का उल्लेख किया है– आत्रेय, आलेखन, आश्मरथ्य, ऐतिशायन, कामुकायन, कार्ष्णाजिनि, बादरायण, बादरि तथा लालुकायन। जैमिनी सूत्र पर शबर स्वामी (२०० ई०) का प्रसन्न गभीर भाष्य है जिसे 'शबर भाष्य' कहा जाता है। प्राचीन वृत्तिकार उपवर्ष (१००–२०० ई०) भर्तृहरि, भवदास, देवस्वामी आदि ने वृत्तियॉ लिखी।

मीमासा प्रणेता जैमिनी के काल को लेकर विद्वानो में मतभेद है– 'राधकृष्णन' यह मानते है कि 'जैमिनी' ईसा–पूर्व चौथी शताब्दी के महापुरूष थे। हिरियन्ना का मत है कि उनका जीवन काल ईसा पूर्व दूसरी और तीसरी शताब्दी के मध्य बीता था। पतञ्जलि जो ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के मध्यकाल मे हुये थे अपने महाभाष्य मे मीमासा की चर्चा की है। अत यह मानना तर्कसगत ही जान पडता है कि जैमिनी, पतञ्जलि से पूर्व के हुये होंगे। साख्य और योग के समान मीमासा और वेदान्त को भी समानतत्र कहा जाता है। क्योकि इनमे काफी समानता है– मीमासा सूत्र का प्रथम सूत्र है– 'अथातो धर्म जिज्ञासा।' और वेदान्त सूत्र का प्रथम सूत्र है– अथातो ब्रह्म जिज्ञासा (जब ब्रह्म की जिज्ञासा करनी चाहिये)। दोनो ही दर्शन वेदाश्रित है। इसलिये रामानुजाचार्य ने मीमासासूत्र और वेदान्तसूत्र को एक ही शास्त्र के पूर्व तथा उत्तर खण्डो के रूप मे स्वीकार किया गया है।

'शबर–भाष्य' के दो व्याख्याकार थे १ प्रभाकर मिश्र, २ कुमारिल भट्ट। और इन दोनो ने दो मत स्थापित किये। प्रभाकर मिश्र का मत 'गुरुमत' कहलाता है। कुमारिल के प्रभाकर शिष्य थे उनकी प्रखर बुद्धि को देखकर कुमारिल ने उनका नाम 'गुरु' रख दिया। कुमारिल भट्ट के तीन विशालकाय वृत्ति ग्रन्थ है– श्लोकवार्तिक,

तत्रवार्तिक और दुपटीका। पार्थसारथि मिश्र ने श्लोकवार्तिक पर 'न्यायरत्नाकर' टीका लिखी है उनका प्रकरण ग्रन्थ 'शास्त्र–दीपिका' प्रसिद्ध है। कुमारिल भट्ट के टीकाकारो मे पार्थसारथि मिश्र, माधवाचार्य और खण्डदेव का नाम प्रसिद्ध है। पार्थसारथि मिश्र ने न्यायरत्नाकार, तर्करत्न, न्यायरत्नमाला आदिवार्तिक की रचना किये।

मुरारि मिश्र के विषय मे कहा गया है– '<u>मुरारेस्तृतीय पन्था</u>'। अर्थात मीमासा के तृतीय सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। इन्होने भवनाथ के मत का खण्डन किया है। इनका समय १२वीं शताब्दी तक माना जाता है इनका कोई ग्रन्थ भी प्राप्त नही होता है।

ज्ञानमीमासा

प्रामाण्य विचार– अज्ञान तथा सत्यभूत पदार्थ के ज्ञान को प्रमा कहते हैं। प्रमा का करण प्रमाण है अर्थात् जिस ज्ञान से अज्ञात वस्तु का अनुभव हो तथा जो किसी दूसरे ज्ञान से बाधित न हो ओर दोष रहित हो उसे ही प्रमाण कहते है।

प्रमाण को लेकर प्रभाकर और कुमारिल अलग–अलग मत रखते है प्रभाकर मिश्र पॉच प्रमाणो को स्वीकार करते है– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति। किन्तु कुमारिल छ प्रमाण मानते है इन पॉचो के अतिरिक्त अनुपलब्धि नामक छठवा प्रमाण मानते है। मीमासा दर्शन मे वेद को अपौरुषेय मानते हुये नित्य निर्दोषता के आधार पर उसे प्रमाण माना गया है। प्रामाण्य के विषय मे तीन मत प्रसिद्ध है–

१ प्रभाकर का मानना है कि सभी ज्ञान यथार्थ होते है भ्रम की सत्ता उन्हे स्वीकार नही है। जिस स्थल पर विद्वान भ्रम की सत्ता स्वीकार करते है उस स्थल मे प्रभाकर विश्रेष्य और विशेषण का पृथक–पृथक दो ज्ञान मानते है। और कहते है कि जिस दोष के कारण विशेष्य भूत पदार्थ की पहचान नही होती उसी के कारण उक्त दोनो ज्ञानो मे तथा उनके विषयभूत विशेष्य और विशेषण मे भेद ज्ञान नही होता इस प्रकार स्वरूपत और विषयत भिन्न रूप मे अज्ञात उक्त ज्ञानद्वय से वह सब कार्य

सम्पन्न होता है जो भारतीय दार्शनिको ने इस प्रकार तालिका के माध्यम से भ्रमवादियो के मत मे ऐसे स्थल मे विशेष्य–विशेषण के बाधित सम्बन्ध को विषय करने वाले भ्रम से उत्पन्न होता है।
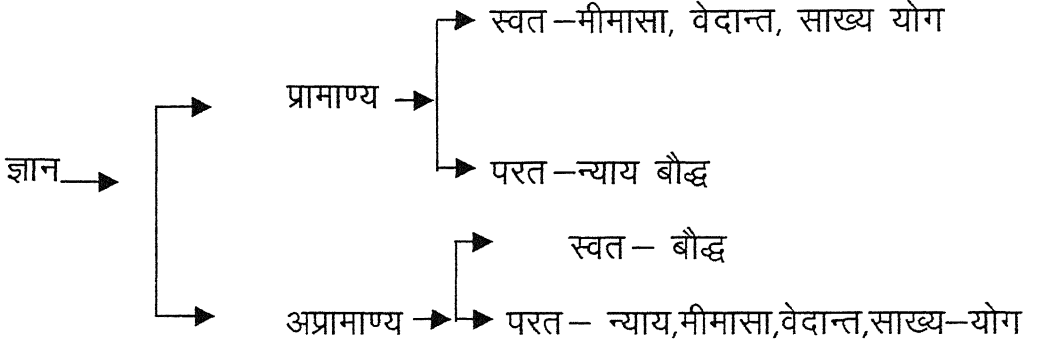
मीमासक स्वत प्रामाण्यवाद को मानते है। ज्ञान स्वत प्रमाण होता है। प्रभाकर और कुमारिल दोनो स्वत प्रामाण्य वादी है। इनके अनुसार ज्ञान का प्रामाण्य बाहर से नही आता और ज्ञान की प्रामाणिकता को अन्य ज्ञान से सिद्ध नही किया जा सकता है। प्रभाकर के अनुसार 'स्वत' का अर्थ ज्ञान जनक सामग्री से है। इस प्रकार प्रभाकर का मानना है कि ज्ञान स्वय प्रकाश है अर्थात् ज्ञान जिस सामग्री से उत्पन्न होता है उसी से उस ज्ञान का तथा उसके प्रामाण्य का ज्ञान होता है तथा प्रत्येक ज्ञान अपने स्वरूप, अपने विषय, और अपने आश्रयभूत ज्ञाता इस त्रिपुटी को विषय करता है।

कुमारिल भट्ट का मानना है कि ज्ञान अतीन्द्रिय है उसका प्रत्यक्ष नही होता किन्तु ज्ञान से विषय के उपर ज्ञातता नामक धर्म की उत्पत्ति होती है। मीमासक यह मानते है कि प्रामाण्य की उत्पत्ति और प्रमाण्य का ज्ञान दोनो स्वत होते है। ज्ञान का प्रामाण्य और इस प्रामाण्य का ज्ञान दोनो ज्ञान के साथ ही उदित होता है और उसी सामग्री से उत्पन्न होते है जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है।[१] मीमासको का मानना है कि ज्ञान का अप्रामाण्य परत होता है और बाहर से अनुमान किया जाता है। इस प्रकार मीमासक जहा स्वत प्रामाण्यवादी है वहा नैयायिक परत प्रामाण्यवादी है। 'अप्रामाण्य'

[१] प्रामाण्य स्वत उत्पद्यते स्वत ज्ञायते च। उत्पत्तौ स्वत प्रामाण्य ज्ञपतौ च स्वत प्रामाण्यम्।। सी०डी० शर्मा भारतीय दर्शन पृष्ठ १६१।

के विषय मे दोनो एक मत है क्यो कि दोनो ही (मीमासक, नैयायिक) अप्रामाण्य को परत स्वीकार करते है।

सी० डी० शर्मा ने भारतीय दर्शन मे लिखा है कि "मीमासक ज्ञान के अप्रामाण्य को, नैयायिक के समान, परत मानते है क्योकि इसका अनुमान कारण–दोष के आधार पर या बाधक ज्ञान के आधार पर किया जाता है। किन्तु प्रामाण्य को परत मानने पर उनकी घोर आपत्ति है और उन्होने न्याय के परत प्रामाण्य का प्रबल खण्डन किया है। मीमासको के अनुसार यदि ज्ञान मे स्वत प्रामाण्य न हो तो ज्ञान कभी भी प्रामाणिक नही हो सकता। नैयायिको का यह कथन कि ज्ञान उत्पत्ति के समय तटस्थ होता है और उसमे प्रामाण्य या अप्रामाण्य बाद मे आता है, सर्वथा असत्य है। तटस्थ ज्ञान अर्थात् प्रामाण्य और अप्रामाण्य से विरहित ज्ञान असभव है क्यो कि ज्ञान सदा या तो प्रामाणिक होता है या अप्रामाणिक। यहॉ तीसरा विकल्प नही है।"

आत्मा

प्रभाकर और कुमारिल दोनो के अनुसार आत्मा अनेक हैं। दोनो ही आत्मा को नित्य, सर्वगत, विभु, व्यापक द्रव्य मानते है जो ज्ञान का आश्रय है। मीमासा दर्शन के अनुसार मनुष्य का यथार्थ रूप 'आत्मा' है। वही प्राणिमात्र का वास्तविक रूप है। आत्मा प्रत्येक शरीर मे भिन्न भिन्न है। अपने पूर्व जन्मो के कर्मानुसार उसे नया जन्म मिलता है और उसे नये जन्म मे पूर्वजन्म के कर्मो का फल भोग प्राप्त होता है। न्यायवैशेषिक के समान कुमारिल भी आत्मा को जड द्रव्य मानते है, जो ज्ञान नामक गुण का आश्रय है। ज्ञान आत्मा का आगन्तुक गुण है। मोक्ष के समय धर्म और अधर्म की समाप्ति के कारण शरीर–इन्द्रिय आदि सम्बन्ध का आत्यन्तिक विलय हो जाता है।

कुमारिल का मत नैय्यायिको और प्रभाकर के मत से भिन्न है–कुमारिल ज्ञान को आत्मा का परिणाम या क्रिया मानते है जिसके द्वारा आत्मा पदार्थो को जानता है।

जैन मत के समान कुमारिल भी आत्मा को नित्यानित्य, भेदाभेद रूप चिदचिद्रुप और द्रव्य एव गुण–कर्म–रूप मानते है।

मीमासा–दर्शन मे जगत की सत्ता अनादि और अनन्त है, इसका आत्यन्तिक प्रलय कभी नही होता है। प्रवाह रूप से अनादि होने के नाते इसकी प्रथम उत्पत्ति भी नही है। अतएव जगतकर्ता के रूप मे ईश्वर का अस्तित्व इस दर्शन को मान्य नहीं है। ससार की सृष्टि के लिये धर्म और अधर्म का पुरस्कार और दण्ड देने के लिये ईश्वर को मानना भ्रान्तिमूलक है। मीमासा–दर्शन मे ईश्वर के स्थान पर अनेक देवताओ को माना गया है इसलिये इसे 'अनेकेश्वरवादी' कहा जाता है। कुमारिल और प्रभाकर भी जगत की सृष्टि और विनाश के लिये ईश्वर की आवश्यकता नही महसूस करते। ईश्वर को विश्व का स्रष्टा, पालनकर्ता और सहारकर्ता मानना भ्रामक है। कुमारिल तो वेद को भी ईश्वर की रचना नही मानते। मनुष्य को अपने कर्मानुसार विभिन्न योनियो मे जन्म मिलता है तद्नुसार ही सुख–दु ख, स्वर्ग–नरक आदि की प्राप्ति होती है।

६–वेदान्त दर्शन

उत्तर मीमासा वेद के ज्ञानकाण्ड पर आधारित है इसलिये इसे वेदान्त या ब्रह्म मीमांसा भी कहते है। वेदान्त शब्द का प्रयोग उपनिषदो के लिये होता है क्योकि उपनिषद वेद के अन्तिम भाग है। बादरायण 'वेदान्त' के मुख्य रूप से प्रणेता माने जाते है। उनका समय ईसा पूर्व चौथी शताब्दी और ईस्वी सन् दूसरी शताब्दी के बीच माना जाता है। कुछ विद्वानो और दार्शनिको ने उन्हे पौराणिक वेदव्यास ही माना है जिन्होने 'महाभारत' की रचना की थी।

पाणिनि ने भी जिन पाराशर्य भिक्षुसूत्रो का नाम उल्लिखित किया है वे पराशर के पुत्र महर्षि बादरायण व्यास के द्वारा विरचित 'ब्रह्म–सूत्र' से भिन्न नही प्रतीत होता है। किन्तु इस पर बहुत अधिक मतभेद है कुछ विद्वानो का मानना है कि सभवत ये

बादरायण ही वेदव्यास थे जिन्होने उपनिषदो के बिखरे विचारो को एक सामञ्जस्यपूर्ण और एकीकृत आदर्शवादी प्रणाली का विकास किया।

बौद्ध और जैन ग्रन्थो के अध्ययन से पता चलता है कि एक दर्शन के रूप मे वेदान्त ईसापूर्व सातवी और छठी शताब्दी मे वर्तमान था। इस दर्शन के अनुसार चेतना अथवा आत्मा ही हर वस्तु का मूल कारण थी और हर वस्तु अन्त मे उसमे ही विलीन हो जाती थी। इस दार्शनिक विचार–धारा का एक ओर भौतिक वादियो ने प्रबल विरोध किया तो दूसरी ओर बौद्ध और जैन मतावलम्बियो ने भी विरोध किया। किन्तु कालान्तर मे कई शताब्दिया बीत जाने पर आदर्शवादी विचार की 'ब्रह्मसूत्र अथवा वेदान्तसूत्र' के रूप मे स्थापना की गयी होगी। इस दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य ग्रन्थ '<u>बादरायणकृत ब्रह्मसूत्र</u>' है। 'ब्रह्म–सूत्र' मे कुल ५५४ सूत्र है। भगवान बादरायण ने इन सूत्रो को विषय की दृष्टि से चार अध्यायो मे विभक्त किया है। चार अध्यायो के नाम है क्रमश समन्वयाध्याय, अविरोधाध्याय, साधनाध्याय, फलाध्याय। इसके बाद प्रत्येक अध्याय को चार चार पादो मे विभक्त किया है। फिर इन 'पाद' को 'अधिकरण' के रुप मे विभाजित किया गया है। अनेक सूत्रो को मिलाकर 'अधिकरण' की रचना की गयी है। प्रत्येक अधिकरण के भीतर पॉच अवयव होते है जो क्रमश विषय, विशय, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष और फल है। तर्क की दृष्टि से ब्रह्मसूत्र का द्वितीय अध्याय 'तर्कपाद' अधिक महत्वपूर्ण है।

'ब्रह्मसूत्र' के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बादरायण से भी पूर्व वेदान्त के आचार्य हुये थे परन्तु इन आचार्यो की कृतिया उपलब्ध नही है। ये आचार्य है– आत्रेय, आश्मरथ्य, औडुलोमि, कार्ष्णाजिनि, काशकृत्स्न, जैमिनी, बादरि, एव आचार्य काश्यप प्रमुख है। इन आचार्यो का ब्रह्म–सूत्र मे कही कही नामोल्लेख सूत्रो मे किया गया है।

शड्कर पूर्व सभी अद्वैत के आचार्यों मे 'गौणपाद' का स्थान विशेष है। इनका प्रमुख ग्रन्थ 'गौणपाद कारिका' है। ये शड्कराचार्य के गुरु गोविन्दपादाचार्य के गुरु थे।

शड्कराचार्य इन्हे 'पूज्यामिपूज्य परम गुरु' कहकर अत्यन्त आदर देते थे। शड्कराचार्य के शिष्य सुरेश्वराचार्य भी इन्हे 'पूज्यगौण' कहते थे। गौणपादाचार्य ने अद्वैत मत का प्रतिपादन किया। और इनका 'अजातिवाद' प्रमुख सिद्धान्त माना जाता है।

साहित्य

वेदान्त का साहित्य अत्यधिक विशाल है। उपनिषद् गीता, ब्रह्मसूत्र (प्रस्थानत्रयी) पर आचार्य शड्कर का भाष्य प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त माण्डूक्य कारिका भाष्य, विष्णुसहस्रनाम भाष्य, सनत्सुजातीय भाष्य, सौन्दर्यलहरी, उपदेशसाहस्री आदि आचार्य शड्कर की प्रसिद्ध रचनाए है। कालान्तर मे शड्करोत्तर युग के अनुवायियों मे मतभेद के कारण दो सम्प्रदाय अस्तित्व मे आया। विवरणप्रस्थान, भामती प्रस्थान। ब्रहमसूत्र भाष्य पर शड्कर के शिष्य पद्मपाद ने पंचपादिका टीका लिखी। प्रकाशात्मन ने पचपादिका पर विवरण नामक टीका लिखा जिससे 'विवरणप्रस्थान' का उदय हुआ। अखण्डानन्द ने इस पर तत्त्वदीपन नामक टीका लिखी। विद्यारण्य ने 'विवरणप्रमेय सग्रह' लिखा। वाचस्पति मिश्र ने 'भामती' लिखकर भामती प्रस्थान सम्प्रदाय की नीव डाली। अमलानन्द ने भामती की व्याख्या कल्पतरु मे और अप्पयदीक्षित ने कल्पतरु की व्याख्या परिमल मे किया। विद्यारण्य की पञ्चदशी, सदानन्द का वेदान्तसार, चित्सुख कृत चित्सुखी माधवाचार्य प्रणीत पञ्चदशी और जीवन मुक्ति विवेक अद्वैत वेदान्त के अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

वेदान्त के अन्य सम्प्रदाय

वेदान्त के अन्य सम्प्रदाय है रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत वेदान्त, मध्वाचार्य का द्वैतवाद, वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद, निम्बाकाचार्य का भेदाभेदवाद है।

आचार्य शङ्कर

आचार्य शड्कर अलौकिक प्रतिभासम्पन्न महापुरुष थे। इनका जन्म ७८८ई० मे अर्थात् आठवी शताब्दी के अन्तिम काल मे केरल के कालडी गॉव मे एक नम्बूदरी

ब्राहमण परिवार मे हुआ था। तथा इनका निर्वाणकाल ८२० ई० माना जाता है। ३२ वर्ष की स्वल्प आयु मे ही आचार्य ने अपनी प्रतिभा से अपने समकालीनो को चकित कर दिया। इनके पिता का नाम शिवगुरु तथा माता का नाम विशिष्टा था। इन्होने वेदो, उपनिषदो आदि का गहन अध्ययन करके वैचारिक जगत मे एक तूफान सा उठा दिया। उन्होने आचार्य के रुप मे सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया और बौद्ध धर्म पर तीखा प्रहार किया। उन्होने देश के विविध स्थानो पर मठ स्थापित किये जैसे– दक्षिण भारत मे श्रृगेरीमठ, उ० भारत मे जोशी मठ (बदरिकाश्रम), पूर्वीभारत मे गोवर्धन मठ (पुरी) और पश्चिम भारत मे शारदामठ (द्वारका)। शकराचार्य मानव समाज को धर्म का पथ प्रदर्शन किये तथा एक कुशल धर्मसुधारक थे।

शड्कराचार्य ने प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखा, सौन्दर्य लहरी विवेक चूडामणि आदि अनेक रचनाये है। शड्कराचार्य का सिद्धान्त एकेश्वरवाद पर आधारित है और इससे जिस आदर्श प्रणाली का जन्म हुआ उसे 'अद्वैत वेदान्त' के नाम से जाना जाता है। शड्कराचार्य भाट्ट मीमासक द्वारा स्वीकृत छ प्रमाणो को स्वीकार करते हैं– प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि।

शकराचार्य सत्कार्यवाद को मानते है तथा असत्कार्यवाद का खण्डन करते है। सत्कार्यवाद के दो रुप–परिणामवाद और विवर्तवाद। साख्य तथा रामानुज कारण का कार्य मे तात्विक परिवर्तन मानते है जैसे दूध से दही जमना। इसी से साख्य का मत 'प्रकृति–परिणामवाद' कहलाता है और रामानुज का मत 'ब्रहम–परिणामवाद' कहलाता है।शड्कर इन दोनो से अलग 'विवर्तवाद' को स्वीकार करते है। शड्कर मानते है कि कारण तो सत् है किन्तु कार्य केवल उसका आभास मात्र है। इसलिये यह जगत प्रपच ब्रह्म का विवर्त मात्र है। आचार्य शड्कर ने अपने सम्पूर्ण अद्वैत वेदान्त को इसी श्लोकार्द्ध से व्यक्त किया है– 'ब्रहम सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रहमैव नापर'। अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है, और जीव ब्रहम ही है, उससे भिन्न नही है'। ब्रह्म और

आत्मा एक ही है जगत् प्रपञ्च माया की केवल प्रतीति मात्र है जीव और जगत दोनो ही मायाकृत है। जिस प्रकार रज्जू मे सर्प की प्रतीति भ्रम से होती है और जैसे ही रज्जू का यथार्थ ज्ञान हो जाता है वैसे ही सर्प रूपी मिथ्या ज्ञान का बोध हो जाता है।

आचार्य शङ्कर के सिद्धान्त मे मायावाद का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अनेक नाम है– माया सदसद्निवर्चनीय है, यह अनादि है, भौतिक एव जड है तथा ज्ञान निरस्या है। माया अध्यास[1] है। माया का आश्रय और विषय ब्रहम ही है किन्तु माया से ब्रहम सर्वथा सर्वदा अलिप्त है ब्रहम के अद्वैत को कोई नुकसान नही पहुचाती है। माया के आश्रित होते ही ब्रहम–ईश्वर के रुप मे भासित होता है। ईश्वर की व्यवहारिक सत्ता है। परमार्थिक नही। शङ्कर की मायावाद का खण्डन विशिष्टाद्वैतवादी रामानुज ने किया है।

ब्रह्म

आचार्य शङ्कर ने अद्वैत वेदान्त मे ब्रह्म को ही एक मात्र सत्य माना है ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नही है। ब्रह्म ही परमार्थिक दृष्टि से सत्य है यह निर्गुण है, निराकार है, अनिवर्चनीय है। ब्रह्म व्यक्तित्व रहित है। ब्रह्म अद्वैत मात्र है उसमे किसी प्रकार का द्वैत नही है। ब्रह्म सच्चिदानन्द है अर्थात् सत् चित और आनन्द स्वरुप है। ब्रह्म को आनन्द स्वरूप मानने से वह सगुण नही बन जाता है। सत् कहने से वह असत् नही है। चिद् है अचित् नही है। ब्रह्म शून्य नही है, निर्गुण है। अपरोक्ष अनुभूति द्वारा ही ब्रह्म की सत्ता जानी जा सकती है।

आचार्य शङ्कर ने ब्रहम और ईश्वर मे भेद किया है। ब्रह्म के दो रूप माना है सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म। जब मायोपहित शक्ति से युक्त हो जाता है तब <u>ब्रह्म ईश्वर बन जाता है</u> इसकी व्यवहारिक सत्ता है। परमार्थिक नही। जब निर्गुण तथा निराकार ब्रह्म को विचार का विषय बनाते है तब वह ईश्वर रूप मे जाना जाता है।

---

[1] आचार्य शकर ब्रह्मसूत्र ने शाङ्भाष्य मे अध्यास का तीन लक्षण दिये है– (१) अध्यासोनाम स्मृतिरुप परत्र पूर्वदृष्टावभास (२) अन्यस्य अन्यधर्मावभासता (३) अतस्मिन तदबुद्धि।

ईश्वर को 'साविशेष ब्रह्म' भी कहा जाता है। अद्वैत वेदान्त मे ईश्वर को 'मायोपहित ब्रह्म' माना गया है अर्थात् जब ब्रह्म का प्रतिबिम्ब माया मे पडता है तब वह ईश्वर का रुप धारण कर लेता है और ईश्वर अपनी माया शक्ति से ही इस प्रपञ्च रूपी जगत की सृष्टि करता है। ईश्वर व्यक्तित्वपूर्ण है, कारण रहित है, उपासना का विषय है ईश्वर की सत्यता उसी समय तक है जब तक जीव का अज्ञान है। अद्वैत वेदान्त मे ईश्वर को जगत का उपादान तथा निमित्त कारण दोनो माना गया है। सृष्टि ईश्वर का स्वाभाविक गुण है और इस सृष्टि के पीछे ईश्वर का कोई प्रयोजन या उद्देश्य नही होता। ईश्वर की तीन अवस्थाओ का वर्णन क्रमश ईश्वर, हिरण्यगर्भ तथा वैश्वानर नाम से किय गये है। माया की क्रिया प्रारम्भ होने से पहले ईश्वर होता है किन्तु माया की सक्रियता की स्थिति हिरण्यगर्भ की होती है और जब स्थूल पदार्थो की रचना करता है, तब ईश्वर से पूर्ण रूप से विकसित अवस्था को 'वैश्वानर' या 'विराट' भी कहा जाता है।

ईश्वर और जीव की सत्ता व्यवहारिक है ईश्वर शासक है जीव शासित है। ईश्वर ही जीव को उसके अच्छे–बुरे कर्मो का फल देता है। जीव भोक्ता है ईश्वर इससे परे है। आत्मा और ब्रह्म मे कोई अन्तर नही है दोनो अभिन्न है जब इस तत्त्व को आत्मनिष्ठ दृष्टि से देखा जाता है तब इसे आत्मा कहा जाता है और जब वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देखा जाता है तब वह 'ब्रह्म' कहा जाता है। अज्ञानता के कारण ही जीव अर्थात् आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान नही पाता है। 'तत्वमसि' आत्मा तथा ब्रह्म की एकता को प्रतिपादित करता है। जब 'तत्त्वमसि' वाक्य की परिणति 'अह ब्रह्मास्मि' महावाक्य मे हो जाती है तब उसे ब्रह्मज्ञान की अनुभूति होती है।

बन्धन और मोक्ष

आचार्य शड्कर ने स्पष्ट करते हुये कहा है कि बन्धन और मोक्ष की कोई वास्तविक सत्ता नही होती है। इसकी केवल व्यवहारिक सत्ता है। आत्मा का शरीर एव

मन आदि के साथ तादात्मय स्थापित कर लेना ही बन्धन है। शरीर की अनुभूतियो को आत्मा की अनुभूति मान लेना ही 'बन्धन' है। यद्यपि आत्मा नित्य, शुद्ध, चैतन्य, मुक्त तथा अविनाशी है। आत्मा का बन्धन नही होता है जीव अज्ञानता के कारण आत्मा को जान नही पाता है और ज्ञान के अभाव मे बन्धनग्रस्त हो जाता है।

अविद्या या अज्ञान का नष्ट हो जाना ही मोक्ष है। शड्कर के मतानुसार आत्मा स्वभावत मुक्त है। उसे 'बन्धन' की प्रतीति केवल अज्ञानता के कारण ही होती है। मोक्ष कोई नई चीज नही होती है। आचार्य ने 'मोक्ष' को 'प्राप्तस्य प्राप्ति' कहा है। अर्थात् वास्तविक स्वरूप का ज्ञान ही मोक्ष है। मोक्ष प्राप्ति की व्याख्या वेदान्त दर्शन मे एक उपमा से दी गयी है जिस प्रकार कोई रमणी अपने हार को गले मे पहनकर भूल जाती है और इधर–उधर ढूढती है उसी प्रकार आत्मा मोक्ष के लिये सदा प्रयत्नशील रहती है। मोक्ष दो प्रकार की मानी गयी है –

(१) **सदेह मुक्ति** – जीवन मुक्ति की अवस्था होती है क्यो कि पूर्व कर्मो के सस्कार के कारण ही शरीर विद्यमान रहता है। यथा– कुलाल चकवत।

(२) **विदेह मुक्ति**– जब पूर्व कर्मो का सस्कार भी समाप्त हो जाता है तब देहपात हो जाता है यह विदेह मुक्ति है।

मोक्ष प्राप्ति के उपायो मे आचार्य शड्कर ने 'साधनचतुष्टय' का उल्लेख किया है 'साधनचतुष्टय' का विवरण निम्नलिखित है –

१. नित्यानित्यवस्तुविवेक नित्य, अनित्य का भेद जानना साधक को आवश्यक है।

२ इहामुत्रार्थफलभोगविराग साधक को लौकिक और पारलौकिक भोगो की कामना को छोड देना चाहिये।

३. शमदमादिसाधनसम्पत साधक को छ साधन अपनाना होता है–

१ शम से आशय है मन को सयमित करना।

२ दम से आशय है– इन्द्रियो को वश मे करना।

३ श्रद्धा से तात्पर्य है– शास्त्रो के प्रति पूर्ण निष्ठा।

४ समाधान –चित्त को ज्ञान के साधन मे लगाया जाता है।

५ उपरति– साधक विक्षेपकारी कार्यो से अपने को अलग करता है।

६ तितिक्षा– शीतोष्ण–द्वन्द सहन करने की शक्ति।

(४) मुमुक्षुत्त्व– साधक को मोक्ष की प्राप्ति के लिये दृढ ससकल्प रहना चाहिये। साधन चतुष्टय के अनन्तर साधक को श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना चाहिये। मोक्ष की अवस्था मे जीव– ब्रहम मे लीन हो जाता है।

श्रौत दर्शन और गीता

वेद और दर्शन

सस्कृत मे वेद शब्द का अर्थ 'ज्ञान' है क्योकि यह ज्ञानार्थक 'विद्' धातु से निष्पन्न हुआ है। 'विद्' धातु करण अर्थ मे 'धञ्' प्रत्यय लगाने पर 'वेद' बनता है।

विद् धातु के चार अर्थ होते है– ज्ञान, सत्ता, लाभ, विचारण। अत जिसके द्वारा सभी मनुष्य समग्र विद्याओ को जानते हैं, प्राप्त करते है, विचार करते है और विद्वान होते है, वह वेद है– 'विद् ज्ञाने सत्तायाम् लाभे विद् विचारणे। एतेभ्यो हलश्च इति सूत्रेण करणाधिकरण कारकयोर्घञ् प्रत्यये कृते वेद शब्द साध्यते।'

ज्ञान किसी भी विषय का हो सकता है सभी भौतिक–आध्यात्मिक विषय ज्ञान के विषय है अर्थात् ज्ञेय है तथा समस्त ज्ञेय का आधार ही वेद है। इसी कारण प्राय सभी विषयो का वर्णन वेद मे उपलब्ध होता है। वेद शब्द, अलौकिक ज्ञान इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट का परिहार है।[१] इस अलौकिक ज्ञान का एकमात्र साधन वेद ही है। अत वेद शब्द अलौकिक ज्ञान का वाचक है। कुछ विद्वानो के अनुसार वेद शब्द धर्म का वाचक है, कुछ विद्वानो के अनुसार धर्म का ज्ञान जिससे प्राप्त हो वही वेद है। 'विदन्त्यनेन धर्म वेद' (अ० कोष टीका १/५/३)।

वेद विश्व साहित्य की सबसे प्राचीन रचना है यह प्राचीनतम मनुष्य के धार्मिक और दार्शनिक विचारो का मानव भाषा मे सर्वप्रथम परिचय प्रस्तुत करता है। डा० राधाकृष्णन ने कहा है कि "वेद मानव मन से प्रादुर्भूत ऐसे नितान्त आदिकालीन प्रामाणिक ग्रन्थ जिन्हे हम अपनी निधि समझते है।"[2] **आचार्य बलदेव उपाध्याय ने**

---

[१] अलौकिक पुरूषार्थोपाय वेत्ति अनेन इति वेद शब्द निर्वचनम——— इष्टप्राप्त्यनिष्ट परिहारयोर लौकिकमुपाय यो ग्रन्थो वेदयति सवेद ।। तै० भा० भू० सम्पा० वल्देवउपा० पृ० २ ऋ० भा० भू० सम्पादक– वल्देवप्रसाद पृ० ४५

[2] The vedas are earliest document of the human mind that we possess–indian philosophy vo/i (p-63)

द्वितीय—अध्याय

लिखा है कि "वेद भारतीय धर्म तथा दर्शन का प्राण है भारतीय धर्म मे जो जीवनशक्ति दृष्टिगोचर होती है उसका मूलकारण वेद ही है।

वेद अक्षय विचारो का मानसरोवर है, जहा से विचारधारा प्रवाहित होकर भारत भूमि के मस्तिष्क के उर्वर बनाती हुई निरन्तर बहती है तथा अपनी सत्ता के लिये उसी उद्गम भूमि पर अवलम्बित रहती है। ये भारतीय साहित्य के ही सर्वप्रथम ग्रन्थ नही है प्रत्युत् मानवमात्र के इतिहास मे इनसे बढकर प्राचीन ग्रन्थ की अभी तक उपलब्धि नहीं हुई है।"[1] वेद की रचनाकाल का निर्धारण बडी कठिन समस्या रही है।

मैक्समूलर ने १८८६ मे प्रकाशित 'हिस्ट्री ऑफ एन्शिएण्ट सस्कृत लिटरेचर' नामक अपने ग्रन्थ मे उपरितम समयसीमा १२०० ई० पूर्व स्वीकार किया है जो अधिकाश पश्चिमी विद्वानो को भी मान्य है। हॉग ने २४०० ई० पूर्व और बालगगाधर तिलक तथा याकोवी ने ज्योतिष के आधार पर क्रमश ६००० वर्ष तथा ४५०० वर्ष ईसा पूर्व से वैदिक युग का आरम्भ माना। यदि हम वेदो के रचयिता को जानने का प्रयास करे तो निराश ही होना पडेगा क्यो कि इनका रचयिता कोई नही है। वेद मे उस सत्य का वर्णन है जिसका दर्शन कुछ मनीषियो को हुआ था। इन्हे 'देववाणी' के रूप मे भी माना जाता है इसलिये ये 'श्रुति' कहलाते है। समस्त वैदिक साहित्य मौलिक परम्परा से ही प्राप्त है, इसलिये 'श्रुति' शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है। भारतीय परम्परा वेदो को 'अपौरूषेय' मानती रही है। मत्रदृष्टा ऋषियो ने इसका प्रणयन न करके इसका साक्षात्कार किया है। वेद के विविध पर्यायवाची शब्द हैजैसे श्रुति, आम्नाय, त्रयी, छन्द आगम और निगम। श्रुति का सम्बन्ध सुनने से है। यज्ञो मे मत्रो का व्यवहार होता था और वही व्यवहार श्रवण परम्परा से व्यापक हो जाता था। वाचस्पति मिश्र का कहना है– "गुरूमुखादनुश्रूयते इत्यनुश्रवो वेद ।" (साङ्ख्यतत्त्व कौमुदी – २)

---

[1] बलदेव उपा० – भा० दर्शन – पृ० २७

वेदो के लिये 'आम्नाय' शब्द भी प्रयुक्त किया गया है। मीमासा सूत्र मे वेद को मत्रब्राह्मणात्मक माना गया है यही 'आम्नाय' का भी स्वरूप है। अत वेदही आम्नाय है। अमरकोष मे कहा गया है कि– "श्रुति त्रयीवेद आम्नायस्त्रयी।" (अ० कोष० १,६,३)

वेद को 'त्रयी' शब्द से भी अभिहित किया गया है 'त्रयी' से तात्पर्य विविधरूप है, मत्र के तीन प्रकार है ऋक्, साम और यजुष। इसे ही 'त्रिविध सहिता' के नाम से भी जाना जाता है। कही वेद के लिये 'छन्द' शब्द का भी प्रयोग किया गया है। 'छन्द' के अनेक अर्थ है जिसमे एक 'पूजा' भी है। अर्थात् जिसके द्वारा देवताओ की स्तुति, 'पूजा' की जाती है वे छन्द है या वेद है। वेद को 'स्वाध्याय' भी कहा गया है क्योकि तीनो वर्णो के लिये स्वाध्याय का एकमात्र विषय वेद माना गया है। वेद के दो विभाग है– मत्र तथा ब्राह्मण– "मत्रब्राह्मणात्मको वेद।" (आप० परि० ३१)

वेद किसी एक ग्रन्थ का नही अपितु एक पूरी साहित्य राशि का नाम है जिसके चार भाग है– सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद। सहिताए चार है– ऋक् सहिता, यजुष सहिता, साम सहिता और अथर्व सहिता। इनका सकलन यज्ञानुष्ठान की दृष्टि से किया गया है। यज्ञ यागादि के विधिपूर्वक अनुष्ठान के लिये क्रमश चार ऋत्विजो की आवश्यकता होती है। होता, जो स्तुति मत्रो के उच्चारण से देवताओ का आह्वान करता है उद्गाता मधुर स्वर से मत्रगान करता है अध्वर्यु यज्ञ के विविध अगो का सविधि सम्पादन करता है तथा ब्रह्मा सम्पूर्ण यज्ञानुष्ठान का विधिवत् निरीक्षण करता है।

ऋक् सहिता– ऋक् सहिता १०२८ सूक्तो का सकलन है इसमे सूक्त दस मण्डलो मे रखे गये है और इसका अन्य विभाजन 'अण्टको' मे भी किया गया है। परम्परा के अनुसार इसके द्वितीय मण्डल से सातवे मण्डल तक के ऋषि ग्रत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज और वसिष्ठ है। ऋग्वेद मे उन मत्रो का सग्रह है जो देवताओ की स्तुति के निमित्त गाये जाते है। पतञ्जलि ने ऋग्वेद की २१ शाखाओ

का उल्लेख किया है– 'एक विशतिधा बाहन्वृच्यम' (महा० आह्निक–१) इनमे से पाच शाखाओ का नाम या साहित्य उपलब्ध होता है– १–शाकल, २–वाण्कल, ३–आश्वलायन, ४–शाखायन, ५–माण्डूकायन। शाकल शाखा ही ऋगवेद की सम्प्रति प्रचलित शाखा है तथा वाण्कल की सहिता अप्राप्त है।

ऋग्वेदीय देवता के सम्बन्ध मे शासक ने निरूक्त (अध्याय ७–१२) दैवत काण्ड मे वैदिक देवताओ पर पर्याप्त विवेचन प्रस्तुत किया है। यास्क ने ऋग्वेदीय देवो को तीन भागो मे विभक्त किया है– १–पृथ्वीस्थानीय–इसके अन्तर्गत अग्नि को। २–अन्तरिक्ष स्थानीय– इसके अन्तर्गत इन्द्र या वायु, ३–द्युस्थानीय– इसके अन्तर्गत सूर्य का वर्णन किया गया है, इसके अतिरिक्त अन्य सभी देव इनके सहयोगी है या इनसे सम्बद्ध है। 'त्रिस एव देवता इति नैरूक्ता'। अग्निपृथिवीस्थान। वायुर्वेन्द्रो वाड्न्तारिक्षस्थान। सूर्यो द्युस्थान। (निरूक्त ७–५)

यजुर्वेद– यजुर्वेद के 'यजुस' शब्द की कई व्याख्याए है जो मुख्य अर्थ है– १–यजुर्यजते अर्थात् यज्ञसम्बन्धी मत्रो को यजुस् कहते है। २– इज्यते अनेन इति यजु– जिन मत्रो से यज्ञ–यागादि किये जाते है।

'अनियताक्षरावसानो यजु'– जिन मत्रो मे पद्यो के तुल्यअक्षर सख्या निर्धारित नही है। ४– शेषे यजु शब्द (पूर्वमी० २/१/३७) पद्यबन्ध और गीति से रहित मत्रात्मक रचना को "यजुष्" कहते है। यजुर्वेद के दो मुख्य भाग है– १ शुक्ल यजुर्वेद, २ कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेद को ही माध्यान्दिन एव वाजसनोरि भी कहते हे। शुक्ल से तात्पर्य है कि इसके मत्र विशुद्धरूप है और कृष्ण यजुर्वेद मे मत्रो के साथ ही व्याख्या और विनियोग का अश भी मिश्रित है अतेव इसे 'कृष्ण यजुर्वेद' कहते हे। महर्षि पतञ्जलि ने 'एकशतमध्वर्युशाखा' (महाआह्निक १) अर्थात् यजुर्वेद की १०० शाखाओ का

उल्लेख किया है। कृष्ण यजुर्वेद की दो शाखाए है जिनकी दो सहिताए उपलब्ध होती है– १ माध्यान्दिन या वाजसनेयि सहिता– इसमे ४० अध्याय हैं और १६७५ मत्र है।

काण्व सहिता– इसमे ४० अध्याय हैं और मत्र २०८६ है। कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखाए है जिनकी चार सहिताए उपलब्ध होती है १–तैत्तरीय, २–मैत्रायिणी, ३–काठक, ४– कपिष्ठकन्कठ सहिता।

सामवेद– 'सामन्' का वास्तविक अर्थ 'गान' है ऋग्वेद के मत्र जब विशिष्ट गान पद्धति से गाये जाते है तो उनको सामन् (साम) कहते है। अतएव पूर्वमीमासा मे गीति या गान को साम कहा गया है– 'गीतिषुसमाख्या (पूर्व० २/१/३६) महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य मे 'सहसृवर्त्मा सामवेद' (आह्निक १) कहा है। इससे तात्पर्य है कि समावेद की एक सहस्र शाखाए थी किन्तु यह मत सर्वथा समीचीन नही है। समावेद की मुख्य रूप से तीन शाखाए १–कौथुमीय, २–जैमिनीय या तवल्कार, ३–राणयनीय।

सामवेद की मत्रसख्या १८७५ हैं इसमे ऋग्वेद की मत्र सख्या १७७१ है इस प्रकार सामवेद मे १०४ मत्र केवल नये है। सामवेद का मुख्यरूप से प्रतिपाद्य विषय उपासना है। इसमे मुख्यरूप से सोमयाग से सम्बद्ध मत्रो का सकलन है। पूर्वार्चिक मे अग्नि, इन्द्र ओर पवमान सोम से सम्बद्ध मत्र दिये गये है। इन मत्रो मे सामगान की दृष्टि से प्रत्येक मत्र की लय स्मरण करनी होती है, जिनका प्रयोग उत्तरार्चिक मे होता है। यज्ञो के समय इन मत्रो का उद्गाता गान करता है।

४– अथर्ववेद– निरूक्त और गोपथ ब्राह्मण मे 'अर्थवन्' शब्द के दो निर्वचन दिए है [1] अथर्वन– गतिहीन या स्थिरता से युक्त योग। निरूक्त के अनुसार 'थर्व' धातु गत्यर्थक है अत अथर्वन्– गतिहीन या स्थिर। इसका अभिप्राय है जिसमे चित्तवृतियॉ के निरोधरूपी योग का उपदेश है। गोपथ ब्राह्मण मे 'अथर्वा' शब्द अथार्वाक् का सक्षिप्त

---

[1] अथर्वाणोऽथर्वणवन्त थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेध (निरूक्त ११–१८)।

रूप माना है 'अथ'—अर्वाक् त्र अथर्वाक्, अथर्वा। गोपथ ने इसका अभिप्राय दिया है— 'समीपस्थ आत्मा को अपने अन्दर देखना या जिस वेद मे आत्मा को अपने अन्दर देखने की शिक्षा है।'[1] अथर्ववेद को अगिरस वेद, ब्रह्मवेद, क्षत्रवेद, भैषज्यवेद, छन्दोवेद, महीवेद, आदि विविध नामो से जाना जाता है।

महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य मे 'नवधाऽऽथर्वणोवेद वेद (महा० भा० १) कहकर ६ शाखाओ का उल्लेख किया है। किन्तु इनमे से केवल दो शाखाओ अर्थात् शौनक और पैप्पलाद की ही सहिताए उपलब्ध हैं।

अथर्ववेद कई दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है—

१ यह वैदिक दर्शन का सबसे पुष्ट एव प्रामाणिक स्रोत है। आरण्यक, उपनिषद आदि मे प्राप्य दार्शनिक चिन्तन अथर्ववेद का ही विकसित रूप है।

२ सभ्यता और सस्कृति की दृष्टि से अथर्ववेद चारो वेदो मे सबसे अधिक उपयोगी है।

३ अथर्ववेद मे तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का सबसे सुन्दर वर्णन है।

४ यह सार्वजनिक या जनता का वेद है। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एव स्त्रियो आदि के द्वारा समान रूप से सेव्य है।

५ "साहित्य समाज का दर्पण है" इस उक्ति का यह सर्वोत्तम निदर्शन है। अथर्ववेद के ऋषि को "ब्रह्मा" कहा गया है।

वेद में दार्शनिक प्रवृत्तियाँ

ऋग्वेद मे जगत् तथा जीवन के रहस्यो को जानने का प्रयास किया गया है। जगत् के निजी स्वरूप को जानने की आकाक्षा वैदिक ऋषियो के स्वभाव का अग प्रतीत होता है।

---

[1] अथअर्वाग एन — अन्विच्छेति तद्यद्बृबीद् अथर्वासडेतमेता नमे तास्वप्वान्विच्छेति तदथर्वाऽभवत्। (गोपथ १–४)

प्रो० एच०पी० सिन्हा ने "भारतीय दर्शन की रूपरेखा" नामक अपनी पुस्तक मे लिखा है– "जगत के अतिरिक्त वे विभिन्न देवताओ के बारे मे जिन्हे वे पूजते है, शका करना आरम्भ करते है इन प्रवृत्तियो के फलस्वरूप दार्शनिक विचार का प्रारम्भ होता है, जिसका पूर्ण विकास उपनिषदो के दर्शन मे दीखता है।"

डा० राधाकृष्णन ने ऋग्वेद के सूक्तो को दार्शनिक प्रवृत्ति का परिचायक कहाहै, उन्होने कहा है– "ऋग्वेद के सूक्त इस अर्थ मे दार्शनिक है कि वे ससार के रहस्य की व्याख्या किसी अतिमानवीय अन्तर्दृष्टि अथवा असाधारण दैवी प्रेरणा द्वारा नही किन्तु स्वतत्र तर्क द्वारा करने का प्रयत्न करते है।"

ब्रह्म के सर्वव्यापी होने की महत्वपूर्ण कल्पना का वर्णन अनेक सूक्तो मे मिलता है इसका उल्लेख पुरूष सूक्त (१०/६०) मे तथा अदितिसूक्त (१/८६) मे मिलता है। वह हजार मस्तक हजार ऑखो तथा हजार पैर वाला 'पुरूष' चारो ओर से इस पृथ्वी को घेर कर परिणाम मे दस अगुल अधिक है।

डा० कपिलदेव द्विवेदी ने अपनी पुस्तक सस्कृत सा० का समीक्षा इतिहास मे लिखा है कि– "ऋग्वेद मे दार्शनिक तत्व पर्याप्त मात्रा मे मिलता है इसमे देवो का स्वरूप, ब्रह्म, ईश्वर, जीव, प्रकृति, सृष्टि की उत्पत्ति, पाप–पुण्य, लोक–परलोक, मोक्ष–पुनर्जन्म आदि का वर्णन है। प्राकृतिक तत्व सूर्य, चन्द्र, वायु, मेघ विद्युत आदि का इन्द्र, वरूण, रूद्र, मरूत् आदि नामो से वर्णन किया गया है। कुछ अमूर्त भावो को भी देवता का रूप दिया गया है जैसे काम, श्रद्धा, मन्यु आदि। ईश्वर को एक सर्वोच्च सत्ता माना गया है और इन्द्र, मित्र, वरूण आदि उसी के विविध नाम बताए गये है। प्रत्येक देव के कुछ सामान्य गुण एव विशेषण है तथा उनके कुछ विभेदक गुण भी है।

सामान्य गुणो के आधर पर– 'एक सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यम मातरिश्वामाहुः (ऋ० १/१६४/४६) मे एक ईश्वर की सत्ता काप्रतिपादन है।'[1]

'बलदेव उपाध्याय' ने अपनी पुस्तक 'भारतीय दर्शन' मे लिखा है 'जो कुछ समय वर्तमान है, जो कुछ उत्पन्न हुआ है (भूतकाल में) तथा जो कुछ उत्पन्न होने वाला है (भविष्यकाल मे) वह सब पुरूष ही है– "पुरूष एवेद सर्व यद् भूतं यच्च भाव्यम्।"

वेद मे सर्वेश्वरवाद के सिद्धान्त का भी वर्णन है– अदिति सूक्त मे वर्णित है कि– अदिति ही आकाश है, अदिति ही अन्तरिक्ष है, अदिति ही माता है, अदिति पिता है, तथा पुत्र है तथा अदिति समस्त देवता है, अदिति पञ्चजन (निषाद सहित चतुर्वर्ण) जो कुछ उत्पन्न है तथा जो कुछ उत्पन्न होने वाला हे वह सब अदिति ही है।[1]

उच्छिष्ट सूक्त मे 'उच्छिष्ट' से तात्पर्य– बचा हुआ, शेष पदार्थ। दृश्यप्रपञ्च के निषेध करने के अनन्तर जो अवशिष्ट रहता है वही 'उच्छिष्ट' है अर्थात बाधारहित परब्रह्म। ब्रह्म के इसी स्वरूप की अभिव्यक्ति के उपनिषद मे की अभिव्यक्ति के लिये बृहदारण्यक उपनिषद् ब्रह्म को 'नेति–नेति' पुकारता है। यथा– 'अथ आदेशोनेति नेति'– (बृहदाण्यक उपनिषद २/३/११) नेहनानास्ति, किञ्चन – वही, (४/२/२१)

इस नामरूपात्मक जगत के सभी नानाविधि पदार्थ उच्छिष्ट पर अवलम्बित है। इस प्रकार उपनिषदो मे ब्रह्मतत्व तथा ब्रह्मात्मैक्यवाद का मुख्येरूप से वर्णन हुआ है। इस विवेचन को पढकर गीता के– "वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य" तथा "आदावन्र्त च मध्ये च हरि सर्वत्रगीयते" पुराण के इस वाक्य मे किञ्चित सन्देह नही रह जाता है। पुरूष सूक्त (ऋ० १०/६०) मे विराट पुरूष से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। ऋग्वेद का नासदीय सूक्त (१०/१२६) मे भी सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। यह सूक्त आध्यात्मिक दृष्टि से अद्वैत भावना को ही पुष्ट करता है। इस सूक्त के ऋषि के सामने

---

[1] डा० कपिलदेव द्विवेदी– सस्कृत सा० का समीक्षा० इतिहास– पृ० ४८

इस विश्व की उत्पत्ति की विषम पहेली विद्यमान थी। यह विश्व कहा से उत्पन्न हुआ है? इसके मूल मे कौन सा तत्व विद्यमान था? किस वस्तु की उत्पत्ति सर्वप्रथम हुई? आदि प्रश्नो का समुचित उत्तर देना सरल काम नही है परन्तु इस सूक्त मे इन्ही प्रश्नो का उचित उत्तर अन्तर्दृष्टि की सहायता से प्रस्तुत किया गया है।

हिरण्यगर्भ सूक्त (ऋग्वेद १०/१२१) मे हिरण्यगर्भ प्रजापति से सृष्टि रचना का वर्णन है। ऋग्वेद मे जल से भी जगत् की उत्पत्ति वर्णित है तथा ऋग्वेद (१०–७२, २–३) मे असत् से सत् की उत्पत्ति भी बताई गयी है (देवाना पूर्व्ये युगेऽसत सदजायत, मत्र २)।

सृष्टि के आदिकाल मे न तो असत् ही था और न तो सत् ही था वहा न तो आकाश था, न तो स्वर्ग ही विद्यमान था जो उससे परे है। किसने ढका था? यह कहा था? और किसकी रक्षा मे था? क्या उस समय गहन तथा गभीर जल था, उस समय न मृत्यु थी और न तो अमरत्व ही था उस समय दिन तथा रात का पार्थक्य न था। इतने निषेधो के वर्णन के अनन्तर ऋषि सत्तात्मक वस्तु का वर्णन कर रहा है कि बस एक ही था, जो वायुरहित होकर भी अपने सामर्थ्य से श्वास ले रहा था। इससे अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु थी ही नही। इस प्रकार नासदीय सूक्त प्रेरित एकत्व की भावना के लिये और अपने दार्शनिक विचार के कारण विद्वानो मे सर्वाधिक प्रशसित हुआ है–

"नासदासीन्नौ सदासीत् तदानी नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्।
किमा वरीव कुह कस्य शर्मन्नम्भ, किमासीद् गहन गभीरम्।।
न मृत्युरासीदमृत न तर्हि न रात्र्याअह्न आसीतप्रकेट ।
आनीदवात स्वधया तदेक तस्माद्धान्यन्न पर किञ्चनास।।"

(ऋ० सहिता १०/१२६)

वैदिक ऋषियो ने उस परमतत्व के लिये "तदेकम्" शब्द प्रयुक्त किया है ऐसा लिगनिर्धारण करने मे असमर्थ होने के कारण किया होगा, तथा उस मूलतत्व के लिये तत् तथा सत् शब्दो का प्रयोग किया है। वही इस जगत का मूलकारण है उसी से इस जड जगत की चेतन और अचेतन वस्तुओ की उत्पत्ति हुई है, वह एक है, अद्वैत है, अद्वितीय है, अग्नि, मातरिश्वा, यम आदि देवता उसी के भिन्न रूप को धारण करने वाले है, वह एक है, परन्तु कवि लोग उसे भिन्न२ नाम से पुकारते है–

'इन्द्रमित्र वरूणमग्निवाहुरथो दिव्य स सुपर्णोगरूत्मान्
एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्नि यमं मातरिश्वानमाहु ।।'

(ऋग्वेद १/१६४/४६)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि देवताओ का वास्तविक सार एक ही है– 'मद् देवानाम् सुरत्वमेकम्'। वेद मे अनेकेश्वरवाद से हीनोथीज्म और फिर एकेश्वरवाद की ओर विकास हुआ है।

वैदिक दार्शनिक विचारधारा मे कर्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। अनेक वैदिक मत्र इस बात का अनुमोदन करते है कि शुभ कर्मो के द्वारा अमरत्व को प्राप्त किया जा सकता है। जन्म एव पुनर्जन्म का कारण भी व्यक्ति के कर्म ही है क्योकि व्यक्ति जैसा अच्छा या बुरा कर्म करता है उसी के अनुरूप शुभ या अशुभ फल प्राप्त करता है। ऋग्वेद के एक मत्र के अनुसार पूर्व जन्म के दुष्ट कर्मो के परिणामस्वरूप व्यक्ति पाप कर्म की ओर उन्मुख होता है। (ऋग्वेद ७–८६–६) वैदिक मत्रो मे प्रारब्ध और सचित कर्मो का भी उल्लेख मिलता है। व्यक्ति को अपने पूर्व जन्मो के निम्न कर्मो को भोगने के लिये वृक्ष, लता, स्थावर तथा अन्य जीवो का जीवन भी भोगना पड सकता है। वेद के दो खण्ड है १–ज्ञानकाण्ड, २– कर्मकाण्ड

ज्ञानकाण्ड मे आध्यात्मिक चिन्तन प्रधानरूप से वर्णित है और कर्मकाण्ड मे उपासनाओ का विचार निहित है। कर्मकाण्ड मे यज्ञ की महत्ता पर बल दिया गया है इसमे अधिकार भेद का भी वर्णन निहित है क्योकि सभी काम सभी को करने का अधिकार नही है और यदि अधिकार के बिना कोई काम किया जाय तो विघ्न उत्पन्न होता है और प्रयत्न सफल नही होता है। वेद मे तपस्याए, स्तुतिया पवित्र विचार और अन्त करण की शुद्धि को परमतत्व की प्राप्ति के लिये अनिवार्य माना गया है।

वैदिक दर्शन का एक महत्वपूर्ण विद्धान्त- ऋत् का नियम भी है। वैदिक मान्यता है कि जिस प्रकार मानवीय जगत मे नैतिक व्यवस्था है उसी प्रकार भौतिक जगत मे भी एक प्रकार की नैतिक व्यवस्था है उसी प्रकार भौतिक जगत में भी एक प्रकार की नैतिक व्यवस्था से सम्बन्धित मुख्य नियम को ही 'ऋत् का नियम' कहा गया है।

वेद मे 'ऋत्' का विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण एव व्यापक है। 'ऋत्' नैतिक नियम है। देवता ऋत् के नियम का स्वय पालन करने वाले तथा अन्यो से कराने वाले होते है। 'ऋत्' का अर्थ है 'जगत की व्यवस्था'।

ऋत् के नियम को प्राकृत नियम (Natural Law) भी कहा गया है। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, दिन–रात इसी नियम से सचालित होते है। ऋत् का सचालक वरूण देवता को कहा गया है– ''तस्य कर्ता वरूणस्य गोप्ता''। 'ऋत्' के कारण ही स्वर्ग और नरक की वर्तमान स्थिति है। स्वर्ग और नरक के सम्बन्ध मे अस्पष्ट विचार मिलते है। स्वर्ग के सुखो को पृथ्वी के सुखो से बढकर माना गया है– स्वर्ग प्राप्ति से अमरता की प्राप्ति होगी, नरक को अन्धकारमय कहा गया है वरूण पापियो को नरक मे ढकेलता है और जीव अपने कर्मो के अनुसार ही स्वर्ग तथा नरक का भागीदार बनता है 'ऋत्' के नियम के कारण ही वर्तमान मे स्वर्ग तथा नरक की स्थिति है। 'ऋत् के नियम' मे कर्म सिद्धान्त का बीज भी अन्तर्भूत है। और कर्म सिद्धान्त की यह मूलभावना है कि जो

जैसा बोता है वैसा काटता है। अर्थात् जो जैसा कर्म करेगा उसी के अनुसार फल की प्राप्ति होगी वेद मे कर्म–पुर्नजन्म, बहुदेववाद आदि का वर्णन है। किन्तु वेद मे पुनर्जन्म का विचार अस्पष्ट है। वैदिक आर्यो को अपने जीवन से अत्यन्त प्रेम था इसका कारण यह था कि उनका जीवन आनन्दमय एव सबल था। इसका परिणाम यह हुआ कि जीव के पुर्नजन्म के सम्बन्ध मे कोई विशेष विचार की आवश्यकता नही महसूस हुई। अत पुर्नजन्म का सिद्धान्त वेद से दूर प्रतीत होता है।

वेद मे बहुदेववाद की उपासना का वर्णन मिलता है यथा– इन्द्र, सोम, वरूण, अग्नि, सविता, पूसन आदि देवता थे और इनकी उपासना के लिये अनेक स्तुतियो का सृजन हुआ है किन्तु देवताओ का व्यक्तित्व स्पष्ट नही होता है। वैदिक धर्म मूर्तिपूजक धर्म स्पष्ट नही होता है। उस समय मन्दिर नही था। वेद मे मानव का ईश्वर के साथ सीधा सम्पर्क स्पष्ट होता है देवताओ को मनुष्य का मित्र समझा जाता है।

ब्राह्मण

सहिता के पश्चात के वैदिक साहित्य को ब्राह्मण कहते है। वेद के दो प्रमुख अग हैं– मत्र, ब्राह्मण मत्र भाग का कर्मकाण्ड मे विनियोग होता है, ब्राह्मण भाग मत्रो के विनियोग की विधि बताता है। यज्ञो मे मत्रो से ही आहुति दी जाती है और ब्राह्मण भाग उसकी उपयोगिता बताता है। दोनो ही एक–दूसरे के पूरक हैं।

वैदिक साहित्य मे ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदो का भी समावेश है। गौड अर्थ लेते हुये 'मत्रब्राह्मणयोरवेदानामधेयम्' (आपस्तम्ब) मत्र और ब्राह्मण को वेद कहते है, यह उक्ति प्रचलित है। ये प्राय गद्य मे लिखे गये है इसमे यज्ञ की विधियो का वर्णन है यज्ञ के अतिरिक्त अन्य धार्मिक कार्यो के ढग का भी वर्णन है। मत्र देवता का स्मारक है। मत्र बीज रूप है तथा ब्राह्मण वृक्ष रूप है। मत्र सक्षिप्त तथा ब्राह्मण रूप है। ब्राह्मणो की सहायता के बिना मत्रो का अर्थ स्पष्ट नही हो सकता है। जैसे सूत्रो

का भाष्य के बिना नही हो सकता है। आपस्तम्ब यज्ञ परिभाषा मे ब्राह्मण का लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है– 'याज्ञिक कर्मो मे प्रवृत्त करने वाल ही ब्राह्मण है'– "नास्त्येतद् ब्राह्मणोत्यत्र लक्षण विद्यतेऽथवा।" इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मण विधिरूप या विधायक रूप है क्योकि यह कर्म मे प्रवृत्त करता है। जैमिनी ऋषि के मत मे– जो मत्र नही है वही ब्राह्मण है यह ब्राह्मण का लक्षण है– अर्थात् ब्राह्मण और मत्र दोनो ही वेद है। मत्र के शेष भाग को 'ब्राह्मण' कहते है। 'नास्तीयन्तो वेदभागा इति क्लृप्तेरभावत्। मत्रश्च ब्राह्मणश्चेति द्वौ भागौ तेन मत्रत अन्यद् ब्राह्मणमित्येतद् भवेद् लक्षणम्।।' (जैमिनि न्या० मा० वि० २/१/२४–२५) इस प्रकार मत्र और ब्राह्मण दोनो का ही सम्मिलित नाम वेद है। उदाहरणार्थ ऋग्वेद का मत्र है–यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन। ते ह नाक महिमानः सचन्तयत्र पूर्वसाध्या सन्तिदेवा।। (ऋग्वेद १/१६४/५०, १०/६०/१६) इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण मत्रो के भाष्य है ब्राह्मण ग्रन्थो मे यज्ञ सम्बन्धी पूर्ण विवेचन प्राप्त होता है। ऋग्वेद के दो ब्राह्मण ग्रन्थ है– ऐतरेय और शाखायन १–ऐतरेय मे ४० अध्याय है जो आठ पञ्चको मे विभक्त है इसके रचयिता महीदास ऐतरेय माने जाते है। सप्तम पञ्चिका मे हरिश्चन्द्र की कथा का वर्णन है। २–शाखायन ब्राह्मण– ऋग्वेद का यह दूसरा ब्राह्मण है यह ३० अध्यायो मे विभक्त है इसके रचयिता कौषीतकि माने जाते है। ३–शतपथ ब्राह्मण– इसके रचयिता याज्ञवल्क्य ऋषि है। यह यजुर्वेदीय ब्राह्मण है। इसमे यजुर्वेद की दो शाखाए है– १–माध्यन्दिन तथा २– काण्व शाखा। माध्यन्दिन के अनुसार इसमे एक सो अध्याय १४ काण्डो मे विभक्त है। एक सौ अध्याय के कारण ही सभवत यह शतपथ ब्राह्मण कहलाता है। इसमे सर्वप्रथम जनमेजय का वर्णन है कालिदास के दो प्रसिद्ध नाटको की समाग्री भी इसमे प्राप्त होती है ये दो है– पुरूरवा और उर्वशी (विक्रमोवर्शीय) और शकुन्तला दुष्यन्त के पुत्र भरत का वर्णन है इसमे मनु और मत्स्य की कथा भी पायी

जाती है। ४– तैत्तरीय ब्राह्मण– यह कृष्ण यजुर्वेदीय शाखा का ब्राह्मण है इसमे तीन भाग है जिन्हे काण्ड कहते है। इसके प्रथम काण्ड मे बाजपेय, सोम, राजसूय आदि यज्ञो का वर्णन है– इसके द्वितीय काण्ड मे अग्निहोत्र, उपहोम आदि का विवरण है तृतीय काण्ड मे नक्षत्रेष्टि का वर्णन है। पुरूषमेध यज्ञ का भी वर्णन इसमे मिलता है। ५–ताण्डप ब्राह्मण– यह सामवेदीय ब्राह्मण है। सामवेद के ११ ब्राह्मणग्रन्थ प्राप्त होते है। इनमे ताण्ड्यशाखा का पचविंश ब्राह्मण मुख्य हैं। इसमे कुल २५ अध्याय हैं। इसका मुख्य वर्णित विषय सोमयाग है। ६–गोपथ ब्राह्मण– यह अथर्ववेद का एकमात्र ब्राह्मण है इसके रचयिता गोपथ ऋषि माने जाते है। इसके दो भाग हैं १–पूर्वभाग या पूर्वगोपथ, २–उत्तर भाग या उत्तर गोपथ। पूर्वभाग मे पाच प्रपाठक या अध्याय है और दूसरे मे छ अध्याय है– पूर्वभाग के वर्णित विषय मे ओकार और गायत्री का महत्व, ब्रह्मचारी के कर्तव्य, ऋत्विजो के कार्य, पुरूषमेध, अश्वमेध, अग्निष्टोम आदि का वर्णन उल्लेखनीय है। इसके उत्तर भाग मे विविध यज्ञो और उनसे सम्बद्ध आख्यायिकाओ का वर्णन है।

आरण्यक ग्रन्थ

वैदिक साहित्य मे ब्राह्मण ग्रन्थो के समान आरण्यको का भी मुख्य स्थान है। आरण्यक ग्रन्थ उपनिषदो के पूर्वरूप है सायण ने तैत्तरीय और ऐतरेय आरण्यको के भाष्य मे "आरण्यक" का अर्थ किया है– 'जो अरण्य मे पढा या पढाया जाय तो उसे आरण्यक कहते है।[1]

आरण्यको को 'रहस्य ग्रन्थ' के नाम से भी जाना जाता है।[2] इसमे आत्मविद्या, तत्व चिन्तन एव रहस्यात्मक विषयो का वर्णन है। ये आरण्यक उन लोगो के लिये था जो गृहस्थ जीवन से निवृत्त होकर वानप्रस्थ जीवन ग्रहण कर लिये थे। एकतरफ जहा ब्राह्मण ग्रन्थो का प्रतिपाद्य विषय यज्ञ है वहा आरण्यक का मुख्य प्रतिपाद्य विषय

---

[1] अरण्याध्ययनादेतद आरण्यकमितीर्यते। अरण्येतदधीयीतेत्येव वाक्य प्रलक्ष्यत।। (तैत्ति० आ० भा० श्लोक ६)
[2] गोपथ ब्राह्मण (२–१०) और बौधायन धर्मसूत्र भाष्य (२–८–३) मे रहस्य ग्रन्थ के नाम से उल्लिखित है।

आध्यात्मिक तत्त्व है। ब्राह्मण ग्रन्थो मे यज्ञानुष्ठान तथा कर्मकाण्ड को महत्व दिया गया है। आरण्यक ग्रन्थो मे दार्शनिक विचार एव ज्ञानकाण्ड को महत्वपूर्ण माना गया है। भेद होते हुये भी अभेद मुख्य रूप से है क्योकि ब्राह्मण ग्रन्थो मे केवल कर्मकाण्ड का ही अनुष्ठान नही है और आरण्यको मे यज्ञ के अनुष्ठान को निषिद्ध नही बतलाया गया है अत दोनो मे अधिक भेद नही है। वेद के कर्मकाण्डीय ग्रन्थ बतलाते है कि कुछ कृत्य एव पाठ ग्राम के बाहर वन मे ही अनुष्ठेय है परन्तु ऐसे पाठ एव कृत्य केवल आरण्यको मे ही नही अपितु सहिता तक मे वर्तमान है।

ऋग्वेद के दो आरण्यक ग्रन्थ प्राप्त होते है १–ऐतरेय और शाखायन। शुक्ल यजुर्वेद का कोई आरण्यक नहीं प्राप्त होता है। कृष्ण यजुर्वेद के दो आरण्यक मिलते है १–तैत्तिरीय आरण्यक, २–मैत्रायिणी आरण्यक।

सामवेद के भी दो आरण्यक् १– तवल्कार और २–छान्दोग्य प्राप्त होते है। अथर्ववेद का कोई भी आरण्यक ग्रन्थ उपलब्ध नही है।

उपनिषदो का दर्शन

उपनिषद (सक्षिप्त परिचय)– उपनिषद् वेद के अन्तिम भाग होते है इसलिये इन्हे 'वेदान्त' भी कहा जाता है। उपनिषदो मे आध्यात्मिक विद्या के गूढतम रहस्यो का विशद् विवेचन किया गया है। हिन्दू दर्शन मे तीन प्रस्थान ग्रन्थ हैं– उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र। इसी प्रस्थानत्रयी पर भारतीय वैदिकधर्म तथा दर्शन अवलम्बित है परन्तु गीता तथा ब्रह्मसूत्र के उपनिषदो पर आश्रित होने के कारण उपनिषदो का महत्व सबसे अधिक है।

'उपनिषद' शब्द 'उप' तथा 'नि' उपसर्ग 'सद्' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय जोडने पर निष्पन्न हुआ है। 'सद्' का एक अर्थ 'बैठना' होता है अर्थात् 'शिष्य का गुरू के निकट

उपदेश के लिये श्रद्धापूर्वक बैठना'। कई उपनिषदो से यह मालूम होता है कि रहस्यात्मक इसलिये था जिससे कि अपात्र के कान मे न पडने पाये।

श्री शङ्कराचार्य ने तैत्तिरीय 'उपनिषद्' के भाष्य मे 'उपनिषद्' शब्द का अर्थ 'ब्रह्मज्ञान' बतलाते है। इस ब्रह्मज्ञान से ही मनुष्य को जन्म और मरण के बन्धन से मोक्ष प्राप्त होता है इस मोक्ष का ज्ञान ही ब्रह्मज्ञान है।

उपनिषद् का सद् धातु तीन अर्थो मे प्रयुक्त किया जाता है– १–विशरण– नाश होना, २–गति–प्राप्त होना, ३–अवसादन– शिथिल करना।

'आचार्य बलदेव उपाध्याय' ने भारतीय दर्शन मे लिखा है कि ''उपनिषद् का अर्थ अध्यात्मविद्या है। जिस विद्या के अध्ययन से दृष्टानुश्रविक विषयो से वितृष्ण मुमुक्षजनो की ससार बीजभूत अविद्या नष्ट हो जाती है और जो विद्या उन्हे ब्रह्म की प्राप्ति करा देती है तथा जिसके परिशीलन से गर्भवासादि दु खवृन्दो का सर्वदा शिथिलीकरण हो जाता है, वही अध्यात्मविद्या उपनिषद है''।[1] उपलब्ध उपनिषदो की सूची का विवरण मुक्तिकोपनिषद् से प्राप्त होता है।

साधारणत उपनिषदो की स० १०८ तक मानी जाती है। इनमे से लगभग दस उपनिषदे मुख्य है– ईश, केन, प्रश्न, कठ, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, मुण्डक, छान्दोग्य और बृहदारण्यक। उपनिषद गद्य और पद्य दोनो मे है। उपनिषदो का रचयिता कोई व्यक्ति विशेष नही है क्योकि एक ही उपनिषद मे कई शिक्षको का नाम आता है जिससे यह सिद्ध होता है कि उपनिषद् एक लेखक की कृति नही है।

उपनिषद् दार्शनिक और धार्मिक विचारो से भरे है दार्शनिक पक्ष ही उपनिषद् कीअनमोल निधि है। विषय की दृष्टि से सम्पूर्ण वेदो को तीन भागो मे विभाजित किया जाता है– कर्म, उपासना, ज्ञान। कर्म का विषय संहिता और ब्राह्मण है। उपासना का

---

[1] बल्देव उपा०– भा० दर्शन– पृ० ३७

विषय सहिता और आरण्यक है– ज्ञान के विषय का प्रतिपादन करने वाले उपनिषदे है यह ज्ञान ब्रह्मज्ञान है या आत्मज्ञान है यही मोक्ष का साधन है। उपनिषदो मे अद्वैत श्रुति, विशिष्टाद्वैत श्रुति तथा द्वैत श्रुतियो का सद्भाव है इसे कोई भी विद्वान अस्वीकार नही कर सकता है। श्री शड्कराचार्य ने उपनिषदो पर भाष्य लिखकर उनमे अद्वैत का ही प्रतिपादन किया है। श्री रामानुजाचार्य ने स्वय उपनिषदो पर भाष्य नही लिखा है माधवाचार्य के प्रतिपादन का मुख्य तात्पर्य ब्रह्म तथा आत्मा की भिन्नता (द्वैत) के प्रतिपादन मे है।

उपनिषद् सभी भारतीय दर्शनो के मूल स्रोत है जो भारतीय दर्शन वेद प्रामाण्य को मानते है वे सभी उपनिषदो को वेद प्रामाण्य को मानते है वे सभी उपनिषदो को वेद प्रामाण्य नही मानते है। फिर भी उनके दर्शन के मूल उपनिषदो मे है। कुमारिल भट्ट ने बौद्धदर्शन के विज्ञानवाद, क्षणभड्गवाद, अनात्मवाद तथा वैराग्यवाद को उपनिषदो से निकला हुआ स्वीकार किया है। चार्वाक दर्शन का भौतिकवाद उपनिषद् के दार्शनिक विरोचन का दर्शन है। जैनदर्शन का सद्दृष्टि, असद्दृष्टि, अवाच्य दृष्टि उपनिषदो मे मिलती है। जिसे लेकर जैनियो ने स्यादवाद और अनेकान्तवाद का सिद्धान्त विकसित किया।

एन. के देवराज ने अपनी पुस्तक भारतीय दर्शन मे लिखा है– ''षड्दर्शनों मे वेदान्त के सभी सम्प्रदाय उपनिषदो के साक्षात विकास है। 'तत्त्वमसि' इस एक वाक्य की व्याख्या विभिन्न वेदान्त सम्प्रदायो ने विभिन्न प्रकार से की है। इस और ऐसे अन्य वाक्यो के व्याख्यानो से इन सम्प्रदायो का प्रार्दुभाव हुआ है। ये सभी सम्प्रदाय ब्रह्मवादी है और जीव, जगत तथा ब्रह्म का विवेचन करते है। इस विवेचन मे ये उपनिषद् के

वाक्यो को प्रमाण रूप मे मानते है''।[1] भगवान बादरायण का ब्रह्मसूत्र उपनिषदो के दर्शन का सार प्रस्तुत करता है।

साख्य दर्शन की प्रकृति का उल्लेख श्वेताश्वेतर उपनिषद मे ''अजाम् एकाम् लोहित शुक्ल कृष्णाम्'' मत्र मे आता है जहा स्पष्ट रूप से प्रकृति को सत्व, रज, तम तीनो गुणो से युक्त कहा गया है।

योग दर्शन मे 'प्रणव' का वर्णन माण्डूक्य उपनिषद् के 'प्रणव' उपासना का मूल ही है। कठोपनिषद का योग विवेचन पतञ्जलि के योग सूत्र का मूलस्रोत है। न्यायवैशेषिक दर्शन का ज्ञान सिद्धान्त उपनिषदो की श्रवण प्रक्रिया और मनन प्रक्रिया का विकास है। वैशेषिक परमाणुवाद का बीज भी उपनिषदो मे प्राप्त होता है। इस प्रकार सभी भारतीय दर्शन उपनिषद् दर्शन से विकसित हुआ है और जो नही निकला है वह दर्शन ही नही है।

उपनिषद के दार्शनिको ने कई विधियो से दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया है उसमे कुछ विधि अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो निम्न है– यथा प्रतीकात्मक विधि– शाण्डिल्य ने छान्दोग्य उपनिषद का प्रतीकात्मक विधि से दार्शनिक विवेचन करते हुये परमतत्व के लिये 'तज्जलान' शब्द प्रयुक्त किया है।[2] इसका तात्पर्य है कि जिससे यह जगत उत्पन्न होता है, जिसमे यह गतिशील है, और जिसमे इस जगत कालय होता है वह ब्रह्म है।

माण्डूक्योपनिषद् मे सूत्र विधि से 'ओम्' का दार्शनिक विवेचन किया गया है– अ+उ+म द्वारा ओम् की व्याख्या करते हुये 'ओम्' को चतुष्पाद् आत्मा कहा गया है। उपनिषदो मे आख्यायिका विधि के द्वारा भी दार्शनिक विवेचन किया गया है यथा– छान्दोग्य उपनिषद् मे– इन्द्र और विरोचन की आख्यायिका वर्णित है।

---

[1] एन के देवराज– भारतीय दर्शन– पृ० ६६

[2] तज्जलानिति शान्त उपासीत (छा० उप० ३/१४/१)

उपनिषदो के दार्शनिक विवेचन की निरूक्त विधि भी महत्वपूर्ण है। उपनिषदो मे स्वप्न, पुरूष आदि शब्दो की निरुक्तिया दी गयी है– यथा जो सत् से सम्पन्न है या स्वय को प्राप्त करता है वही स्वप्न है।

छान्दोग्य उपनिषद मे आरूणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को उपमान विधि से "तत त्वम असि" का उपदेश दिया है। बृहदारण्यक उपनिषद मे शास्त्रार्थ विधि से दार्शनिक विवेचन प्राप्त होता है। उपनिषद् दार्शनिक याज्ञवल्क्य ने अनेक दार्शनिको से शास्त्रार्थ करके अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित की। यथा– कठोपनिषद मे यम–नचिकेता सवाद, बृहदा० मे याज्ञवल्क्य– मैत्रेयी सवाद छान्दो० उपनि० मे आरूणि श्वेतकेतु सवाद और नारद सनत्कुमार सवाद मुख्य है।

तैत्तरीय उपनिषद् मे "अरून्धती न्याय विधि" से दार्शनिक विवेचन किया गया है। इस उपनिषद् मे ब्रह्म को क्रमश· अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय बताया गया है।

इस प्रकार से उपनिषदो मे आत्मसलाप विधि सश्लेषणात्मक विधि, विश्लेषणात्मक विधि, अधिदैवत आदि विधियो से दार्शनिक विवेचन प्राप्त होता है।

उपनिषदो मे दार्शनिक विवेचन

<u>वेदो के बाद आरण्यक ग्रन्थो मे जो आध्यात्मिक जिज्ञासा की प्रक्रिया विकसित हुई थी उसी का सुव्यवस्थित एवं परिपक्व रूप उपनिषदो मे दृष्टिगोचर होता है।</u>

उपनिषद् अनेक विरोधी गुणो का समन्वय प्रस्तुत करता है। इसमे एक ओर यदि ज्ञानमार्ग का वर्णन है तो दूसरी ओर कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग का है।

एक ओर यदि "सर्व खल्विद ब्रह्म" वर्णित है तो दूसरी ओर द्वैत और त्रैत सिद्धान्तो का वर्णन है। इस प्रकार उपनिषदो मे विरोधो के साथ समन्वय परिलक्षित होता है। उपनिषदो मे दार्शनिक विचारो का अतीव सुन्दर चित्रण किया गया है।

१ वेदान्त मे प्रतिपादित "तत्वमसि महावाक्य" का मूल छान्दोग्य उपनिषद् मे प्राप्त होता है। इसमे उद्दालक मुनि ने श्वेतकेतु को "तत्वमसि" का उपदेश दिया है– 'स च एषोऽणि मैतदात्म्यमिद सर्व तत् सत्य स आत्मा तत्वमसिश्वेतकेतोइति (छान्दो० ६/६/१२–३)

उपनिषदो मे मुख्य रूप से ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। बृहदा० उपनि० मे कहा गया है कि वह न तो स्थूल है, न सूक्ष्म है, न लघु है और न गुरू। उसमे न रस है, न गन्ध न उसके पास ऑख है और न ही कान है वह नित्य है उसमे आकाश ओत–प्रोत है। अत निर्गुण ब्रह्म का निषेधात्मक वर्णन उपलब्ध होता है। 'अस्थूलमनण्वहस्वमदीर्घम् ——— अरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रम्———अस्मिन्नु खल्वेक्षरे गागर्याकाश ओतश्चप्रोतश्च। (बृहदा० ३–८–८ से।।)

उपनिषदो का मुख्य विवेच्य विषय आत्मा या ब्रह्म का स्वरूप है। "ब्रह्म" शब्द 'बृह' धातु से बना है जिसका अर्थ "व्यापक" है। "बृहन्तो हि अस्मिन् गुणा इति ब्रह्म" इस व्युत्पत्ति के अनुसार "ब्रह्म" शब्द से तात्पर्य उस परम सत्ता से है जिसकी सत्ता एव अनन्त शक्ति पर विश्व के सभी पदार्थो का अस्तित्व एव सचालन निर्भर है।

कठोपनिषद् के अनुसार– यह एक पुरातन वृक्ष है जिसकी जडे ऊपर की ओर है और शाखाए नीचे की ओर जाती है। वह प्रकाश का पुञ्ज उज्जवल ब्रह्म है जो अमर है जगत की सभी चेतन–अचेतन वस्तुए उसी के अन्दर हैं उसके बाहर नही है।

तैत्तरीयोपानिषद् मे ब्रह्म को सत्य, ज्ञान एव अनन्त कहा गया है– 'सत्यज्ञानमनन्त ब्रह्म'।(तैत्तिरीयो०– २/१)। उपनिषदो मे ब्रह्म के दो लक्षणो का विवेचन किया गया है– १–तटस्थ लक्षण, २–स्वरूप लक्षण।

जगत का कारण होना ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है ब्रह्म जगत की उत्पत्ति, स्थिति एव लय का निमित्त एव उपादान कारण है। 'सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म' और 'विज्ञानमानन्दं

ब्रह्म'' उसका स्वरूप लक्षण है। उपनिषदो मे ब्रह्म का वर्णन कही[2] 'नेति–नेति' पद्धति से किया गया है। बृहदारण्यको० ब्रह्म का पूर्ण निषेधात्मक वर्णन करता है क्योकि ब्रह्म मे सर्वस्व समाविष्ट है– 'अथात आदेश नेति–नेति। नहि एतस्मादिति न इति अन्यत्यपरमस्ति।' उपनिषदो मे ब्रह्म के दो रूप मिलते है– १– सप्रपञ्च और २– निष्प्रपञ्च।

सप्रपञ्च ब्रह्म को सगुण, अपर ब्रह्म, मूर्त या ईश्वर कहते है और निष्प्रपञ्च ब्रह्म को निर्गुण, निर्विशेष, अमूर्त या परब्रह्म कहते है। सप्रपञ्च ब्रह्म की अवधारणा धार्मिक है, निष्प्रपञ्च ब्रह्म की अवधारणा दार्शनिक है। व्यवहारिक दृष्टि से ब्रह्म सप्रपञ्च है और परमार्थिक दृष्टि से निष्प्रपञ्च। निष्प्रपञ्च ब्रह्म की धारणा के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत् है और इसके अतिरिक्त अन्य वस्तुए आभासमात्र है, यह ब्रह्मविवर्तवाद है।

बृहदारण्यक उपनिषद् मे ईश्वर की महत्ता के विषय मे कहा गया है कि ईश्वर विश्व के भीतर निवास करता है और विश्व का शासन करता है। उसे विश्व का अन्तर्यामी सूत्रधार कहा गया है। तैत्तिरीय उपनिषद मे कहा गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति के समय ईश्वर ने प्रत्येक सृष्ट पदार्थ मे प्रवेश किया और तत्पश्चात उसने स्वय सत्–असत्, विज्ञान–अविज्ञान रूप धारण कर लिया। अत ईश्वर प्रत्येक वस्तु मे व्याप्त है। सम्पूर्ण सृष्टि ईश्वर की शरीर है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् मे ईश्वर की सर्वव्यापकता वर्णित की गयी है इससे तात्पर्य यह है कि ईश्वर, अग्नि, जल, वनस्पति, वृक्ष आदि विश्व के कण–कण मे व्याप्त है।

इसी उपनिषद् मे एक जगह कहा गया है कि ईश्वर विश्व के परे स्वर्ग मे वृक्ष की भॉति अविचल रूप से स्थित है। अत विश्व के परे है।

इसी उपनिषद् मे ब्रह्म को सर्वव्यापी, कर्मो का नियन्ता साक्षी, चैतन्य, अद्वितीय और निर्गुण कहा गया है–

'एको देव सर्वभूतेषु गूढ सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

————————— साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।। श्वेता० ६/११)

छान्दोग्य उपनिषद् मे ईश्वर के सम्बन्ध मे यहा तक कहा गया है कि इस सृष्टि की रचना उस परम तत्व के ईक्षण से ही होती है– 'तदैक्षत बहुस्या प्रजायेयति तत्तेजोऽसृजत ———।[१]

ब्रह्म सर्वशक्तिमान है, जगत को उत्पन्न करने की शक्ति एकमात्र उस परम सत् ब्रह्म मे ही है।

तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार– 'ब्रह्म ही जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय का उत्तरदायी कारण है।' सर्वशक्तिमान शास्वत ब्रह्म वही है जिससे सभी वस्तुओ की उत्पत्ति सभी की स्थिति और जिसमे सभी वस्तुओ का अन्त होता है– 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति तत्प्रयान्ति तद्ब्रह्मेति।[२]

कठोपनिषद मे ब्रह्म को 'प्रकाश पुज' कहा गया है– सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नक्षत्र आदि अपने प्रकाश से प्रकाशित न होकर ब्रह्म की ज्योति से प्रकाशित होते है अर्थात् ब्रह्म के प्रकाश से ही सभी प्रकाशमान होते है।[३] इस उपनिषद् मे भी ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य स्वीकार किया गया है और ब्रह्म के अतिरिक्त किसी भी अन्य वस्तु की सत्ता नही है।

ब्रह्म के सम्बन्ध मे कहा गया है कि जो सम्पूर्ण सृष्टि मे एकमात्र तत्व ब्रह्म को देखता है, वही ज्ञानी है, वही अमरत्व को भी प्राप्त होता है। इसके विपरीत जो देखता है वह बारम्बार मृत्यु को प्राप्त होता है, और आवागमन के चक्र मे फसा रहता है।[४]

---

[१] छान्दोग्य उप० (६–२–२–३)

[2] तैत्तिरीय उप० ३/१

[3] नतस्य सूर्यो भाति न चन्द्रारक नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमाग्नि। तमेव भान्तमनुभाति सर्व तस्य भाषा सर्वमिद विभाति।। (क० उप० ११/५/१५)

[4] मनसैवेदमाप्तव्य नेह नानास्ति किञ्चन। मृत्यो स मृत्यु गच्छति य इह नानेव पश्यति।। (क० ३४/११/४/११)

केनोपनिषद् मे ब्रह्म को वाणी से परे बताया गया है और कहा गया है कि जो वाणी से प्रकाशित नही होता किन्तु जिससे वाणी प्रकाशित होता है।

शकराचार्य ने वेदान्त मे जिस अद्वैत ब्रह्म का प्रतिपादन किया है उसका बीजरूप हमे माण्डूक्योपनिषद् मे प्राप्त होता है। ब्रह्म न अन्त प्रज्ञ है और न बहिःप्रज्ञ और न उभयप्रज्ञ। वह न ज्ञान, धन है, न प्रज्ञ है, न अप्रज्ञ है। वह अदृष्ट, अग्राह्य, अचिन्त्य और अव्यपदेश्य है। इसमे ब्रह्म की चार अवस्थाए, पञ्चकोश, कारण, शरीरादि के समष्टि और व्यष्टिरूप और तुरीय शिव अवस्था का प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्म मे सभी प्रपञ्चो का उपशम हो जाता है वह शान्त, शिव और अद्वैत है।"प्रपञ्चोपशम शान्त शिवमद्वैत चतुर्थ मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेय ।" (माण्डूक्य उपनिषद ६/७)

वेदान्त मे 'माया' का वर्णन श्वेताश्वतर उपनिषद मे मिलता है। इसमे प्रकृति को 'माया' और 'पुरूष' (महेश्वर) को मायिन् (माया का स्वामी) कहा गया है– 'माया तु प्रकृति विहान्मायिन तु महेश्वरम्।' (श्वेताश्वतर ४/१०)

श्वेताश्वतर उपनिषद् मे प्रकृति के तीनो गुणो एव उनके लोहित, शुक्ल एव कृष्ण रूपो का वर्णन है। साख्य और योग मे वर्णित प्रकृति के तीनो गुणो का बीजरूप मे निर्देश है।[1]

वेदान्त मे आचार्यशकर द्वारा उद्धृत 'तत्वमसि' महावाक्य का मूल छान्दोग्य उपनिषद मे प्राप्त होता है। इस उपनिषद् मे उद्दालक मुनि द्वारा श्वेतकेतु को दिया गया उपदेश वर्णित है।

<u>'स च एषोऽणिमैतदात्म्यमिद सर्व तत् सत्य स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो इति।'</u> (छान्दोग्य ६–६–१२–३)। पुनर्जन्म से सम्बन्धित वर्णन हमे तीन उपनिषदो मे मुख्य रूप से मिलता है ये उपनिषद है– छान्दोग्य, कठ, बृहदारण्यक। इसमे कहा गया है कि कुछ लोग तो ऐसे होते है जिन्हे शुभ कर्मो के परिणामस्वरूप ही अमरत्व की प्राप्ति हो

जाती है और शेष को पुनर्जन्म प्राप्त होता है। कठोपनिषद् मे जब नचिकेता यम के द्वार से लौट आता है तब वह पुनर्जन्म की ओर ही इगित कर रहा है। मुण्डक उपनि० मे भी पुनर्जन्म से सम्बन्धित वर्णन है।

बृहदाण्यक उपनिषद मे पुनर्जन्म का वर्णन है– 'क्षीर्ण च पुण्ये तत पुनरावर्तन्ते। ये खलु पृथिव्या नानायोनिषु जन प्रपद्यान्ते मनुष्यजातौ जायन्ते।' (बृहदा० ६–२–१५–१६)

गीता मे प्रतिपादित निष्काम कर्मयोग का वर्णन, मूल रूप से ईश उपनिषद् मे प्राप्त होता है जिसमे कहा गया है कि निष्काम भाव से प्रेरित होकर कर्म करने वाला व्यक्ति कर्म के बन्धन मे नही बधता है।

'कुर्वन्नेदेह कर्माणि जिजीविषेच्छत् समा ।
एव त्वयि नान्यथेतोऽस्ति, न कर्म लिप्यते नरे।। (ईशोपनिषद्–२)

इस प्रकार ईश उपनिषद मे विद्या और अविद्या अर्थात् ज्ञान मार्ग एव कर्ममार्ग दोनो मे समन्वय मिलता है। इसी प्रकार कठउपनिषद मे भी श्रेय और प्रेय का समन्वित रूप वर्णित है।

वेद मे एक ईश्वर का वर्णन

उपनिषदो मे यह सिद्धान्त प्रचलित है कि उपनिषदो का ब्रह्म एक है। आचार्य शकर के सिद्धान्त पर यदि ध्यान दे तो यह आचार्य ने स्पष्ट किया है कि ब्रह्म ही एकमात्र सत् है, और शेष सभी मायोपहित चैतन्य है। ब्रह्म ही ससार का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। किन्तु यदि उपनिषदो का आधार वेद माना जाये तो परस्पर सगति से ऐसा अर्थात आचार्य शकर का मत समीचीन प्रतीत नही होता है। क्योकि वेदो के अनेक मत्र एक ब्रह्म का प्रतिपादन तो करते है परन्तु साथ ही आत्मा अर्थात्

---

[१] अजामेका लोहितशुक्लकृष्णा वह्वी प्रजा सृजमानासरूपा । (श्वेता० ४–५)

जीवात्मा और ससार के पदार्थो की सत्ता भी स्वीकार की गई है। इसी प्रकार उपनिषदो मे भी वेद मत्रो को लेकर उसी प्रकार सिद्धान्त प्रतिपादित किया है जैसा कि वेद ने किया है। वेद और उपनिषदो मे मुख्य रूप से यह अन्तर दृष्टिगोचर होता है कि वेद एक सागर के समान है जिसमे सभी प्रकार की विधाओ का वर्णन बीजरूप मे विद्यमान रहता है, और उपनिषद् वेदो का केवल एक अग की भॉति है अर्थात् उपनिषदे ज्ञानकाण्ड की अनुभूतिपरक व्याख्याए प्रस्तुत करती हैं।

वेद और उपनिषदो मे ब्रह्म सम्बन्धी मत्रो मे कुछ साम्य दिखाई देता है– जिस प्रकार उपनिषदो मे एक ब्रह्म को माना गया है उसी प्रकार वेदो मे भी एक ईश्वर का वर्णन है।

१ सृष्टि या जगत् मे जो कुछ भी जड–चेतन रूप है वह समस्त परमेश्वर से ही व्याप्त है।[१]

२ जो सम्पूर्ण जगत का स्वामी, कर्ता, धर्ता है, उसी परम सत्ता का वर्णन परम पुरूष, सृष्टि का अध्यक्ष, देवो के देव तथा ब्रह्म आदि नामो से अनेक मत्रो मे पाया जाता है।

३ ब्रह्म का साक्षात्कार जिज्ञासु कर लेता है तब समस्त भुवनो का साक्षात्कार कर लेता है, क्योकि वह ब्रह्म सूक्ष्मातिसूक्ष्म है।[२]

४ विद्वान, ब्राह्मण उसी एक ब्रह्म की स्तुति भरी वाणियो से भक्ति करते है।[३]

५ उसी एक ईश्वर को अग्नि, वायु, चन्द्रमा, यम, मातरिश्वा आदि नामो से कहा

६

जाता है।[१]

---

[१] ईशावास्यमिद सर्वं यत्किञ्च जगत्या जगत्।। (यजु० ४०–१–ईशो–१)

[२] यत्र लोकाश्च कोशाश्चापो ब्रह्म जनाविदु। यसच्च यत्र सच्चान्त स्कम्भत ब्रूहि कतम स्विदेव स।। (अथर्व० १०/६/१०)

[३] ब्रह्माण ब्रह्मवाहम गोर्भि सखाय मृग्मियम। (गादो हसेहुवो– ऋ० ६/६/४५/७)।।

७ यजुर्वेद मे कहा गया है कि हम सभी लोग अपनी रक्षा के लिये, उस ईश्वर की, जो जगम और स्थावर सब का स्वामी है, वही बुद्धि का प्रेरक है, उस की प्रार्थना करते है।[२]

८ उस परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुये वेद कहता है कि वह शरीर रहित, शुद्ध, नस–नाडियो से रहित, पापो से रहित स्वयम्भू आदि विशेषणो से युक्त है।

पश्चिमी विद्वानो और उनकी विचारधाराओ से प्रभावित कुछ भारतीय विद्वान भी यह मानते है कि वेदो मे ब्रह्म विद्या नही है, ब्रह्म विद्या का विकास वेद के पश्चात वेदान्त अर्थात् उपनिषदो मे हुआ है। किन्तु कुछ विद्वान तो इतना अवश्य स्वीकार करते है कि ऋग्वेद के अन्तिम मे आते–आते एकेश्वरवाद की भावना कुछ पनप गई थी परन्तु दयानन्द तो इस विचारधारा से असहमत होकर यह उद्घोषणा करते है कि वेदो का मुख्य तात्पर्य परमेश्वर को ही प्राप्त करने मे है। "एवमेव सर्वेषा वेदानाशी श्वरे मुख्ये अर्थे मुख्य तात्पर्यमस्ति।।"

महर्षि दयानन्द अपनी इस बात को सिद्ध एव प्रमाणित करने के लिये कठोपनिषद् का प्रमाण देते है। 'समस्त वेद जिस के गीत गाते है वह 'ओऽम्' है।[३] वेदान्त दर्शन भी इस बात को मानता है कि वेदो मे 'ब्रह्म' का वर्णन पाया जाता है।[४] वेदो मे ब्रह्म को सर्वशक्तिमान, देवो के देव, सर्वज्ञ, व्यापक, सर्वान्तर्यामी आदि विशेषणो से अभिहित किया गया है। इस प्रकार वेदो मे एकेश्वरवाद का जितना स्पष्ट और सुन्दर वर्णन किया गया है, वैसा अन्यत्र शायद ही हो। दयानन्द का मानना है कि जो बहुदेववाद या हीनोथीज्म की विचारधारा उत्पन्न हुई उसके पीछे कारण सभवत यह रहा होगा कि 'देवता' शब्द से अर्थ का अनर्थ किया गया। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि

---

[1] तदेवाग्निस्तदादित्य——————(यजु० ३/२/१)

[2] रूच ब्राह्म जनयन्तो देवा अग्रे तद्ब्रूवन्। यस्तवैव ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे।। (यजु० ३१/२१)

[3] क्वचित् साक्षात्क्वचित परम्पराच। अत परमार्थो वेदाना ब्रह्मैवास्ति। वही पृष्ठ।

[4] सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति – कठो० १/२/१५। तत्तुसमन्वयात् (वेदान्त १/१/४)

देवता शब्द से ईश्वर का ग्रहण नही करना चाहिये। अत वेदो मे एक ही ईश्वर की उपासना का विधान है।

उपनिषदो मे एकेश्वर का वर्णन

वेदो की भाति उपनिषदो मे भी ईश्वर के विविध नाम प्राप्त होते है। महर्षि दयानन्द ने ईश्वर का मुख्य नाम 'ओउम्' बतलाया है। यह 'ओउम्' नाम उपनिषदो मे भी प्राप्त होता है। जो ईश्वर का पर्यायवाची नाम के रूप मे है। ईश्वर को ब्रह्म, मायाविन आदि नामो से भी वर्णित किया गया है। उपनिषदों मे ईश्वर के जिन विशेष नामो की व्याख्या की गयी है ने सब वेदो के ही अनुसार है। वेदो की ही तरह उपनिषदो मे भी कहा गया है कि वह परम ब्रह्म विभिन्न नामो से जाना जाता है। उदाहरणतया– श्वेताश्वेतरोप० मे कहा गया है कि उसी को अग्नि, उसी को आदित्य, वायु, चन्द्रमा, आप आदि विभिन्न ये नाम ईश्वर के ही नाम है। 'तदेवाग्निस्तदादित्य– (श्वेता० ४/२)।

कठोपनिषद् मे कहा गया है कि यह 'ओऽम' ही अविनाशी ब्रह्म है और यही सब का आलम्बन है। 'एतध्येवाक्षर ब्रह्म एत ध्यमेवाक्षर परम्।'

इस ओकार का जप करने से ही परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है। यह 'ओऽम्' ही सम्पूर्ण जगत मे व्याप्त है यह ओउम् त्रिकालातीत है अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्यत् में यह ओङ्कार ही है। 'य आमित्येतदक्षरमिदोसर्व' प्रश्नोपनिषद् में ओकार का वर्णन करते हुये लिखा गया है कि हे सत्काम निश्चित है कि यह ओकार ही ब्रह्म है इसी को दोनो रूपो मे परब्रह्म और अपरब्रह्म भी कहते है।

'एत द्वै सत्यकाम पर चापर च ब्रह्मयदो ओकार' (प्रश्नोपनिषद्– ५/२)।

मुण्डकोपनिषद् मे यह कहा गया है कि दो सुन्दर परों वाले पक्षी ही प्रकृति रूपी वृक्ष पर विराजमान हैं उसमे से एक फलो का आस्वाद लेता है और दूसरा तटस्थ भाव

से देखता रहता है।[1] इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि इन जीव और ब्रह्म मे से एक जो जीव है वह वृक्षरूपी ससार मे पाप–पुण्य, शुभ–अशुभ रूप फलो को सुचारू रूप से भोगता है और इसके विपरीत दूसरा परमात्मा कर्मो के फलो को न भोगता हुआ अपने चारो ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि उपनिषदो मे भोक्ता रूप मे जीवात्मा और भोग्या प्रकृति तथा इन पर शासन करने वाला 'ब्रह्म' का वर्णन पाया जाता है।

उपनिषदो मे भी ब्रह्म को सर्वत्र विभु, सर्वशक्तिमान सृष्टि रचयिता, पालनकर्ता एव सहर्ता के रूप मे उद्दृत किया गया है। इसके विपरीत जीवात्मा अल्पशक्ति वाल अणु तथा परिच्छिन्न है। जीवात्मा कर्म करने मे तो स्वतत्र है किन्तु कर्म का फल भोगने मे परतन्त्र है।

उपनिषदो मे द्वैतवाद का समर्थन जो श्रुतिया करती है उनको अद्वैतवादी यह कहकर प्रबल रूप से समर्थन करते हैं कि ये व्यवहारकाल की श्रुतिया है। उपनिषदो मे इस तरह का सकेत नही है।

जिज्ञासा होने के कारण यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या उपनिषदो मे सृष्टिरचना का वर्णन नही है। यदि सृष्टि का वर्णन है तो मिथ्या क्यो कहा जाय। इसके बाद फिर परमार्थ और व्यवहार का भेद क्यो माना जाय। आचार्य शकर ब्रह्म को समझाने के लिये इस जगत का सहारा लेते है और फिर बाद मे कहते है कि ससार मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है, यह कैसे हो सकता है। अर्थात् मिथ्या जगत से परमार्थिक सत्ता कैसे सिद्ध की जा सकती है? वस्तुत व्यवहारिक स्तर पर जो अद्वैतवादी भेद मानते है उससे दयानन्द की यथार्थवादी विचारधारा को ही सहारा (बल) मिलता है।

---

[1] द्वा सुपर्णा सुयुजा सखाया समान वृक्ष परिषस्व जाते। तयोरन्य पिप्पलस्वाद्वगत्यनशनन्नन्यो अभिचाकशीति।। (मु० उ० ३/१/१)

महर्षि दयानन्द यह मानते है कि उपनिषदो मे ब्रह्म को ससार का रचयिता कहा गया है। इसी ब्रह्म से समस्त महाभूत उत्पन्न होते है और उत्पन्न होकर उसी मे तिरोहित हो जाते है। अर्थात् प्रलयावस्था मे नष्ट होकर ब्रह्म के गर्भ मे अव्यक्तावस्था मे चले जाते है।

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते यत्प्रयत्यभिसविशान्ति।' (तैत्तिरीय उपनिषद) सत्य तो यह है कि उपनिषदो मे सृष्टिरचना का वर्णन जिस रूप मे किया गया है वह विशुद्ध यथार्थवादी है। महर्षि दयानन्द के अनुसार आचार्य शङ्कर के मायावाद का सिद्धान्त उपनिषदो मे प्राप्त नही होता है किन्तु जो 'माया' शब्द उपनिषदो मे आया है वह आचार्य शकर की माया नही है बल्कि (यहा) 'माया' का अर्थ– 'प्रकृति' है। श्वेताश्वेतरोपनिषद मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'माया को प्रकृति ही जानो।'[1]

साख्यदर्शन मे वर्णित 'प्रकृति' और उपनिषदो की 'माया' एक ही प्रतीत होती है। यही कारण है कि साख्य दर्शन प्रकृति परिणामवाद को हमेशा श्रुतिसम्मत बतलाता है– 'श्रुतिरपिप्रधानकार्यत्वस्य' (सा० सू० ५/२) परन्तु इतना अवश्य कहा है कि ब्रह्म नित्यो का नित्य है अर्थात् जीव और प्रकृति इन नित्य तत्वो का जो स्वामी है वह अनादि ब्रह्म है।[2] इस प्रकार उपनिषदो मे एकेश्वरवाद का ही मुख्य रूप से प्रतिपादन किया गया है।

उपनिषदो द्वारा वेदो को ही प्रमाण मानना– सभी उपनिषदे वेद को ही प्रमाण रूप मे स्वीकार करती हैं न कि वेदो का खण्डन करती है। क्योकि कठोपनिषद मे कहा गया है कि 'जिस अक्षर पर ब्रह्म को प्राप्त करने का सभी वेद उपदेश देते है उसी ब्रह्म को जानो'– 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति'। (कठोपनिषद् २/१५)। मुण्डकोपनिषद् मे कहा गया है कि उस परमात्मा का मुख अग्नि है, चन्द्रमा और सूर्य उस परमात्मा के दो चक्षु है श्रोत दिशाए है तथा ऋग्वेदादि चारो उस परमात्मा की वाणी है। वेदो के विषय मे

[1] माया तु प्रकृति विहान्मायिन तु महेश्वरम्। तस्यावयव भूतैस्तु व्याप्त सर्वमिद जगत।। (श्वेता० ४/१०)
[2] नित्यो नित्याना चेतनाश्वेतनानामेको बहूना यो विदयतिकामान। (श्वेता० ६/३)

यह भी कहा गया है कि ये वेद परमात्मा के निश्वास से प्रभूत है तथा उसी परमात्मा के द्वारा प्रकाशित ज्ञान है। इस प्रकार उपनिषदो का अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट होता है कि कुछ मत्रो को छोडकर अन्यत्र वेदो के मत्रो को ज्यो का त्यो उपनिषदो मे ग्रहण किया गया है। ब्राह्मण वेद के स्वाध्याय द्वारा उसी परमात्मा को जानने की इच्छा करते है[1]। इस प्रकार उपनिषदे वेदो के विरूद्ध नही अपितु वेदो को प्रमाणरूप मे प्रस्तुत करती है।

वेद मे प्रलयावस्था की स्थिति में प्रकृति का निरूपण

सृष्टि की रचना होने से पूर्व प्रकृति प्रलयकाल मे किस स्थिति मे थी, उसका क्या आकार था, इस सृष्टि की रचना किसने किया या यह प्रकृति थी भी या नहीं थी? आदि प्रश्नो का उत्तर वेदो मे गभीरता से दिया गया है। इस दार्शनिक समस्या का समाधान सबसे ज्यादा ऋग्वेद के नासदीय सूक्त मे वर्णित है। नासदीय सूक्त के विषय मे मैक्समूलर (पश्चिमी विद्वान) का विचार है कि इस सूक्त को ईश्वर ने ऋषियो के लिये ही अवतरित किया है। जैसा कि इस सूक्त के कुछ मत्रो के विवेचन से प्रतीत होता है–

१– उस समय (प्रलयकाल) मे न असत् था न सत् था और न ही परमाणुओ से भरा अन्तरिक्ष भी था, उस समय कहा क्या आच्छादित था? प्रकृति किसके आश्रय मे थी, क्या उस समय बहुत अधिक गभीर जल (बल) था।[2]

२– तब उस समय न मृत्यु थी तथा न किसी प्रकार का जीवन था, रात्रि और दिवस भी नही था, उस समय वह परमात्मा अपनी शक्ति से स्वधा–प्रकृति के साथ बिना किसी प्राणवायु के प्रणयन कर रहा था उससे परे श्रेष्ठ कुछ भी नही था[3]

---

[1] तथा तमेत वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति। (बृहदारण्यक ४/४/२२)

[2] नासदासीन्मो सदासीत्तदानीं द्रजोनो व्योमाडपरोयत। किमारीव कुहकस्य शर्म्मन्नम्भ किमसीदगहन गभीरम।। (ऋ० १०/१२६/१)

[3] न मृत्युरासीदमृत न तर्हिनरात्या अह्न आसीत प्रकेट । ऋ० (१०/१२६/२)।

३ उस समय अन्धकार से व्याप्त अव्यक्त प्रकृति थी और यह सब अज्ञेय अवस्था मे जल के समान एकाकार था जो तुच्छ था (ब्रह्म के सम्मुख प्रकृति तुच्छ है) वह परमात्मा के तप से एक अर्थात व्यक्त सी होने लगी।[1] इसी उपर्युक्त बात की व्याख्या महर्षि दयानन्द ने भी इसी प्रकार से ही की है।

४– वस्तुत कौन जानता है और कौन कह सकता है, कहा से निर्माण हुआ और कहा से विविध प्रकार की सृष्टि हुई है, देव भी वाद मे ही बने है अब कौन यह कह सकता है कि यह सृष्टि कहा से निर्मित हुई।[2]

५– जिससे यह विविध प्रकार की सृष्टि उद्भूत हुई है वही इसको धारण करता है। यदि न करे तो सृष्टि विनष्ट हो जाय। जो परम व्योम है इसका वह अध्यक्ष है। हे मित्र! उसको जान, यदि उसको न जानेगा तो महती हानि होगी।[3]

कुछ आधुनिक विद्वान जो शङ्कर के अद्वैतवाद से प्रभावित है वह आचार्य शङ्कर के अद्वैतवाद सिद्धान्त का मूल इसी सूक्त मे ढूढने का प्रयास करते है– किन्तु यहा यह विचारणीय है कि सर्वप्रथम मत्र मे सत् और असत् दोनो का ही उस अवस्था मे होने को खण्डन किया गया है। यदि इस मत्र मे केवल यह इतना ही स्पष्ट रूप से कहा गया होता कि सृष्टि के पूर्व केवल सत् ही था और कुछ भी नही था तब तो आचार्य शङ्कर के सिद्धान्त का प्रतिपादन समुचित जान पडता। क्योकि आचार्य शङ्कर का भी यह मन्तव्य है कि सत् का कभी वाध नही होता है यह त्रिकालाबाधित सत् होता है। किन्तु वेद न तो सत् को मानता है और न ही असत् को ही मानता है। इससे यह तात्पर्यत अर्थ निकलता है कि 'सत्' का अर्थ यह कार्यरूप जगत् नही था। और असत् का अर्थ है अभाव। अर्थात् पूर्णत अभाव भी नही था अपितु कारण प्रकृति

---

[1] तम आसीतमसा गूढतमग्रेअप्रकेत सलिल सर्वमाइदम। तुच्छयेनाम्बपिहित जार्यतकम।। (ऋ० १०/१२६/३)

[2] को अद्धावेद क इह प्रवोचत्कुत अजाता कुत इय विसृष्टि। अर्वागदेव स्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आ बभूव।। (ऋ० १०/१२६/६)

[3] इय विसृष्टि आबभूव यदि वा दधेवाम। (ऋ० १०/१२६/७)

अव्यक्तावस्था मे थी। ईश्वर अपनी ईक्षणशक्ति से ही उसमे गति उत्पन्न कर क्षोभ पैदा कर देता है। वेदो मे सृष्टिरचना का वर्णन बहुत ही दार्शनिक विधि से किया गया है– 'द्वा सुपर्णा सुयुजा सखाया'[1] यह मत्र ऋग्वेद मे भी आता है और यह मत्र उपनिषदो मे भी प्राप्त होता है इस मत्र मे प्रकृति की उपमा वृक्ष से दी गयी है।

उपनिषदो की दार्शनिक व्याख्या वही समुचित हो सकती है जो वेदो की व्याख्या से भी सहमति रखती हो इस प्रकार से वेदो मे स्पष्ट रूप से यथार्थवाद का निरूपण किया गया है।

निष्कर्ष (समालोचना)

वेद ईश्वर से उद्भूत है अतेव यह अपौरूषेय कृति है तथा अलौकिक है। इस मत को आचार्य शङ्कर, रामानुज, दयानन्द तीनो ही मानते है। दयानन्द ने वेदो का भाष्य यथार्थवादी युग मे किया है जकि आचार्य शङ्कर ने अपने दर्शन का प्रारम्भ बौद्ध दर्शन के खण्डन से प्रारम्भ किया है क्योकि उस समय वैदिक मान्यताए ब्रह्म का महत्व समाप्त हो रहा था इस दिशा मे बौद्ध दार्शनिक प्रयत्न कर रहे थे इसलिय सभवत आचार्य शकर ने इस प्रतिक्रिया मे ब्रह्म को ही सब कुछ कहा– 'सर्वखल्विदब्रह्म', नेहनानास्ति किञ्चन जगत्। और प्रकृति का खण्डन किया जो उस समय उस युग की जरूरत थी।

स्वामीदयानन्द का प्रादुर्भाव यथार्थवादी प्रादुर्भाव के साथ ही हुआ है। दयानन्द ने वेद के भाष्य के द्वारा भारतीय सस्कृति को विश्व के सम्मुख चमत्कृति रूप मे रखा है। स्वामी दयानन्द के प्रभाव से ही सकल भारतीय वाङमय जो परस्पर विरोधी सा प्रतीत होता था आज उसमे समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

---

[1] ऋग्वेद (१/१६४/२)

आचार्य शङ्कर भी अपने युग के प्रतिनिधि दार्शनिक है और उनके दार्शनिक विचारो की सूक्ष्मता दर्शनजगत को अत्यधिक प्रभावित करती है। दर्शन के क्षेत्र मे आचार्य शङ्कर का योगदान किसी दार्शनिक से कम नही है।

श्रीमद्भगवद्गीता

विश्व दर्शन के क्षेत्र मे गीता का विशिष्ट स्थान है। यह दार्शनिक जगत को भारत की अद्भुत देन है। प्राचीन भारत के दर्शन का एक अत्यन्त लोकप्रिय काव्यात्मक प्रतिपादन भगवद्गीता मे हुआ है जो महाभारत महाकाव्य का एक अग है। यह महाभारत के भीष्म–पर्व के अन्तर्गत है।

कुरूक्षेत्र के युद्ध मे अपने बन्धु–बान्धवो की हत्या तथा युद्ध की भयानकता से त्रस्त पाण्डव वीर अर्जुन को श्रीकृष्ण ने कर्म के लिये जो प्रेरणा दी, वही भगवद्गीता मे निरूपित है। भगवद्गीता महर्षि वेद व्यास द्वारा रचित सस्कृत ग्रन्थ है। इसके अठ्ठारह अध्यायो मे सदेह मे निमग्न अर्जुन को कृष्ण ने लम्बा दार्शनिक उपदेश दिया है। एक क्षत्रिय के रूप मे अपने शत्रुओ का सहार करना अर्जुन का कर्तव्य था, किन्तु ये शत्रु कोई और नही बल्कि उनके सगे सम्बन्धी थे। इसलिये अर्जुन उनकी हत्या करने मे नैतिक रूप से विचलित हो उठे– इनमे तो ''मेरे आचार्य, मामा और दादा, मेरे श्वसुर और शुभचितक हैं।[१] इस प्रकार गीता के प्रथम अध्याय मे अर्जुन के शोक एव मोह का वर्णन है और दूसरे अध्याय का विषय साख्य–योग एवं निष्काम कर्मयोग है। तीसरे और चौथे अध्याय मे क्रमश कर्मयोग तथा ज्ञान–कर्म–सन्यास योग का वर्णन है। छठे अध्याय मे आत्मसयम का वर्णन है और सातवे मे ज्ञान–विज्ञान योग का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार बाकी के अध्यायो मे भी विभिन्न पहलुओ का विवेचन किया गया है अन्तिम अठारहवे अध्याय मे मोक्ष–सन्यास योग का वर्णन है। स्वामी विवेकानन्द ने

[१] श्रीभगवद्गीता– १ २६–२७।

अपने ग्रन्थ भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता मे लिखा है कि–''एक अन्य बात यह है कि साधारण जनता को गीता के विषय मे तब तक अधिक जानकारी नही थी जब तक शकराचार्य ने उस पर अपना महान भाष्य लिखकर उसे महान नही बना दिया। बहुतो का कहना है कि उससे बहुत पहले उस पर बोधायन का भाष्य प्रचलित था। यदि यह सिद्ध हो सके तो निसन्देह गीता की प्राचीनता और व्यास का उसका लेखक होना काफी हद तक मान्य हो सकता है। किन्तु भारत भर मे भ्रमण करते समय मुझे वेदान्त सूत्र पर बोधायन के भाष्य की कोई प्रति नही मिली।[1]

रामानुज ने उससे अपना श्रीभाष्य संकलित किया, शङ्कराचार्य ने उसका उल्लेख किया है और स्वय अपने भाष्य मे यत्र–तत्र उसे अशत उद्धृत तक किया है और स्वामी दयानन्द ने उसकी बडी चर्चा की है। कहा जाता है कि रामानुज तक ने कीडो–मकोडो से खायी हुयी एक हस्तलिखित प्रति से, जो सयोग से उन्हे मिल गयी थी, अपने भाष्य को सकलित किया। जब वेदान्त सूत्र पर लिखा गया बोधायन का यह महान भाष्य भी अनिश्चितता के अन्धकार मे इतना ढका हुआ है तब गीता पर बोधायन भाष्य के अस्तित्व को प्रमाणित करने का प्रयास व्यर्थ है। कुछ लोग यह निष्कर्ष निकालते है कि गीता के लेखक शकराचार्य थे और उन्होने ही उसे महाभारत के बीच मे प्रक्षिप्त कर दिया।

भगवद्गीता मे कृष्ण के व्यक्तित्व के विषय मे भी सदेह की स्थिति है। छान्दोग्य उपनिषद् मे एक जगह हमे देवकी के पुत्र कृष्ण का उल्लेख प्राप्त होता है, जिन्होने घोर नामक योगी से आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण की थी। महाभारत मे कृष्ण का द्वारकाधीश के रूप मे वर्णन मिलता है और विष्णुपुराण में गोपियो के साथ रास–लीला करते हुये कृष्ण का वर्णन है। भागवत मे व्यापक रूप से रासलीला का वर्णन है।

---

[1] भगवान श्रीकृष्ण और श्रीभगवद्गीता– पृ० २२।

प्राचीनकाल मे हमारे देश मे ऐतिहासिक शोध द्वारा सत्य का पतालगाने की प्रवृत्ति बहुत कम थी। अतएव समुचित तथ्यो और प्रमाणो द्वारा सिद्ध किये बिना ही, जिसके विचार मे जो उचित जान पडता वह कह डालता था। इसलिये प्राय यह हुआ कि किसी आदमी ने कोई ग्रन्थ रचा और अपने गुरू या किसी अन्य के नाम से उसे प्रचलित कर दिया। ऐसे विषय मे ऐतिहासिक तथ्यो का अनुसधान करने वाले के लिये सत्य तक पहुचना बडा जोखिम का काम था। अत कृष्ण के विषय मे सही निष्कर्ष पर पहुचना प्राय असभव है। यह मनुष्य का स्वभाव होता है कि वह किसी भी महान पुरूष के स्वभाव मे विभिन्न रूप की काल्पनिक अतिमानवीय विशेषताए जोड देता है। कृष्ण के विषय मे भी ऐसा ही हुआ होगा किन्तु यह सभव प्रतीत होता है कि वह एक राजा थे। किन्तु एक बात ध्यातव्य है कि गीता का लेखक चाहे जो भी व्यक्ति रहाहो, हमे उसमे वही शिक्षाए मिलती है जो समस्त महाभारत मे है। निश्चित रूप से यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि महाभारत काल मे किसी महान–पुरूष का अभ्युदय हुआ, जिसने तत्कालीन समाज को इस नये परिधान मे ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया। यह भी कारण था कि प्राचीन समय मे जब एक धर्म सम्प्रदाय के पश्चात् दूसरे धर्मसम्प्रदाय का अभ्युदय होता था, तब किसी न किसी नये धर्मशास्त्र का भी प्रणयन होता था और वह उनमे व्यवहृत होने लगता था। यह भी होता था कि समय व्यतीत होने पर धर्म सम्प्रदाय का अस्तित्व मिट गया किन्तु धर्मशास्त्र बचा रह गया। इस प्रकार यह बिल्कुल सभव है कि गीता किसी ऐसे धर्म सम्प्रदाय का शास्त्र रही हो जिसने अपने उच्च एव श्रेष्ठ विचारो को इस पवित्र ग्रन्थ मे समाविष्ट किया हो।

स्वामी विवेकानन्द अपने ग्रन्थ भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता मे लिखते है कि "अब हमे यह देखना चाहिये कि गीता मे क्या है? उपनिषदो का अध्ययन करे तो देखते है कि बहुत से असम्बद्ध विषयो की भूल–भूलैय्या मे भटकने पर सहसा किसी

महान सत्य की चर्चा छिड जाती है, ठीक वैसे ही जैसे किसी विशाल वीरान प्रदेश मे किसी यात्री को अकस्मात् यत्र–तत्र अति सुन्दर गुलाब मिल जाता है, जिसकी पत्तिया, काटे, जडे सभी परस्पर उलझी है। उनकी तुलना मे गीता इन सत्यो के सदृश है जो सुन्दर ढग से यथास्थान व्यवस्थित हैं। वह एक सुन्दर पुष्पमाला के या सर्वोत्तम चुने हुये फूलो के एक गुलदस्ते के समान हैं। उपनिषदो मे कई स्थलो पर श्रद्धा की विस्तृत विवेचना की गयी है, किन्तु भक्ति का उल्लेख अल्प ही है। दूसरी ओर गीता मे भक्ति की वार[२] विवेचना ही नही की गयी है वरन् उसमे भक्ति की अर्न्तनिष्ठ भावना चरम उत्कर्ष तक पहुच गयी है।[१]

अब प्रसग यह है कि गीता की मौलिकता किस बात मे है, जिससे पूर्ववर्ती अपने सभी शास्त्रो से अलग विशेषता रखती है। यद्यपि गीता के अविर्भाव के पूर्व भी योग, ज्ञान, भक्ति आदि सभी के दृढ अनुयायी थे तथापि वे सब आपस मे विवाद करते थे क्योकि वे सब अपने अपने द्वारा अपनाये गये मार्गों की सर्वोत्कृष्टता का दावा करते थे। इन सभी पृथक[२] मार्गो मे समन्वय स्थापित करने का कभी किसी ने प्रयास ही नही किया। गीता के रचयिता ने ही सर्वप्रथम उसमे समन्वय लाने का प्रयास किया। तत्कालीन प्रचलित सभी धर्मसम्प्रदायो के सर्वोत्तम तत्वो को उन्होने लिया और गीता मे सूत्रबद्ध कर दिया।

महाभारत मे बतलाया गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने महाभारत रूपी समुद्र का मन्थन कर उसके सार 'गीतामृत' को अर्जुन के मुख मे होम किया–

भारतामृत सर्वस्व गीता या मथितस्य च।

सारमुदाधृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे हुतम्।।

(महाभारत भीष्म पर्व ४३/५)

---

[१] स्वामी विवेकानन्द भगवान श्रीकृष्ण और श्रीभगवद्गीता पृ० २६

महाभारत के शान्ति पर्व मे बतलाया गया है कि यह गीता धर्म, विवस्वान, मनु और इक्ष्वाकु आदि की परम्परा से लोक मे प्रसिद्ध हुआ। गीता के चतुर्थ अध्याय मे बतलाया गया है कि सर्वप्रथम भगवान ने गीता धर्म का उपदेश विवस्वान को दिया।[1] इसके बाद विवस्वान ने मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को दिया यह ग्रन्थ गोपालनन्दन श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को बछडा बनाकर उपनिषद रूपी गायो से दुहा गया अमृतमय दूध है जिसे सुधीजन पीते हैं।[2]

अध्यात्मतत्व का विवेचन गीता मे बडे ही सुन्दर ढग से किया गया है। किन्तु इन सब का समन्वय कर एक निश्चित सिद्धान्त स्थापित करना कुछ दुष्कर कार्य है। इसलिये आचार्य शंकर ने गीता को दुर्विज्ञेयार्थ बतलाते है– "तदिद गीताशास्त्र समस्त वेदार्थ सार सग्रह भूत दुर्विज्ञेयार्थम्।"

गीता मे ब्रह्म के सगुण तथा निर्गुण दोनो रूपो का वर्णन किया गया है किन्तु वास्तव मे ये दोनो रूप आपस मे अभिन्न है।

> सर्वोन्द्रिय गुणाभास सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
> असक्त सर्वभूच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।। (१३/१४)

इस प्रकार गीता यह भी मानती है कि ब्रह्म जगत् की उत्पत्ति स्थिति और लय का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। वह शुद्ध चैतन्य और अखण्ड आनन्द है वह निर्विकल्पक, निरूपाधि और विश्वातीत है। अन्तर्यामी रूप ने वह सारी प्रकृति और समस्त प्राणियो मे वास करता है जिस प्रकार सूत्र मे मणि पिरोयी रहती है उसी प्रकार उस पर ब्रह्म मे यह सारा जगत् अनुस्यूत है।[3]

गीता मे कही–कही ईश्वर के विषय मे उपनिषदो की निष्प्रपञ्चवादी विचार भी

---

[1] महा० शा० पर्व– ३४८/५१–५२

[2] सर्वोपनिषदो गावोदोग्धा गोपालनन्दन। पार्थोवत्स सुधीभोक्ता दुग्ध गीतामृतम महत।।

[3] मयिसर्वमिद प्रोत सूत्रे मणिगणा इव।– गीता ७/७

मिलते है तथापि इसमे उपनिषदो की सप्रपञ्चवादी ब्रह्म की अवधारणा तथा भागवत धर्म के ईश्वरवाद का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। वस्तुत गीता मे इन दोनो विचारधाराओ मे समन्वय करने का प्रयास किया गया है। गीता मे उपनिषदो का परब्रह्म भागवत धर्म के प्रभाव मे शरीरधारी (सगुण) ईश्वर बन जाता है। यह शिव, विष्णु आदि नामो से जाना जाता है। गीता एक ऐसी अनन्त शक्ति मे विश्वास करती है जो सभी सीमित, आदि वस्तुओ मे जीवन का सचार करता है। गीता मे ईश्वर को सब का पिता, माता, मित्र एव सखा भी माना गया है। गीता मे ईश्वर के दो रूपो अर्थात् व्यक्त एवं अव्यक्त का वर्णन किया गया है। परमात्मा के अव्यक्त रूप को शुद्ध, निर्गुण, अव्यक्त, अनादि आदि रूपो मे वर्णित किया गया है। ये भेद हैं– सगुण, सगुण–निर्गुण तथा निर्गुण। परमात्मा के इस अव्यक्त रूप को प्रतिपादित करने वाली गीता का एक कथन इस प्रकार है, "यह परमात्मा अनादि, निर्गुण, तथा अव्यक्त है, इसलिये शरीर मे स्थित रहकर भी न तो कुछ करता है और न लिपायमान होता है" (गीता १३/३१)। गीता मे कुछ कथन भी है जो परमात्मा के व्यक्त रूप की ओर संकेत करते है– जैसा कि कहा गया है।

'प्रकृति ही मेरा स्वरूप है' (गीता ६/८) तथा 'जीवात्मा ही मेरा सनातन अश है' (गीता १५/७)। इन दोनो रूपो मे व्यक्त और अव्यक्त मे अव्यक्त को ही श्रेष्ठ माना गया है तथा इसे ही परमात्मा का सच्चा स्वरूप माना गया है। गीता मे ईश्वर की परा और अपरा दो शक्तियो का विवेचन प्राप्त होता है ईश्वर की परा प्रकृति सीमित तथा सशरीर आत्माओ अर्थात् जीवात्माओ की नियामक हैं और साथ ही यह चेतन है। यह उच्चश्रेणी की है। इसके साथ अपरा प्रकृति जड एव अचेतन है तथा निम्न श्रेणी की है। अपरा प्रकृति के आठ भेदो का भी उल्लेख है– पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहकार अपरा प्रकृति के आठ भेद है।

गीता मे ईश्वर को विश्व का रचयिता माना गया है ईश्वर अपनी माया से इस जगत की सृष्टि करता है। 'माया' ईश्वर की शक्ति है। ईश्वर ही इस जगत का पालक तथा सहारक दोनो है। गीता के ६/१४/३५ मे कहा गया है कि "सम्पूर्ण जगत् का धाता अर्थात् धारण–पोषण करने वाल मै ही हू। सबका नाश करने वाला भी मैं ही हूँ।" गीता और उपनिषदो मे ईश्वर सम्बन्धी विचार को लेकर कुछ मतभेद अवश्य है– क्योकि जहा उपनिषदो मे ब्रह्म के निर्गुण रूप को प्रधानता दी गयी है। वहॉ गीता मे सगुण ब्रह्म को श्रेष्ठ ठहराया गया है। ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप को भी गीता मानती है। 'सारी विभक्त वस्तुओ मे जो अविभक्त होकर वर्तमान है, जिसे न सत् कहा जा सकता है और न ही असत्, जो सूक्ष्म एव दुर्जेय है, जो ज्योतियो की भी ज्योति है एव अन्धकार से परे है जो ज्ञाता और ज्ञेय है"।[१]

दसवे अध्याय मे तथा सातवे और नवें अध्यायो के कुछ स्थलो मे भगवान की विभूतियो का वर्णन है। ससार के सभी सत्–असत् पदार्थ भगवान् ही है।" पृथ्वी मे मैं गन्ध हूँ और सूर्य तथा चन्द्रमा मे प्रकाश। मै सब भूतो का जीवन हूँ और तपस्वियो का तप।' (७/६)।

गीता के ग्यारहवे अध्याय मे विश्वरूप दिखलाकर 'भगवान ने अर्जुन को अपनी विभूतियो और ससार का अपने ऊपर अवलम्बित होने का प्रत्यक्ष अनुभव करा दिया। साथ ही अर्जुन को यह उपदेश भी दिया कि सब कुछ भगवान के ऊपर छोडकर उन्ही के उद्देश्य की पूर्ति के लिये कर्म करना चाहिये। इस प्रकार गीता ने अपने तत्व दर्शन के सिद्धान्त मे साख्यो के प्रतिवाद, उपनिषदो के ब्रह्मवाद, और भागवतो के ईश्वरवाद तीनो का समन्वय कर दिया।

गीता और योग–विचार

---

[१] गीता, १३/१५, १६, १७।

गीता मे 'योग' की परिभाषा अनेक प्रकार से की गयी है– ''समत्व का ही नाम योग है।'' कर्मो मे कुशलता को ही 'योग' कहते है– ''(योग कर्मसु कौशलम्)'' आदि।

गीता मे 'योग' शब्द का सामान्य अर्थ अपने को लगाना या 'जोडना' है। इस प्रकार कर्मयोग का अर्थ हुआ 'अपने को सामाजिक कर्तव्यो की पूर्ति मे लगाना। योग शब्द सम्बन्धवाचक है– आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध, जीव और शिव के समन्वय का सिद्धान्त ही योग कहलाता है। जीव और ईश्वर मे सम्बन्ध के लिये तीन साधन बताये गये है– कर्मयोग, भक्तियोग, और ज्ञानयोग। विभिन्न महात्माओ ने अपने मनीषा के अनुसार गीता मे भिन्न–भिन्न अर्थ का प्रतिपादन किया है। श्री शड्करचार्य निवृत्ति मार्ग के पक्षपाती थे। अत उन्होने गीता मे ज्ञानयोग का प्रतिपादन किया। भगवद् भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ साधन मानने वाले श्री रामानुजाचार्य ने भक्तिमार्ग को श्रेष्ठ बतलाया।

लोकमान्यतिलक प्रभृति विद्वानो ने कर्मयोग को ही श्रेष्ठ बतलाया। तात्पर्य यहा है कि गीता मे इन तीनो का सगम है। पृथक–पृथक वर्णन तो किसी भी शास्त्र मे प्राप्त होते है किन्तु एक साथ समन्वय तीनो मार्गो का केवल गीता मे ही मिलता है यह गीता की महान विशेषता है।

गीता मे मोक्ष प्राप्ति के लिये ज्ञान योग को भी एक साधन के रूप मे वर्णित किया गया है। गीता की मान्यता है कि बन्धन का कारण अज्ञान है अत बन्धन से मुक्त होने के लिये ज्ञान अनिवार्य है। गीता मे दो प्रकार के ज्ञान का वर्णन है– (१) तार्किक ज्ञान, (२) आध्यात्मिक ज्ञान। इस जगत की वस्तुओ के बाह्य स्वरूप को देखकर ज्ञान प्राप्त करना तार्किक ज्ञान है। इसमे ज्ञाता तथा ज्ञेय के बीच द्वैत बना रहता है। इसको एक अन्य नाम विज्ञान से भी जाना जाता है। दूसरा अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान को केवल 'ज्ञान' कहा गया है– इस आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा मनुष्य यह देखने का प्रयास करता है कि सभी वस्तुओ मे एक ही सत्य व्याप्त है। इस ज्ञान

की स्थिति मे ज्ञाता और ज्ञेय का द्वैत समाप्त हो जाता है। गीता मे आध्यात्मिक ज्ञान को ज्यादा महत्व दिया गया है– गीता मे कहा गया है– 'जो ज्ञाता है अर्थात् ज्ञानवान है वह हमारे सभी भक्तो मे श्रेष्ठ है' इस ससार मे ज्ञान के समान पवित्र करने वाला कुछ भी नही है।

गीता मे भक्ति मार्ग का भी महत्वपूर्ण स्थान है। मोक्ष प्राप्ति के लिये भक्तियोग को अपनाया गया है। यह मार्ग अमीर–गरीब, ऊँचे–नीचे सभी लोगो के लिये सुलभ मार्ग है। इस मार्ग का सम्बन्ध व्यक्ति के सवेगात्मक और भावात्मक पक्ष से होता है।

भक्ति के अन्तर्गत व्यक्ति का ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण होता है। भक्तिमार्ग को अपनाने के लिये ईश्वर के सगुण रूप की परिकल्पना अनिवार्य है। क्योकि निर्गुण का ईश्वर भक्ति के लिये उपयुक्त नही होता है।

गीता के १८वे अध्याय मे भक्तियोग का वर्णन किया गया है भगवान कहते है कि 'सभी धर्मो को छोडकर तू मेरे ही शरण मे आओ मैं तुझे सम्पूर्ण पापो से मुक्त कर दूगा, तू शोक मतकर।'

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण ब्रज।

अह त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ।।

(गीता– १८/६६)

श्री रामानुजाचार्य भगवत्प्राप्ति रूप लक्ष्य के लिये भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ बतलाते है उनके मत मे गीता का साराश ज्ञान दृष्टि से विशिष्टाद्वैत तथा आचारदृष्टि से वासुदेव भक्ति ही है। वे भी कर्मसन्यास के ही समर्थक माने जा सकते है क्योकि कर्म आचरण से चित्तशुद्धि के सम्पन्न हो जाने पर प्रेमपूर्वक वासुदेवभक्ति मे तत्पर रहने से सासारिक कर्म का निष्पादन सभव नही होता है।

कर्मयोग का गीता मे महत्वपूर्ण स्थान है। लोकमान्य तिलक प्रभृति गीता को कर्मयोग शास्त्र ही मानते है, भगवान श्रीकृष्ण ने गीता मे अर्जुन को कर्मयोग का ही उपदेश दिया है। अतेव कर्मयोग ही गीता का मुख्य विषय है। अर्जुन को उपदेश देते समय स्वय भगवान ने कहा है कि यह कर्मयोग का रहस्य बडा कठिन है। (गहना कर्मणोगति) (४/१७)। और अन्त मे भगवान के उपदेश से प्रभावित होकर अर्जुन युद्ध के लिये तैयार हुये। अर्जुन के माध्यम से श्रीकृष्ण ने सभी लोगो को कर्मयोग का पाठ पढाया है। गीता से बहुत पूर्व मीमासको ने कर्म के महत्व को समझा। मीमांसको के अनुसार वेद का कर्मकाण्ड ही उपयुक्त है और ज्ञानकाण्ड अनुपयुक्त है। जैमिनी ने स्पष्ट रूप मे कहा कि– आम्नाय (वेद) का मुख्य प्रयोजन कर्म का प्रतिपादन है अत उससे भिन्न ज्ञानप्रतिपादक वाक्य निरर्थक है। 'आम्नायस्य क्रियार्थत्वाद् आनर्थक्यम तदर्थानाम्।' (मीमासा सूत्र १/२१) गीता मे कर्मयोग को ही श्रेष्ठ माना गया है। डा० राधाकृष्णन के अनुसार 'कर्मयोग ही गीता का मुख्य मौलिक उपदेश है।'

गीता यह मानती है कि ईश्वर स्वय कर्मठ है अत ईश्वर से मिलने के लिये कर्ममार्ग को अपनाया जा सकता है। कर्म से आशय व्यक्ति के शुभ आचरण से है। शुभआचरण से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। गीता मे मनुष्य को कर्म के प्रति सचेत किया गया है किन्तु कर्मों के फल की चिन्ता से पूर्णतया मुक्त रहने का आदेश दिया गया है।

ईश्वर के प्रति सभी कर्मो को अनासक्त हो करना ही कर्मयोग है। अर्थात् आसक्ति रहित कर्म का उपदेश गीता मे श्रीकृष्ण ने दिया है। आसक्ति रहित कर्म का अर्थ लोग कई तरह से करते है। कुछ लोगो के अनुसार अनासक्त होने का अर्थ है निरभिप्राय हो जाना। यदि यह अर्थ स्वीकार भी कर लिया जाय तो हृदयहीन पशु और दीवारें निष्काम कर्म के सम्पादन के सबसे बढिया उदाहरण है। किन्तु सत्य तो यह है

कि सच्चे निष्काम कर्मी को न तो पशु बनना है, न जड, न हृदयहीन। वह तामसिक नही बल्कि विशुद्ध सात्विक होता है। उसका हृदय प्रेम और सहानुभूति से इतना ओत–प्रोत होता है कि वह अपने प्रेम से समूचे विश्व को एक सूत्र मे बॉध सकता है।

धर्म के विभिन्न मार्गो का समन्वय और नि स्पृह या निष्काम कर्म ये गीता की दो प्रमुख विशेषताए है। कर्मयोगी के लिये स्वकर्म ही स्वधर्म है। भगवान कृष्ण ने कहा है कि सभी वर्णो के कर्म निश्चित है। ईश्वर सभी कर्मो से आसक्त नही है फिर भी इस प्रकार का कथन (वक्तव्य) करने के बावजूद समाज के वर्ग विभाजन को पवित्र करने के लिये ईश्वर का आह्वान किया गया है। "चातुर्वर्ण्य मया सृष्टि गुण कर्म विभागश ।" अपने जन्म के अनुसार मनुष्य को जो कर्तव्य पूरे करने है उससे मनुष्य को कभी भागना नही चाहिये। भले ही इसके लिये हिसा अथवा अप्रिय कार्यो का मार्ग अपनाना पडे। क्षत्रिय का कर्तव्य जहां युद्ध करना निश्चित किया गया है वहा शूद्रो का कर्तव्य ब्राह्मण और क्षत्रियो की सेवा करना था। गीता का अध्ययन करने से पता चलता है कि तत्कालीन चातुर्वर्ण्य व्यवस्था वर्गहीन, आदिम, कबीली समाज से आगे बढा हुआ कदम था। बर्बरता से सभ्यता की ओर समाज को आगे बढाने वाली ऐतिहासिक आकाक्षा को ही गीता ने स्वय परमात्मा द्वारा प्रणीत बताकर, उसे आदर्शपूर्ण बना दिया। यह शायद उस समय के समाज की महती आवश्यकता भी थी। कारण यह कि आदिम वर्गहीन समाज से वर्गवाले समाज मे रूपान्तरण तथा वर्णाश्रम व्यवस्था के सुदृढीकरण को शक्तिशाली प्रतिरोध का सामना करना पड रहा था।

निष्काम कर्म ही कर्मयोग है, कर्म सकाम और निष्काम के भेद से दो प्रकार का है। सकाम कर्म जो है इसके करने से बन्धन उत्पन्न होताहै। निष्काम कर्म करने से बन्धन का उच्छेद होता है। सकाम कर्म फलाकाक्षा के वशीभूत होकर करते है और उसी के अनुसार शुभ और अशुभ परिणाम को भोगता है। तथा श्वेता० मे इस प्रकार के

सकाम कर्म को नाना पोतियो मे भ्रमण का कारण माना गया है। निष्काम कर्म करने से बन्धन नही होता है। गीता का उपदेश है कि मानव का अधिकार केवल कर्म करने मे है उसके फल मे नही। फल की आकाक्षा से कभ कर्म मत करो। तथा अकर्म मे– कर्म के न करने मे कभी तुम्हारी इच्छा न होनी चाहिये।

कर्मण्येवाधिकरस्ते मा फलेषु कदाचन्।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते सड्गोऽस्त्वकर्मणि।।

(गीता २/४७)

इस श्लोक को कर्मयोग का महामत्र कहा जाता है। आचार्य बल्देव उपाध्याय ने लिखा है कि इस श्लोक के चारो पदो को हम कर्मयोग की 'चतु सूत्री' कह सकते हैं।'

गीता यह उपदेश नही देती है कि प्राणी को कर्म का त्याग करना चाहिये प्रत्युत् यह उपदेश देती है कि कर्म के फल का त्याग करना चाहिये। कोई भी व्यक्ति बिना कर्म किये एक क्षण भी नही रह सकता है। यदि कोई ऐच्छिक कर्म नही करता है तो उससे स्वत ही अनैच्छिक कर्म होते रहते है– इसलिये कर्मयोग अकर्मण्यता की शिक्षा नही देता है– काम्य कर्मो के त्याग को सन्यास कहते है–

काम्याना कर्मणा न्यासं सन्यास कवयो विदु।
सर्वकर्मफलत्याग प्राहुस्त्याग विचक्षणा।। (गीता १८/२)

ईश्वरीय कर्म ही अनासक्त कर्म है जिस मनुष्य मे आसक्ति का अभाव है, वह पुरूष कर्म करता हुआ भी जल मे कमल के पत्ते के समान पाप से लिप्त नही होता है।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सड्गा त्यक्तवा करोति य।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।। (गीता ५/१०)

अनासक्त भाव होकर अपने कर्तव्य को पूरा करने वाला साधक ही सच्चा कर्मयोगी होता है जो परमात्मा को प्राप्त करता है।[1]

गीता (६/२७) मे श्री कृष्ण द्वारा स्पष्ट कहा गया है कि– 'जीव जो कुछ करे, खाये, आहुति दे दान करे या तपस्या करे, उन सबको भगवान् को समर्पण कर दे। इसका फल यह होगा कि, कर्मबन्धन शुभाशुभ फलो से मुक्त हो जायेगा। इस प्रकार कर्मयोग की निष्पत्ति होती है।

निष्काम कर्म का आचरण ही स्वकर्म है और यही स्वकर्म स्वधर्म है इस स्वकर्म या स्वधर्म के आचरण से मानव को सिद्धि प्राप्त होती है– 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः ससिद्धि लभते नर'। ज्ञानी पुरूष आसक्ति से रहित होकर कार्यो का आचरण कर्तव्यबुद्धि से 'लोकसग्रह' हेतु करता है (३/२५)। कोई भी अच्छा काम ऐसा नही होता कि जिसमे बुराई का कुछ न कुछ सम्पर्क न रहता हो। जैसे अग्नि धूए से आवृत्त रहती है, उसी प्रकार कर्म मे कोई न कोई दोष लगा ही रहता है। हमे ऐसे कार्यो को ही करना चाहिये जिसमे बुराई कम हो और अच्छाई ज्यादा हो। अर्जुन ने भीष्म और द्रोण का वध किया। यदि यह वध अर्जुन द्वारा न किया जाता तो दुर्योधन पर विजय प्राप्त नही होती। तब अच्छाई पर बुराई की शक्ति जीत जाती और देश पर संकट के काले बादल छा जाते और देश की जनता पर दुर्भाग्य की कालिमा फेल जाती।

इसी से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक कर्म मे कुछ न कुछ दोष अवश्य रहता ही है जो अपना क्षुद्र अह भाव भुलाकर कार्य करता है उन पर इन दोषो का प्रभाव नही पडता है क्योकि वे सम्पूर्ण भलाई के लिये कार्य करते है। गीता मे भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मयोग के इसी रहस्य की शिक्षा दी है।

[1] तस्मादसक्त सतत कार्य कर्म समाचार। असक्तो ह्यचरन् कर्म परमाप्नोति पुरूष ।। (गीता ३/१९)

स्वामी विवेकानन्द अपनी पुस्तक मे लिखते है कि 'भगवदगीता मे हमे इस बात का बारम्बार उपदेश मिलता है कि हमे निरन्तर कर्म करते रहना चाहिये। कर्म स्वभावत सत्–असत् से मिश्रित होता है। हम ऐसा कोई भी कर्म नही कर सकते है, जिससे कही कुछ भला न हो और ऐसा भी कोई कर्म नही है जिससे कही न कही कुछ हानि न हो। प्रत्येक कर्म अनिवार्य रूप से गुण–दोष से मिश्रित रहता है परन्तु फिर भी शास्त्र हमे सततकर्म करते रहने का ही आदेश देते है। सत् और असत् दोनो का अपना अलग–अलग फल होगा। 'सत् कर्मो का फल' सत् होगा और असत् कर्मो का फल असत्। परन्तु सत् और असत् दोनो ही आत्मा के लिये बन्धन स्वरूप हैं। इस सम्बन्ध मे गीता का कथन है कि यदि हम अपने कर्मो मे आसक्त न हो तो हमारी आत्मा पर किसी प्रकार का बन्धन नही पड सकता है।''[1]

गीता मे कहा गया है कि दुख का एकमात्र कारण यह है कि हम आसक्त है हम बद्ध हो जा रहे है। इसलिये गीता मे उपदेश है कि निरन्तर कर्म करते रहो, पर आसक्त मत होओ। बन्धन मे मत पडो। प्रत्येक वस्तु से अपने आपको स्वतत्र बना लेने की शक्ति स्वय मे संचित रखो। वह वस्तु तुम्हे बहुत ज्यादा प्यारी ही क्यो न लगे तुम्हारा प्राण उसके लिये चाहे जितना ही लालायित क्यो न हो फिर भी इच्छानुसार उसका त्याग करने की अपनी शक्ति मत खो बैठो।[2]

श्रीकृष्ण अर्जुन के मोह का निराकरण करते हुये कहते है कि ''नैतत्त्वयुपपद्यते'' यह तुम्हारे योग्य नही है। तुम अविनाशी आत्मा हो, सब दोषो से परे हो। अपनी सत्य प्रकृति को भूलकर और अपने को पापी समझकर, तुमने अपने को वैसा बना लिया है जैसा कि कोई शारीरिक पापो तथा मानसिक शोक से पीडित हो– यह तुम्हारे योग्य नही है। भगवान इस प्रकार कहते है–''क्लैब्य मा स्म गम पार्थ'' हे पृथा पुत्र!

---

[1] स्वामी विवेका० भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता। पृ०–६३

[2] स्वामी विवेकानन्द भगवान श्रीकृष्ण की भगवद्गीता।

नपुसकता को न प्राप्त हो। दुनियॉ मे न तो पाप है, न दुख है, न रोग है, न शोक है यदि दुनियॉ मे कोई ऐसी वस्तु है जिसे पाप कहा जा सकता है तो वह है भय। अपने अन्दर से भय को निवृत्त कर देना चाहिये।

गीता का दार्शनिक सिद्धान्त

गीता का प्रमुख दार्शनकि सिद्धान्त है कि जो असत् है उसका भाव नही हो सकता और जो सत् है उसका अभाव नही हो सकता है–

'नासतो विद्यते भाव नाभावो विद्यते सत'। (गीता- २/१६)

सत् से तात्पर्य है कि जो त्रिकाला बाधित सत् हो अर्थात् जो भूत, वर्तमान, भविष्य तीनो कालो मे सर्वदा, सदा, नित्य, एक रस और अपरिवर्तनशील रहे। यह लक्षण शुद्ध आत्मतत्व या ब्रह्म का है और वही 'सत्' है। गीता मे आत्मतत्व के लिये नित्य अविनाशी, अज, अव्यय, सर्वगत, अचल, सनातन, अव्यक्त, अचिन्त्य आदि शब्द प्रयुक्त किये गये हैं।[1]

आत्मा ही नित्य है उसी आत्मा के अतिरिक्त सभी अन्य नश्वर है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति पुराने जीर्ण वस्त्रो को उतारकर दूसरे नये वस्त्रो को पहन लेता है उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोडकर नये शरीर को धारण करता है यथा– 'नवानि देही   २/२२

आत्मा को अमर माना गया है शरीर नाशवान है इस स्थिति में आत्मा की अमरता को सिद्ध करने के लिये पुनर्जन्म की धारणा प्रस्तुत की गयी है। इस आत्मा को शस्त्र काट नही सकते है और इसको आग जला नही सकती है इसको पानी भिगा या गला नहीं सकता और वायु सुखा भी नही सकती है।[2]

---

[1] गीता २/२०
[2] गीता

गीता मे मोक्ष प्राप्त करने अथवा पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त होने के उपायो का भी वर्णन किया गया है। मो क्ष की प्राप्ति तभी हो सकती है जब जीवात्मा अपने इन्द्रियो पर नियत्रण रखे। गीता मे इन्द्रियो को नियत्रित करने का ही उपदेश है इन्द्रिय निग्रह का नही है। मोक्ष के लिये गीता मे बताये गये तीनो मार्गो मे से कर्म–ज्ञान–भक्ति मे से किसी एक मार्ग को अपनायाजा सकता है।

समालोचना

गीता मे यह बात ध्यातब्य है कि भगवद्गीता का आदर्शवाद यद्यपि अवैज्ञानिक और एक पक्षीय है तो भी ससार से पलायन पर नही वरन् साहस के साथ जीवन की समस्याओ का सामना करने पर आधारित है। उसमे अन्धविश्वास पूर्ण कर्मकाण्डो अथवा मन की निष्क्रियता का समर्थन नही किया गया है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि कोई भी व्यक्ति इस ससार से विमुख होकर पूर्णता नही प्राप्त कर सकता है। कर्म का त्याग नही वरन् निष्काम भाव से किया गया कर्म ही सुख प्रदान करता है।

निष्काम कर्म के इस सिद्धान्त को सत्तारूढ वर्गो ने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को कायम रखने के लिये प्रयुक्त किया जब कि समाज के कुछ प्रगतिशील अगो ने इसका ही एक नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के सघर्ष के लिये इस्तेमाल किया।

गीता नास्तिक व्यक्तियो मे अनेक दुर्गुणो को गिनाती है जैसे पाखण्ड, घमण्ड, क्रोध, अदम्य वासना और अज्ञान। कृष्ण इन तामसी गुणो को उन्मूलन करने का और दैवी गुणो को विकसित करने का उपदेश देते है। गीता ऐसे वैयक्तिक गुणो को समाज की नैतिक आवश्यकताओ और नीति सम्बन्धी नियमो के साथ सम्बद्ध करती है।

केο दामोदरन ने अपनी पुस्तक 'भारतीय चिन्तन परम्परा'' मे लिखा है कि 'गीता ने किसी नये सिद्धान्त अथवा किसी नई दार्शनिक विचार प्रणाली का प्रतिपादन नही

किया। यह उस समय प्रचलित विभिन्न विरोधी विचारो को एक ही दार्शनिक प्रतिज्ञापत्र मे बाधने की कोशिश थी।'

अत इसकी रचना मे विभिन्न सम–सामयिक विचारो के प्रभाव को देखा जा सकता है। वेदान्त सिद्धान्त के साथ–साथ साख्य अवधारणाओ कर्म के सिद्धान्त के साथ ही ज्ञान, भक्ति और सन्यास सबको ही कृष्ण ने अर्जुन के सदेहो का निवारण करने के लिये इस्तेमाल किया। परन्तु इसमे सबसे महत्वपूर्ण स्थान साख्य को दिया गया गीता मे भृगु को जहा सबसे बडा ऋषि माना गया है वहा कपिल को श्रेष्ठ सिद्ध माना गया है। इस प्रकार गीता, जो स्वामी विवेकानन्द के शब्दो मे, 'उपनिषदो से सगृहीत आध्यात्मिक सत्यो के मनोरम पुष्पो का सुन्दर पुष्प गुच्छ है।'

तृतीय–अध्याय

शकर पूर्व वेदान्त

खण्ड–(क)

योग वासिष्ठ (सक्षिप्त परिचय)

शड्कराचार्य का समय ८ वी सदी माना जाता है, किन्तु शड्कराचार्य से पूर्व भी वेदान्त के अनेक आचार्य हुये है जिनके नामो का स्पष्ट उल्लेख मिलता है किन्तु कृतियॉ उपलब्ध नही है।

'वसिष्ठ मुनि' के '<u>योगवाशिष्ठ</u>' नामक दार्शनिक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि शकराचार्य के पूर्व ही वेदान्त मत का साधारण विवेचन इस ग्रन्थ मे हो चुका था। यह इस बात से भी प्रमाणित हो जाता है कि वेदान्त के विद्यारण्य जैसे परवर्ती लेखको ने अपनी कृतियो मे इस ग्रन्थ के श्लोको को यत्र–तत्र उद्धृत किया है। यथा 'विद्यारण्य' ने अपने ग्रन्थ 'पञ्चदशी' मे जीवन <u>मुक्ति विवेक प्रकरण</u> मे इस ग्रन्थ के ३५३ श्लोक उद्धृत किये है।

प्राचीन वेदान्त के प्रमुख ग्रन्थो मे योगवाशिष्ठ का प्रमुख स्थान है। यद्यपि योगवाशिष्ठ के रचना काल के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है, क्योकि सस्कृत साहित्य के लेखक एव मनीषीगण अपने विषय मे सर्वथा मौन ही है। भारतीय भाषा के लेखक इतने से ही सतुष्ट रहते है कि उनकी रचना ही उनको भारतीय सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है।

<u>डा० भीखनलाल आत्रेय</u> इसका रचनाकाल ५०० ई० से लेकर ६५० ई० तक के बीच का समय मानते है। उनके मत के अनुसार यह शकराचार्य के पूर्व का ग्रन्थ है। डा० एस० एन० दास गुप्ता इसको ७०० से ८०० की कृति स्वीकार करते है।

डा० एस० दीवान जी इसका रचनाकाल ८८५ से ६७५ ई० के मध्य का बतलाते है। एस० पी० खट्टाचर्य १००० से १२०० ई० तक के बीच का इसका समय मानते है और वी० राघवन ११०० से १२५० ई० तक का मानते है।

योगवाशिष्ठ के रचनाकाल निर्धारण के मतभेद को निम्न तथ्यो के आधार पर दूर किया जा सकता है–

१ काश्मीर के अभिनन्द गौण ने योगवासिष्ठ का सक्षिप्त सस्करण ६वीं शताब्दी मे तैयार किया था जिसका नाम 'लघुयोगवासिष्ठ' है। अत योगवासिष्ठ की रचना इसके पूर्व अवश्य हुई होगी।

२ प्रो० एस० पी० भट्टाचार्य ने योगवासिष्ठ के ऊपर कश्मीरी शैवमत के त्रिक सम्प्रदाय का प्रभाव परिलक्षित हुआ माना है।

योगवासिष्ठ मे मायावाद को स्वीकार नही किया गया। आभासवाद, कल्पनावाद, क्रियाशक्तिावाद, स्पन्दवाद तथा काश्मीर शैवमत के ३६ (छत्तीस) तत्त्वो की स्वीकृति आदि त्रिक सम्प्रदाय के मतो को स्वीकार किया है।

३ पी० सी० दीवान ने रचनाकाल के निर्धारण के विषय मे कहा है कि सर्वज्ञात्मुनि के सक्षेप शारीरिक के द्वितीय अध्याय के १८२वे श्लोक मे योगवाशिष्ठ का सकेत किया गया है। इस सस्करण से यह निश्चित होता है कि इसकी रचना "सक्षेपशारीरिक" के पूर्व हुई होगी।

४ जर्मन विद्वान डा० विन्टर नित्स ने लिखा है कि योगवासिष्ठ के एक सारग्रन्थ की रचना 'गौड अभिनन्द' ने ६वी सदी के मध्य की थी। अत यह स्पष्ट होता है कि योगवासिष्ठ की रचना इससे पूर्व हो चुकी थी। आचार्य शड्कर ने इसकी चर्चा नही की है इसलिए योगवासिष्ठ शड्कराचार्य के किसी समकालीन लेखक ने की होगी" अलएव इसके रचनाकाल के विषय मे एस० एन० दास गुप्त का मत अधिक

समीचीन है। इस प्रकार विद्वानो का एक बडा वर्ग इसे शङ्कराचार्य के पूर्व का ग्रन्थ मानता है। योगवासिष्ठ के काल निर्धारण के विषय मे जो कठिनाई है। उसका मुख्य कारण है कि उसके कई सस्करण निकले थे। जो सबसे प्राचीन संस्करण है उसका नाम है 'मोक्षोपाय' है–मोक्षोपायाभिधानेय सहिता सारसमिता 'त्रिशदेद्वेव च सहस्राणि ज्ञाता निर्वाणदायिनी'।। (यो० वाशिष्ठ २।१७।६)

योगवासिष्ठ का रचनाकाल सदिग्ध तो है ही। लेखक भी दोलायमान है। वस्तुत ज्ञानालोक की कसौटी पर इसको देखा जाय तो यही कहना पडेगा कि इसकी विषय वस्तु शाश्वत सनातन है और नवपरिधान काल और व्यक्तिविशेष की देन है।[१] योगवाशिष्ठ को कई अन्य नामो से भी जाना जाता है यथा– वासिष्ठ, वासिष्ठ रामायण, योगवासिष्ठ रामायण, महारामायण, आर्षरामायण, ज्ञानवाशिष्ठ और मोक्षोपाय। इसको माहारामायण कहने का कारण है कि यह रामायण से आकार मे यह बहुत बडा है। यह सिद्धावस्था का ग्रन्थ है। स्वामी रामतीर्थ ने इसे वेदान्त के सभी ग्रन्थो का शिरोमणि कहा है।

आचार्य वलदेव उपाध्याय ने लिखा है– "इस प्रकार ग्रन्थ के उपक्रम और उपसहार के द्वारा सिद्ध होता है कि इसके लेखक वाल्मीकि हैं। किन्तु यहा वाल्मीकि रामायणकार वाल्मीकि नही है। वे कालिदास के पूर्ववर्ती हैं और योगवासिष्ठकार कालिदास के उत्तरवर्ती है। फिर चाहे योगवासिष्ठ के जो भी लेखक हो इसको वासिष्ठ का दर्शन माना जाता है। अद्वैत वेदान्त की गुरु परम्परा मे वसिष्ठ का नाम ब्रह्मसूत्रकार व्यास के पहले आता है। योगवासिष्ठ के विचारो को उन्ही पर आरोपित

---

[1] सस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास (दशमखण्ड), प्रधान सपादक आचार्य वलदेव उपाध्याय– पृ०– ५५७ प्रकाशन– उत्तर–प्रदेश सस्कृत सस्थान लखनऊ।

किया जाता है।"[1] योग वासिष्ठ मे ३२ हजार श्लोक हैं जो छ प्रकरणो मे बटा है। ये प्रकरण है– १ वैराग्य २ मुमुक्ष व्यवहार ३ उत्पत्ति ४ स्थिति ५ उपशम और ६ निर्वाण

इहवैराग्यमुमुक्षुव्यवहारोत्पत्तिकास्थितय ।

उपशमनिर्वाणाख्ये वासिष्ठेषट्प्रकरणानि।।[2] (लघुयोगवासिष्ठ– ६।१८।८४)

योगवासिष्ठ की रचना शैली पुराणो की तरह मिलती जुलती है, किन्त पुराणो के पञ्चलक्षण नही मिलते है। वैसे उसमे ज्ञानमार्ग और समाधि अवस्था के वर्णन आख्यानो द्वारा श्लोको मे किये गये है। डा० भीखन लाल आत्रेय ने अपने 'ग्रन्थ फिलासफी आफ योगवाशिष्ठ' से अपने वचनो को उधार लिया है। इस प्रकार सिद्ध होता है कि योगवासिष्ठ एक वेदान्त ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के कल्पनावाद और अजातिवाद शब्द गौणपाद कारिका से साम्य रखते है। किन्तु मुख्य अन्तर है कि यह ग्रन्थ किसी एक सम्प्रदाय विशेष की तरफ सकेत नही करता है। इस प्रकार यह ग्रन्थ सातवी शताब्दी मे लिखा गया होगा ऐसा विद्वानो का मत है।

टीकाऍ– योगवासिष्ठ पर कई टीकाऍ हैं जिनमे निम्नलिखित मुख्य हैं।

१ गगाधरेन्द्रसरस्वती के शिष्य आनन्दबोधेन्द्र सरस्वतीकृत 'तात्पर्यप्रकाश' (१८५ ई० मे लेखक ने इसे लिखा था)

२ नरहरि के पुत्र अइयारण्यकृत 'वासिष्ठरामायण चन्द्रिका'।

३ माधव सरस्वती कृत 'पदचन्द्रिका'।

४ रामदेवकृत 'योगवासिष्ठ व्याख्या'।

६ 'योगवासिष्ठतात्पर्यसग्रह' (अज्ञातकर्त्तृक)

इसके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है यथा– बृहद्योगवासिष्ठ, लघुज्ञानवासिष्ठ, योगवासिष्ठ, गौडकृतअभिनन्दकृत लघुयोगवासिष्ठ (९वी शदी)

---

[1] योगवासिष्ठ – डा० महाप्रभुलाल गोस्वमी– पृ० ११

[2] आभिनन्दगौणकृत लघुयोगवासिष्ठ प्रेस निर्णयसागर बम्बई १६३७।

योगवासिष्ठसार, रामानन्दतीर्थकृत वासिष्ठसार, आत्मसुखकृत चन्द्रिका, मुमुक्षुदेवकृत ससारतरिणी आदि।

दार्शनिक सिद्धान्त

१. परमसत् का स्वरूप

योगवासिष्ठ सत् को एक और अद्वितीय मानता है। सभी की आत्मा होने के कारण वह सर्वात्मा सर्वव्यापी सत् है। वह स्वत स्थित है। अर्थात् वह निरपेक्ष सत् है सभी उसका अनुभव करते है–

दिक्कालाद्यनवच्छिन्न परमात्मास्ति केवल ।

सर्वात्मत्वात्स सर्वात्मा सर्वानुभवत स्वत ।।(योगवसिष्ठ ३।८।८१)

आत्मा अवाङ्गमनसगोचर है। इसके विभिन्न नाम है, यथा– आत्मा, पुरुष, ब्रह्म, विज्ञान, शून्य आदि सब कल्पित है। अर्थात् वह अनाम है। योगवासिष्ठ मे परमब्रह्म को जगत की उत्पत्ति और लय का कारण बतलाया गया है।

यत सर्वाणि भूतानि प्रतिभान्ति स्थितानि च।

यत्रैवोपशम यान्ति तस्मै सत्यात्मने नम ।। (योग वासिष्ठ १/१/१)

परमशुभ या नि श्रेयस होने के कारण ब्रह्मको शिव कहा जाता है। चित् ही शिव है। उसकी शक्ति ही स्पन्द है। वह सत्, चित्, आनन्द स्वरूप है। उसका ज्ञान केवल अनुभव जन्य है, ब्रह्म का वर्णन सभव नही है, वह न चेतन है और न जड है। उसे न तो सत् कहा जा सकता है और न जड है। उसे न तो सत् कहा जा सकता है और न असत् 'न चेतनो न च जडो न चैवासन्नसन्मय'। एन० के० देवराज ने अपने ग्रन्थ भारतीय दर्शन मे आत्मा से सम्बन्धित योगवासिष्ठ का उदाहरण दिया है कि– "आत्मा ही आत्मा का प्रिय मित्र है और आत्मा ही आत्मा का वैरी है। यदि आत्मा ही आत्मा की

रक्षा करता तो दूसरा कोई उपाय नही है।[1] अत आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए परमपुरुषार्थ करना चाहिये।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन ।
आत्मात्मना न चेतत्रातस्तदुपायोऽस्ति नेतर ।।

योगवासिष्ठ मे परमसत् से सम्बन्धित श्लोको के विषय मे कुछ विद्वानो का कथन है कि योगवासिष्ठ वेदान्त प्रच्छन्न या प्रकट बौद्धमत है, क्योकि उसने ब्रह्म, शून्य और विज्ञान का अभेद किया है। परन्तु यह योगवासिष्ठ की उक्ति तथा युक्ति का अनर्थ है। उसने केवल एक समन्वय दर्शन दिया है जिसमे बौद्ध ही नही अपितु साख्य, न्याय, मीमासा आदि का भी समन्वय है। यद्यपि योगवासिष्ठकार पर बौद्ध मत का प्रभाव है तथापि वह प्रच्छन्न बौद्ध नही है। वह शुद्ध निर्विशेष ब्रह्मवादी है।

जगत

योगवसिष्ठ मे जगत को केवल कल्पना मात्र कहा जाता है। जगत् के समस्त भौतिक पदार्थ शशश्रृंग के समान असत् है। इसका वाह्य अस्तित्व न होकर द्रष्टा के भीतर भी होता है। जाग्रत और स्वप्नावस्था मे कोई अन्तर नही है, बल्कि तादात्म्य है, जिस प्रकार स्वप्न का अनुभव होता है। उसी प्रकार जगत का भी होता है।[2] जगत के समस्त दृश्य जड पदार्थ स्वय द्रष्टा भी है। जीव ही समस्त पदार्थो का अनुभव करता है। क्योकि ससार के सभी पदार्थ ब्रह्ममय है। जगत और द्रष्टा एक एक दूसरे से भिन्न नही नही है। क्योकि नियम है कि एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न वस्तुओ मे सम्बन्ध स्थापित नही किया जा सकता है सम्पूर्ण न आदि मे था न अन्त मे रहेगा। अत वह वर्तमान मे भी असत् है। वस्तुत वह मनोविलासमात्र है– 'मनोदृश्यमिद जगत'। जगत

---

[1] एन० के० देवराज भा० दर्शन पृ० ४६३ उ० प्र० सस्थान लखनऊ।

[2] यथा स्वप्नस्तथा चित्त जगत्सदसदात्मकम्। न सन्नासन्न सजातश्चेतसो जगतो भ्रम ।। योगवासिष्ठ ३।६५–५।६

स्वप्न या मृगतृष्णा है– 'मनसा कल्पित सर्व देहादिभुवनत्रयम्' (योगवसिष्ठ ४।४५।५) परमार्थत एक मात्र अद्वितीय ब्रह्म ही सत् है।

जीव

जो जीवित और चेतन युक्त है वह जीव और अनादि और अनन्त है। इस जीव की स्वाभाविक उत्तपत्ति ब्रह्म से हुई है। जीवो की सख्या असंख्य है। अनाख्य सत् से चित् का विभ्रम पैदा होता है, चित् से जीवत्त्व का, जीवत्त्व से अहकार का, अहकार से चित्त का, चित्त से इन्द्रियादि का और इन्द्रियादि से देहादि का विभ्रम पैदा होता है। सत् स्वरूप आत्मा के अतिरिक्त और सभी कुछ भ्रम है, मिथ्या है। जीव का सार आत्मा का स्पन्द है। स्पन्द के कारण ही जीवत्त्व की प्रतीति होती है। जीव को ही मन, चित्त या बुद्धि कहते है।

"जीवित्युच्यते लोके मन इत्यपि कथ्यते।

चित्तमित्युच्यते सैव बुद्धिरित्युच्यते तथा"।। योगवासिष्ठ ३।६६।३४

जीव सात प्रकार के होते है–

१ **स्वप्न जाग्रत**– जो स्वप्न देखते है उनको यह जगत स्वप्न लगता है। वह स्वय अपने को स्वप्न–पुरुष समझते है।

२ **सकल्प जाग्रत**– जो अनिद्रालु तथा सकल्पपरायण है वे सकल्प जाग्रत जीव है।

३ **केवल जाग्रत जीव**– कल्पान्तर के जाग्रत सस्कार से जिन जीवो को स्वप्न नही दीखता वे केवल जाग्रत है। वे स्वप्न हेतु को विनष्ट किये हुये है।

४ **चिर जाग्रत**– जो जीव जन्म जन्मान्तरो से उत्तरोत्तर जाग्रत अवस्था को प्राप्त कर रहे है वह चिर जाग्रत है।

५ **घनजाग्रत**– घन जाग्रत वे जीव होते है जो जाग्रत अवस्था मे अपनें दुष्कर्म से जडभूत हो गये है। ये पॉचो प्रकार के जीव बद्धजीव हैं।

६ **जाग्रत स्वप्न–** ये वो जीव है जो बन्धन से मुक्त हैं इस प्रकार के जीवो को शास्त्रज्ञान से अथवा सत्सग से ज्ञात हो जाता है कि यह जगत् स्वप्न है। ये परमपद या परमार्थ प्राप्ति मे लीन रहते है।

७ **क्षीण जाग्रत–** ये वो जीव होते है जो तुरीयावस्था को प्राप्त कर लेते हैं उन्हे आत्मबोध ये ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाता है, वे पूर्णतया जीवनमुक्त हैं।

इस प्रकार जाग्रत स्वप्न स्वप्न और क्षीण, जाग्रत से दो प्रकार के जीवन मुक्ति की अवस्था के जीव है। योगवासिष्ठ के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 'दृष्टि सृष्टिवाद' ही मुख्य सिद्धान्त है। योगवासिष्ठ के कल्पनावाद और बौद्धविज्ञानवाद मे बहुत कुछ साम्य परिलक्षित होता है। इस प्रकार योगवासिष्ठ का जगत एव मुक्ति सम्बन्धी सिद्धान्त भी अद्वैतवाद का पोषक है।

बन्धन और मोक्ष

जगत् के पदार्थो के प्रति वासना के प्रबल होने को बन्धन कहा गया है। इस प्रकार वासना ही बन्धन का मुख्य कारण है। जब जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है तब वह बन्धन मे पड जाता है। इस बन्धन का कारण अज्ञान है। दृश्य सद्भाव ही बन्धन है। दृश्य का अभाव मोक्ष है। बन्धन और मोक्ष दोनो का कारण मन है। जब मन इन्द्रियादि विषयो का ताना–बाना तानता है तब वह बन्ध है। पुन जब वह विचार पूर्वक सामान्य का अनुसन्धान करता है तो मोक्ष है। 'मोक्ष एव मनुष्याणा कारण बन्ध मोक्षयो'। यह वर्तमान जीवन मे भी सभव है। क्योकि यह ज्ञान की अवस्था है। यह जीवनमुक्ति की अवस्था मे होता है।

योगवासिष्ठ मे सदेह और विदेह नाम से दो मुक्तियो का वर्णन है सदेह मुक्ति को जीवन मुक्ति कहा गया है। शरीर त्यागने पर प्राप्त होने वाली दशा को विदेह

मुक्ति कहते है।[1] ज्ञान को मोक्ष प्राप्ति का मुख्य उपाय कहा गया है। ज्ञान ही वह साधन है जिसके द्वारा परम सिद्धि की प्राप्ति होती है। आत्मा को ही मोक्ष–प्राप्ति का साधन बतलाया गया है।

योगवासिष्ठ मे अद्वैतवाद और पातञ्जलयोग का समन्वय परिलक्षित होता है। उसमे योग वेदान्त है। योग और ज्ञान ये दो चित्त नाश के उपाय या क्रम है।

'द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञान च राघव'।

योगस्तदवृत्ति विरोधो हि ज्ञान सम्यग्वेक्षणम्।।[2]

योगवासिष्ठ और शाङ्कर अद्वैतवेदान्त

आरम्भ मे शाड्कर अद्वैत वेदान्त का विकास योगवासिष्ठ से पूर्णतया निरपेक्ष था। प्रारम्भिक अद्वैत वेदान्ती योगवासिष्ठ को अपने सम्प्रदाय का ग्रन्थ मानने से इनकार करते थे। किन्तु विद्यारण्य स्वामी के समय से लेकर आज तक योगवासिष्ठ को शाड्कर अद्वैत वेदान्ती स्वीकार करने लगे है। इतना निश्चित रूप से स्पष्ट है कि ज्ञान की सप्तभूमिका के सिद्धान्त को सभी अद्वैतवेदान्ती मानते है।

वस्तुत योगवासिष्ठ और शड्कर अद्वैत वेदान्त मे कुछ भिन्नताएँ है। समानताओ का विन्दु जैसे– १ निर्गुण ब्रह्मवाद २ ब्रह्मात्मैक्यवाद ३ जगन्मिथ्यात्ववाद ४ जीवनमुक्तिवाद ४ दृष्टिसृष्टिवाद और ६ अजातवाद पर योगवासिष्ठ तथा शड्कर अद्वैतवेदान्त मे साम्य है किन्तु शाड्कर अद्वैतवेदान्त जहा व्यवहारिक सत् और प्रातिभासिक सत् मे भेद करता है वहा योगवासिष्ठ का मत इससे अलग है।

शड्कराचार्य माया को विषयगत और काल्पनिक नही मानते है किन्तु इससे अलग योगवासिष्ठकार माया को काल्पनिक और विषयिगत् मानते है।

---

[1] द्विविधा मुक्तता लोके सभवत्यनधाकृते। सदेहैका विदेहान्या विभागोऽयतयो श्रृणु।। यो० वासि० ३/४२/११

[2] आचार्य बलदेव उपाध्याय– सस्कृत वाड्मय का वृहद इतिहास दशमखण्ड वेदान्त– पृ० ५६७ उ० प्र० सस्कृत सस्थान लखनऊ।

किन्तु यह भी सत्य है कि अद्वैतवाद को ही सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त और सर्वदर्शन समन्वय का सूत्र बताया गया है। इस प्रकार सात–आठ शताब्दियो से योगवासिष्ठ–वेदान्त शाड्कर अद्वैतवेदान्त का एकदेशी मत या एक प्रस्थान बन गया है। कुछ भी हो, योगवासिष्ठ–वेदान्त शाड्कर अद्वैत–वेदान्त से जितना सन्निकट है उतना किसी भी अन्य दर्शन के सन्निकट नही है।

इस प्रकार योगवासिष्ठ एक अति महत्त्वपूर्ण वेदात का ग्रन्थ है। इसका महत्त्व इससे भी प्रतीत होता है कि इसका मध्यकाल के शासको (अकबर, जहॉगीर, दाराशिकोह) के सरक्षण मे कई फारसी अनुवाद किये गये थे। इसका ज्ञान तात्पर्य प्रकाश व्याख्या सहित योगवासिष्ठ की भूमिका से ज्ञात होता है। २० वी शतब्दी मे भीखनलाल आत्रेय ने योगवासिष्ठ पर कई अन्य ग्रन्थ लिखे और उन्होने योगवासिष्ठ की तुलना पाश्चात्य प्रत्यय वाद से की है। महात्मागाधी योगवासिष्ठ के मुमुक्षु–व्यवहार–प्रकरण सर्वाधिक से प्रभावित थे।

खण्ड–ख

शङ्कर पूर्व अद्वैतवेदान्त का अव्यवस्थित इतिहास

अद्वैत वेदान्त के कुछ प्राचीन आचार्यो का नामाल्लेख ब्रह्मसूत्र मे यत्र–तत्र उद्धृत मिलता है। इसे आर्ष–वेदन्त कहते है। इन आचार्यो की कोई भी कृतिया उपलब्ध नही है इसलिए इनका अव्यवस्थित इतिहास प्राप्त होता है। भगवान सूत्रकार ने अपने ब्रह्मसूत्र मे आचार्यो का उल्लेख किया है उनके नाम इस प्रकार है जो निम्नलिखित है–

१ आत्रेय　　२ आश्मरथ्य　　३– औडुलोमि

४ कार्ष्णाजिनि　　५ काशकृत्स्न　　६ जैमिनि　　७– वादरि

सूत्रकार ने आर्ष परम्परा के इन आचार्यो को जिन प्रसगो मे प्रस्तुत किये है वहॉ अपने विचारो का सकेत स्वय 'वादरायण' नाम से किया है। कुछ स्थल पर तो पूर्वप्राचीन आचार्यो के विचार से सहमति की भवाना से अपना कोई पृथक मत नही दिया है। ब्रह्मसूत्र मे ऐसे नौ स्थान है जहा वादरायण ने अपना नामोल्लेख किया है। उपरोक्त आचार्यो मे जैमिनि, ब्रह्मसूत्रकार का समकालिक आचार्य है और यह बात दोनो आचार्यो की रचनाओ से स्पष्ट होता है। <u>जैमिनि ने अपने मीमासा सूत्र नामक ग्रन्थ मे</u> बादरायण का उल्लेख किया है। और वादरायण ने अपने ब्रह्मसूत्र मे जैमिनि का नाम उल्लिखित किया है।

मीमासा ग्रन्थ के पाचवे सूत्र मे वादरायण नाम से उस अर्थ को निर्दिष्ट किया है जो वेदान्त के प्रारम्भिक तीसरे सूत्र मे प्रतिपादित है। इसी प्रकार वेदान्त ३।३।४६ के सूत्र मे मीमासा सूत्र (३/३/४) के प्रतिपादित अर्थ का 'अतिदेश 'किया गया ज्ञात होता है। परम्परा के अनुसार जैमिनि को कृष्णद्वैपायन बेदव्यास का शिष्य कहा गया है, जो मीमासा ग्रन्थ के प्रणेता थे। वेदव्यास का अपरनाम बादरायण था जो महाभारत युद्ध के पूर्वापरकाल मे विद्यमान रहा।

अचार्य बलदेव उपाध्याय ने लिखा है– शङ्कर के पूर्व वेदान्त की तीन परंपराये दृष्टिगत होती है एक अद्वैतवेदान्त की परपरा है, दूसरी भेदाभेदवाद की परंपरा है। तीसरी भेदवाद की परम्परा है। अद्वैतवाद की परम्परा का उल्लेख वेदान्तेत्तर दर्शनों के इतिहास मे मिलता है। जैन दार्शनिक समन्तभद्र जो शङ्कर के पूर्ववर्ती को अद्वैतावाद का उल्लेख 'आप्त मीमासा' मे करते है–

"अद्वैतकान्त पक्ष दृष्टो भेदो विरुध्यते।
कारकाणा क्रिययोश्च नैक स्वस्मात प्रजायते"।।

जैन–दर्शन के अलावा बौद्ध दार्शनिक शान्तरक्षित ने तत्त्व–सग्रह मे प्राचीन अद्वैत वेदान्त का वर्णन किया है। उनके टीकाकरणमलशील "अद्वैतदर्शनावलम्बिनश्च औपनिषदिका" कहकर अद्वैतवेदान्त का उल्लेख किया है।

१. आत्रेय

आर्ष वेदान्त की आचार्य परम्परा मे प्रथम नाम आचार्य आत्रेय का आता है। ब्रह्मसूत्र मे आत्रेय का नाम केवल एक स्थल पर उल्लिखित है– "स्वामिन फलश्रुतेरित्यात्रेय" (ब्रह्म सूत्र ३।४।४४) अर्थात आचार्य आत्रेय का मत है कि यजमान को ही यज्ञ की अड्ग भूत उपासना का फल प्राप्त होता है, ऋत्विक् को नही। इस प्रकार सारी उपासनाए यजमान को करनी चाहिये न कि पुरोहित को।[1] श्रुति भी यजमान को फल का प्राप्त होना बताती है।

महाभारत मे (१३।१३७।३) मे आत्रेय का नाम यत्र–तत्र उल्लिखित मिलता है जिसने अपने शिष्यो को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश दिया था। किन्तु यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि महाभारत के आत्रेय और ब्रह्मसूत्र के आत्रेय भिन्न हैया अभिन्न। जैमिनि की पूर्व मीमासा मे (जै०सू० ४।३।१८, ६।१।२६) भी आत्रेय का नाम उल्लिखित है।[2]

२. आश्मरथ्य

वेदान्त दर्शन के दो सूत्रो मे आश्मरथ्य का उल्लेख है– १ अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्य (ब्र० सू० १।२।२६) अभिव्यक्ति के कारण यह आश्मरथ्य नाम का आचार्य कहता है कि "हृदय प्रदेश मे वैश्वानर ब्रह्म अभिव्यक्त प्रकाशित होता है, इस कारण उसे "प्रादेश मात्र" कहा। यह आश्मरथ्य आचार्य का विचार है।"[3]

---

[1] तस्मात् स्वमिन एव फलवत्सूपासनेषुकतृत्त्वमित्यात्रेय (ब्र० सू० शा० भा० ३।४।४४)

[2] (क) फलमात्रेयो निर्देशादश्रुतौ ह्वन्यनुमान स्यात्। (जै० सू० ४।५।१८)
(ख) निर्देशदात्रयाणा स्यादग्न्याधेशे सम्बन्ध वाह्मश्रुतेरित्यात्रेय (जै० सू० ६।१।२६)

[3] ब्र० सू०। पृ० १८१

आश्मरथ्य का इस विषय मे विचार है कि अनन्त पर ब्रह्म का दर्शन एव साक्षत्कार अल्पज्ञ एकदेशी जीवात्मा के लिये होना सभव नही केवल हृदय–प्रदेश स्थित परब्रह्म का साक्षात्कार आसक्त को हो पाता है इसी आधार पर अनन्त ब्रह्म को प्रादेशमात्र कह दिया गया है। उपासक आत्मा को परब्रह्म की अभिव्यक्ति आत्मा के निवास हृदयदेश (मस्तिष्क–गत) मे सभव है। यह कारण भी ब्रह्म को प्रादेश–मात्र कहे जाने का हो सकता है आश्मरथ्य का मत है कि अनन्त–ब्रह्म की अभिव्यक्ति उपासक आत्मा को एक सीमित प्रदेश (हृदयदेशमात्र) मे होती है। सम्पर्णत उसकी उपलब्धि नही की जा सकती यही कारण ब्रह्म का प्रादेशमात्र कहे जाने का है। इस विचार को सूत्रकार ने अपेक्षणीय नही माना है।

दूसरे सूत्र मे "प्रातिज्ञासिद्धलिडगेमाश्मरथ्यम" (ब्र० सू० १।४।२०) मे आश्मरथ्य का उल्लेख मिलता है। वहा एतरेय (१।१।२) तथा बृहदारण्यक (४।५।१–६) के सन्दर्भो मे पठित 'आत्मा' पद की ब्रह्म वाचकता का विवेचन है।

आश्मरथ्य के मतानुसार विज्ञानात्मा तथा परमात्मा मे परस्पर भेदा–भेद सम्बन्ध है इसलिए इन्हे द्वैताद्वैतवादी भी कहते है। आश्मरथ्य[१] का भेदाभेदवाद परवर्तीकाल मे यादवप्रकाश द्वारा परिपुष्ट हुआ था।

श्री मुरलीधर पाण्डेय ने श्री शड्करात प्रागद्वैतवाद ग्रन्थ मे लिखा है कि "अय भेदाभेदवादी अथवा द्वैताद्वैतवद्यासीत्। अय कथयति यत् मुक्ते पूर्व ब्रह्मजीवयोभेदो भवति। मुक्तेरनन्तरमुभयोरभेदो भवति। आत्मनि विज्ञाते सर्वमिद विज्ञात भवति', इतिश्रुतिरपि उक्तेर्थ एव तात्पर्य बोधयति।"

[1] डा० कविराज गोपीनाथ, 'अच्युत' पृ० ५ (वेदान्तशाकर भाष्य के हिन्दी अनुबाद की भूमिका।)
३ श्री मुरलीधर पाण्डेय –श्री शकरात प्रागद्वैतवाद पृ०–८५

प्रतिज्ञासिद्धे –(१।४।२०) सूत्र की व्याख्या मे आचार्य ने 'आत्मनि विज्ञायते सर्वमिद विज्ञात भवति' को प्रतिज्ञा वाक्य बताया है। परन्तु बृहदारण्यक् के मैत्रेयी–याज्ञवल्कय सवाद प्रकरण से ज्ञात नही होता कि यह प्रतिज्ञावाक्य है।

आचार्य का यह कथन है कि आश्मरथ्य वास्तविक रूप से तो जीव का परब्रह्म से अभेद स्वीकार करता है परकदाचित् वह जीव–ब्रह्म मे कुछ कार्यकारण भाव स्वीकार करता हुआ भी प्रतीत होता है।

आचार्य आश्मरथ्य की कोई रचना प्राप्त नही होती है ऐसी स्थिति मे उसके अध्यात्म विचार की स्पष्ट परीक्षा किया जाना सभव नही है। मध्यकालिक आचार्यों ने उसके मत के विषय मे विभिन्न विचार प्रस्तुत किये है। वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों ने आश्मरथ्य को भेदाभेदवादी माना है। यद्यपि यह वाद अपने रूप मे पूर्ण यथार्थ नही है। किन्ही दो वस्तुओ मे भेद और अभेद दोनो को वास्तविक रूप नही माना जा सकता, निश्चत रूप से उनमे एक वास्तविक और दूसरा औपचारिक अथवा आपेक्षिक रहता है। इसमे कौन वास्तविक है, कौन औपचारिक है यह विवाद कभी न समाप्त होने वाला विवाद है।

शड्कराचार्य ने आश्मरथ्य को उल्लेख करते हुए लिखा है– आश्मरथ्यस्य तु यद्यपि जीवस्य परस्मादनन्यत्वमभिप्रेत तथापि प्रतिज्ञासिद्धेरिति सापेक्षत्वाभिधानात् कार्यकारण भाव क्रियानप्यभिप्रेत इति गम्यते[1] (ब्र० सू० शा० भा० १।४।२२)।

जैमिनि सूत्र मे आश्मरथ्य– मीमासा दर्शन के एक सूत्र (६।५।१६) मे आश्मरथ्य का उल्लेख है।[2] जो कर्मकाण्ड से सम्बन्धित है। इससे स्पष्ट होता है। जो कर्मकाण्ड से सम्बन्धित है। इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य आश्मरथ्य ज्ञान और कर्म दोनो काण्डो

---

[1] बृ० सू० शा० भा० १।४।२२

[2] अनारुप्तेऽभ्युदिते प्राकृतीभ्यो निर्वषेदित्याश्मरथ्य तण्डुलभूतेष्वपनयात् (जै० सू० ६।५।१६)

पर विशेषाधिकार रहता था जिसके मतो का विवेचन अन्तरवर्ती आचार्यों के द्वारा हुआ है।

३. औडुलोमि

ब्रह्म सूत्र मे आचार्य और औडुलोमि का उल्लेख तीन स्थलो पर किया गया है। (ब्रह्म सूत्र १।४।२१, ३।४।४५, ४।४।६) पर हुआ है। आचार्य ओडुलोमि का मत है कि भेद तथा अभेद अवस्थान्तर के अनुसार है। औडुलोमि मानते है कि ससार दशा मे जीव और ब्रह्म मे भेद है, किन्तु मुक्ति दशा मे अभेद है। प्रथम स्थल पर आचार्य का मत है कि, उपनिषद के उक्त प्रसगो (ऐतरेय बृहदारण्यक) ४।५।६) मे 'आत्मा' पद परब्रह्म परमात्मा के अर्थ मे मानना चहिए कि ब्रह्म ज्ञान होने पर जीवात्मा देहपात के अनन्तर ब्रह्म मे आश्रित रहकर केवल ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है। ऐसी अवस्था मे जीवात्मा को ब्रह्म सदृश मान लिया जाता है। आनन्दानुभूति ही सादृश्य है। द्वितीय स्थल पर प्रसग है कि उपासनाओ मे अग भूत कर्मों का अनुष्ठान उपासक करे अथवा ऋत्विक? औडुलोमि का मत है कि ऐस कर्मों का अनुष्ठान ऋत्विक द्वारा पारिश्रमिक देकर उस कर्मानुष्ठान के लिये ऋत्विक् का क्रय कर लिया गया है। ऐसी अवस्था मे ऋत्विक द्वारा किये गये कर्मानुष्ठान का फल यजमान को प्राप्त होता है। ऋत्विक अपने श्रम का फल परिश्रमिक शुल्क रूप मे ले चुका होता है। कर्मानुष्ठान का फल अनुष्ठाता को मिलना चाहिए। इस शास्त्रीय व्यवस्था मे पूर्वोक्त व्यवहार से कोई विरोध नही होता क्योकि कर्म का अनुष्ठाता उपासक यजमान ही है ,ऋत्विक आदि तो साधन मात्र है।

तृतीय स्थल (४।४।६) मे प्रसग है कि मोक्षावस्था जीवात्मा चेतन मात्र स्वरूप से अवस्थित होता है। इस प्रकार आचार्य मोक्ष मे जीवात्मा की अतिरिक्त सत्ता को स्वीकार करते है। इसके अनुसार उसे भेदवादी मानना युक्त है। आचार्य उदयवीर शास्त्री ने भामतीकार वाचस्पति मिश्र द्वारा शाङ्कर भाष्य पर टीका करते हुए आचार्य

औडुलोमि का मत प्रकट किया है। "क्योकि जीव परमात्मा से अत्यन्त भिन्न होता हुआ देह, इन्द्रिय, मन, बुद्वि आदि के सम्पर्क से सदा (ससारीदशा मे) कलुष रहता है, ज्ञान–ध्यान आदि के अनुष्ठान से उसका वह कलुष जब दूर हो जाता है (अर्थात उसे ब्रह्मज्ञान हो जाता है) तब देह–इन्द्रिय आदि सघात से उत्क्रमण करते हुए आत्मा का परमात्मा के साथ ऐक्य उत्पन्न होता है। यह अभेध कथन का आधार है। इसका तात्पर्य है कि आगे आने वाले अभेद का आश्रय लेकर भेदकाल मे भी अभेध कह दिया गया है। पाच ने कहा है मोक्ष से पहले जीवात्मा–परमात्मा का भेद ही रहता है मुक्त होने पर तो भेद नही, क्योकि तब भेद का हेतु नही रहता है।"[1] भामतीकार के मतानुसार औडुलोमि–मत के साथ पाचरार्त्रिक आचार्यो के मतो मे ज्यादा साम्य है।[2]

४. कार्ष्णाजिनिः

आर्ष परम्परा के एक मुख्य आचार्य कार्ष्णाजिनि भी थे। इनका भी कोई ग्रन्थ प्राप्त नही होता है। ब्रह्म सूत्र मे एक स्थल पर आचार्य कार्ष्णाजिनि का उल्लेख हुआ है। 'चरणादिति चेन्नोपलक्षणार्थेतिकार्ष्णाजिनि'(ब्रह्म सूत्र ३/१/६) ब्रह्म। यह छान्दोग्य उपनिषद के ५।१०।७ से सम्बन्धित है।[3] श्री मुरलीधर पाण्डेय ने लिखा है कि– 'अस्य मतम् अद्वैतवादोद्वैतवादोवेति स्पष्ट न प्रतीयते। केवलमात्मन पुनर्जन्म विषयेऽस्य कथयति यद् 'अनुशय' एव पुर्नजन्मकरण न तु शीलमाचारो वा अनुशयो नाम अभुक्त कर्म[4] 'अनुशय' उन सस्कारो एव धर्म–अधर्म (अदृष्ट) का नाम है जिन कर्मो का फल अभी भोगा नही गया है तथा वे सस्कार आदि रूप से आत्मा मे अवस्थित है। इस विषय मे कार्ष्णाजिनि का विचार है उपनिषद का 'चरण' पद 'अनुशय' का का उपलक्षण द्योतकहै,

---

१ श्री उदय वीर शास्त्री। वेदान्त दर्शन का इतिहास, पृ०१४२ प्रकाशन गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली– ६।

2 'एतदुक्त भवति भविष्यन्तमभेदमुपादाय भेदकालेडप्य भेद उक्त। यथाहु पाञ्चरात्रिका आमुक्तेर्भेद एवस्याज्जीवस्य चपरस्य च। मुक्तस्य तु न भेदोडस्ति भेद हेतोरभावत । "ब्र०सू०१/४/२१ शाकर भाष्य पर भामती आचार्य वाचस्पति।

3 श्री मुरलीधर पाण्डेय। शङ्करातप्रागद्वैतवाद पृ०–६०

4 श्रुतिरनुशयसद्भावप्रतिपादनायोदाहृता– तद् इह रमणीयचरणा (छान्दो० ५।१०।१)

क्योकि 'अनुशय' आचरण एव कर्मानुष्ठान से बनता है। इसलिये उक्त दोनो कथनो मे परस्पर विरोध की कल्पना असगत है। सूत्रकार ने इस प्रसग पर अपनी कोई आलोचना प्रस्तुत नही किया है।

जैमिनि के मीमासा सूत्र मे दो स्थलो पर आचार्य कार्ष्णाजिनि का उल्लेख हुआ है।[1] प्रथम स्थल का प्रसग है कि रात्रि सत्र मे जो फल निर्देश है वह केवल अर्थवाद है, अथवा उसे फलविधिमानना चाहिये। कार्ष्णाजिनि का मत है कि इसे फल निर्देश अर्थवाद समझना चाहिये। जैसे अडभूत कर्मो का फलनिर्देश अर्थवाद रुप माना जाता है। मीमासाकार जैमिनि ने कार्ष्णाजिनि के मत को पूर्वपक्ष के रूप मे रखा है। और इसका सिद्धान्त पक्ष आत्रेय आचार्य के नाम से अगले सूत्र मे (४ ।३ ।१८) मे प्रस्तुत किया है। द्वितीय स्थल पर 'सहस्रसम्वत्सरयोग' का प्रसग है।

५. आचार्य काशकृत्स्न

वेदान्त दर्शन के केवल एक सूत्र (१ ।४ ।२२) मे आचार्य काशकृत्स्न के मत का उल्लेख हुआ है। 'काशकृत्सन' ब्रह्म–सूत्र (१ ।४ ।२२) अचार्य काशकृत्स्न का विचार है कि जीवात्मा प्रत्येक दशा मे परमात्मा के साथ अवस्थित रहता है। परमात्मा को छोडकर जीवात्मा का रहना सभव नही है। इनके मतानुसार परमेश्वर ही ससार मे जीव रुप मे अवस्थित है जीव परमेश्वर का विकार नही है, ससार और मोक्ष प्रत्येक अवस्था मे जीवात्मा के साथ परमात्मा अवस्थित रहता है ।

ससार अवस्था मे जीवात्मा अज्ञान रहित नही होता है इसलिए यह अवस्थान अज्ञान सहित है। प्रलय की स्थिति भी ससार की स्थिति है। वहा भी जीवात्मा की स्थिति वैसी ही है। मोक्ष मे अज्ञान नही रहता है केवल ब्रह्मानन्द की अनुभूति होती है। यह कहना उचित नही है कि प्रलय अथवा मोक्ष मे जीवात्मा का ब्रह्म मे लय हो जाता

---

[1] क क्रतौ फलार्थवादमङ्गवत् कार्ष्णाजिनि । जै०सू० ४ ।३ ।१५
ख सकुल्य स्यादिति कार्ष्णाजिनिरेकस्मिन्नसभवात् ।(जै०से० ६ / ७ / ३६)

है। इसी लिए सहावस्थिति का आधार ही नही रहता हैं। कारण यह है कि परमात्मा के समान जीवात्मा भी नित्य है इसी तथ्य को कठोपनिषद मे भी कहा गया हे– ''ना जायते मृयते (कठो० १।२।१८)

इसी अर्थ को (छान्दो० ६।११।३) मे भी कहा गया है कि जीवात्मा के निकल जाने पर यह देह मरा हुआ कहा जाता है। जीवत्मा कभी मरता नही मोक्ष की अवस्था मे जीवात्मा ब्रह्म मे लीन हो जाता है इसे जीवात्मा का स्वरूप से मरना कहा जायेगा।[१] 'लय' का अर्थ है अपने स्वरूप को छोडकर रूपान्तर की प्राप्ति। किन्तु जीवात्मा के विषय मे ऐसा मानना शास्त्र विरुद्ध है। क्योकि जीवात्मा तथा परमात्मा की एक साथ सह अवस्थिति निश्चित है। अतेव ये दोनो तत्त्व निहित है, और आत्मतत्व दोनो मे समान है।

काशकृत्सन के उक्त मत का उल्लेख शङ्कराचार्य ने अपने भाष्य मे इसप्रकार किया है– 'काशकृत्सनस्याचार्यस्याविकृत परमेश्वरो जीवो नान्य इतिमतम्' (ब्र० सू० शा० भा० १।४।२२) इस प्रकार काशकृत्स्न जीव को अविद्याकल्पित मानते है। अर्थात अविकृत परमेश्वर ही जीव है, अन्य कोई नही।

इसप्रकार आचार्य शङ्कर ने काशकृत्स्न के मत को श्रुति के अनुकूल कहा है।[१] और काशकृत्स्न का मत अद्वैतवाद के समान है।

६. जैमिनि

ब्रह्मसूत्र मे आचार्य जैमिनि का उल्लेख ग्यारह बार हुआ है।[२] जो सब आचार्यो की अपेक्षा अधिक है। कदाचित् गुरु ने शिष्य के प्रति वात्सल्य प्रकट करने एव उसके

---

1 किलेद म्रियते न जीवो म्रियते (छा० उ० ६।११।३)

[1] तत्रकाशकृत्स्नीय मत श्रुत्यनुसारीत गम्यते। (ब्र० सू० शा० भा०१।४।२२)

[2] ब्र० सू०

क साक्षादप्य विरोध जैमिनि। ब्र० सू० १।२।२८

ख सम्पतेरिति जैमिनिस्तथा हि दर्शयति ब्र० सू० १।२।३१

ग मध्वादिष्वसभवादनधिकर जैमिनि । ब्र० सू० १।३।३१

महत्त्व को बढाने के लिए के लिये ऐसा किया हो। जैमिनि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास के अन्यतम शिष्य थे।

आचार्य जैमिनि भी मीमासा सूत्र के लेखक के नाम से विख्यात है। प्रो० विधुशेखर भट्टाचार्य का मत है कि इन्होने ब्रह्मसूत्र की रचना की थी।[1]

कहा जाता है कि अचार्य जैमिनि ईश्वर के अस्तित्व को नही मानता हे। परन्तु वादरायण के इस सूत्र के आधार पर प्रतीत होता है कि आचार्य का मन्तव्य इससे बिपरीत रहा होगा । वादरायण सूत्र का प्रसग है, आत्मा ब्रह्म साक्षात्कार होने पर मोक्ष मे किस रूप से रहता है? इस विषय पर जैमिनि का मत है कि वह 'ब्राह्मरूप' से रहता है (४ ।४ ।५)। इस पद का अर्थ ब्रह्म सम्बन्धी अथवा ब्राह्म रूप– जो कुछ किया जाय, उससे इस मान्यता मे कोई विपरीत प्रभाव नही पडता है कि अचार्य जैमिनि ब्रह्म के अस्तित्व को स्वीकार करता है। अन्यथा वादरायण उसके नाम से जीवात्मा के 'ब्रह्म' रूप का निर्देश न करता। जैमिनि निरीश्वरवादी है यह प्रवाद किस आधार पर है यह विचारणीय है।

श्री मुरलीधर पण्डेय ने अपने ग्रन्थ शङ्करातप्रागद्वैतवाद मे लिखा है– 'इति सूत्रस्य शाङ्करभाष्ये भामत्या च जीवपरमात्मनोरैक्यमुक्तम्– "निश्चिते च पर्वपरलोचन वशेन परमात्मपरिग्रहे तद्विषय एव वैश्वानरशब्द केनचिद् योगेन वर्तिष्यते। विश्वश्चाय नरश्चेति, विश्वेषा वाय नर, विश्वे वा नरा अस्येति विश्वानर परमात्मा सर्वात्मत्वात्" विश्वानर एव वैश्वानर 'अत्र परमात्मा सर्वात्मत्वात् दूत्युक्त्या जीवब्रह्मणे भेद

घ अन्यार्थ हि जैमिनि प्रश्नव्याख्यानाभ्यामतिचैवमेके।

ड धर्म जैमिनिरित् एव। ब्र० सू० ३ ।२ ।४०

च शेषत्वातत्पुरुषार्थवादी यथान्वेष्विति जैमिनि । ब्र० सू० ३ ।४ ।२

छ परामर्शजैमिनिश्चोदना चापवदति हि। ब्र० सू० ३ ।४ ।१८

ज तद्भूतिस्य नतद्भावो जैमिनेरपि नियमातद् रूपाभवेभ्य । ब्र० सू० ३ ।४ ।४०

झ पर जैमिनिर्मुख्यत्वात्। ब्र० सू० ४ ।३ ।१२

ञ ब्रह्मणेन जैमिनिरूपन्यसिदिभ्य । ब्र० सू० ४ ।४ ।५

ट भाव जैमिनि निर्विकल्पलभननत्। ब्र० सू० ४ ।४ ।११

[1] B Bhatyacharya Agam Sastra of Gaudpada, Introductıon

प्रतिपादित'।[1] पुराणो मे भी इन्हे वेदव्यास का शिष्य बतलाया गया है। इन्होने वेदव्यास से सामवेद और महाभारत की शिक्षा प्राप्त की थी। मीमासा दर्शन के अतिरिक्त जैमिनि ने भारतसहिता जिसे 'जैमिनिभारत' भी कहते है की रचना की थी।

७ आचार्यवादरि

आचार्य वादरि का उल्लेख वादरायण के ब्रह्मसूत्र[2] मे चार बार किया गया है, तथा जैमिनि के मीमसासूत्र[3] मे भी चार बार उल्लेख किया गया है। आचार्य बादरिके दार्शनिक सिद्धान्तो की रूपरेखा के विषय मे प० राममूर्ति शर्मा ने अपने ग्रन्थ 'अद्वैतवेदान्त' मे लिखा है– १ आचार्य बादरि वैदिक कर्म मे प्रत्येक वर्ण के व्यक्ति का अधिकार स्वीकार करते है। यह सिद्धान्त आचार्य की अद्वैत परक बुद्धि का ही परिचायक है। २ उपनिषदो मे कही–कही सर्वव्यापी ईश्वर का प्रादेश मात्र रूप से वर्णन मिलता है। इस सम्बन्ध मे उपपत्ति देते हुये बादरि का विचार है कि मन प्रादेश मात्र हृदय मे रहने के कारण शास्त्रो मे प्रादेश मात्र कहा जाता उस प्रादेशमात्र मन से ही ईश्वर का स्मरण होता है, इसीलिए वह (ईश्वर) प्रादेशमात्र रूप से वर्णित होता है।"[4]

द्वितीय स्थल का विषय छान्दोग्य उपनिषद (५।१०।७) के "तद्य इह रमणीयचरणा" इत्यादि सन्दर्भगत 'चरण' पद के प्रयोग के आधार पर है। इस चरण पद के प्रयोग को लेकर विद्वानो मे मतभेद है। बह्मसूत्रकार ने वादरि का मत बताया है कि उपनिषद के उक्त प्रसग मे चरण पद सुकृत–दुष्कृत कर्मों (भले बुरे कर्मों का) का वाचक है।

तृतीय स्थल पर छान्दोग्योपनिषद के (४।१५।५) के 'स एनान् ब्रह्म गमयति' के आधार पर यह विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसमे प्रयुक्त ब्रह्म शब्द का अर्थ बादरि ने

---

1 श्री मुरलीधरपण्डेय श्रीशकराा प्रागद्वैतवाद पृ० ६४–६५
2 ब्रह्म सूत्र १।२।३० ३।१।११ ४।३।७ ४।४।१०
3 मीमासा सूत्र ३।१।३, ६।१।२७ ८।३।६ १।२।२३ (सेक्रड बुक्स आफ दि हिन्दुज के अन्तर्गत प्रकाशित)
4 प० राममूर्ति– अद्वैतवेदान्त। पृ० १२६

कार्य ब्रह्म ग्रहण किया है। अपने मत की पुष्टि मे आचार्य का कथन है कि ब्रह्मसे यहा परब्रह्म का अर्थ नही लिया जा सकता है। क्योकि परब्रह्म स्वर्ग है प्रत्यगात्म स्वरूप ब्रह्म है इसलिए उसमे गन्ता गन्तव्य और गति आदि की भेद व्यवस्था सभव नही है। इसीलिये छान्दोग्योपनिषद के उक्त वाक्य मे वादरि ब्रह्म शब्द से 'कार्य ब्रह्म' का अर्थ स्वीकार किया है चतुर्थ स्थल मे मुक्त पुरुष के ऐश्वर्यानुभूति को लक्ष्य कर जिज्ञासा की गई कि उस अवस्था मे युक्त पुरुष के शरीर–इन्द्रिय आदि रहते हैं, अथवा नही? अचार्य बादरि का मानना है कि मोक्ष अवस्था मे मुक्त परुष के शरीर इन्द्रिय आदि का अभाव रहता है।

छान्दोग्योपनिषद (८।२।१) मे ही मुक्त पुरुष के वर्णन के प्रसग मे कहा गया है कि 'सकल्पादेवस्यपितर समुत्तिण्ठन्ति' अर्थात् मुक्त पुरुष के सकल्प से ही पितृगण उठ जाते है। आचार्य वादरि का विचार है कि ईश्वर भावापन्न विद्वान के शरीर तथा इन्द्रियो की सत्ता नही रहती है। इसलिए छान्दोग्योपनिषद मे कहा गया है 'मनसा एतान कामान् पश्यन् रमते' (८।१२।५) "य एते ब्रह्मलोके" (छा० उप० ७।१२।१)। इस प्रकार ब्रह्मसूत्र एव मीमासा सूत्र दोनो मे आचार्य वादरि के मतो का विवेचन होने से स्पष्ट होता है कि आचार्य वादरि वेदान्त के ही समर्थक रहे है।

इस प्रकार आर्ष परम्परा के आचार्यों मे देखते है कि आत्रेय और जैमिनि कर्मज्ञान समुच्चय वादी थे। रामानुजी विद्वान सुदर्शन सूरि ने लिखा है कि आश्मरथ्य भेदा–भेदवाद को मानते थे। जैमिनि और कर्ष्णाजनि के मत मे साम्य है।

काश्यप

आर्ष परम्परा के आचार्यों मे काश्यप भी एक महत्त्वपूर्ण आचार्य है। यद्यपि काश्यप का नामोल्लेख ब्रह्मसूत्रो मे नही है परन्तु आचार्य शाण्डिल्य के भक्ति सूत्र[1] मे

[1] शाडिल्य का भक्तिसूत्र। तागैश्वर्यपरां काश्यप परत्वात– २६

वादरायण के साथ काश्यप के मत का उल्लेख है, इससे अचार्य काश्यप की महत्ता एव प्राचीनता प्रकट होती है।

महाभारत १३।३१६।५६ मे भी काश्यप का उल्लेख मिलता है। राजा नान्यदेव ने स्वनिर्मित सरस्वती हृदयालकार नामक नट्यशास्त्र की टीका मे यत्र–तत्र काश्यप का उल्लेख किया है चित्र विद्या मे कुशल काश्यप की चर्चा भी कही मिलती है।

इस प्रकार उपर्युक्त ऋषियो के अतिरिक्त जिन्होने विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओ का प्रचार किया था उनमे असित, देवल, गर्ग जैगीषव्य, पराशर और भृगु के नाम विशेष रूप से उल्लिखित किये जा सकते है।

(खण्ड ग)

प्राग अद्वैतवाद का व्यवस्थित इतिहास

प्राग अद्वैत वेदान्त के आर्ष अचार्यों के यत्र–तत्र प्राप्त विचारो मे किसी दार्शनिक सिद्धान्त का पूर्ण व्यस्थित विवेचन प्राप्त नही होता है, बल्कि विभिन्न दार्शनिक पद्धति का बीज मात्र ही है मिलता है। किन्तु इन प्राचीन आचार्यों के अतिरिक्त अद्वैतवाद के सस्थापक शङ्कराचार्य के पूर्ववर्ती कुछ अन्य आचार्य भी मिलते है। जिनकी रचनाओ मे अद्वैत वेदान्त की सूक्ष्म विचार दृष्टि का तथा व्यावस्थित दार्शनिक विचारधारा का भी सकेत मिलता है। इसस प्रकार शङ्कराचार्यके पूर्ववर्ती चौदह आचार्य हुये थे जिनमे से ग्यारह आचार्यों का नाम श्री यामुनाचार्य की 'सिद्धत्रयी' मे तथा श्री रामानुजाचार्य के 'वेदार्थ सग्रह मे तथा श्री निवास दास के 'यतीन्द्रमत दीपिका' मे भी उल्लिखित मिलता

है। किन्तु तीन और आचार्यो अचार्यों का नाम 'ब्रह्मसूत्रभाष्य' से ज्ञात होता है। यथा ब्रह्मसूत्रभाष्य मे १ व्यास २ उपवर्ष (बोधायन, कृतकोटि) ४ गुहदेव, ४ कपर्दी ५ भारुचि ६ बह्मानन्दी (टङ्का) ७ द्रविण, ८ भर्तृप्रपञ्च, ६ भर्तृमित्र, १० भर्तृहरि,११ ब्रह्मदत्त १२ सुन्दर पाण्ड्य १३ गौडपादाचार्य १४ मण्डनमिश्र।

इसमे से कुछ ने वेदान्त विषयक सूत्रो की ,कुछ भाष्यो की ,कुछ वृत्तियो की, कुछ के द्वारा कारिका और व्याख्यादि की रचना की गयी।

व्यास

भगवान व्यास ब्रह्मसूत्र के कर्त्ता के रूप मे प्रसिद्ध है। उनके मत मे अद्वैतवाद का स्वरूप कैसा था? यह निर्णय करना अति दुष्कर है। कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास का नाम ही वादरायण माना जाता है किन्तु विद्वानो के बीच विवाद का यह विषय है कि ब्रह्मसूत्र कर्ता वादरायण और व्यास एक ही व्यक्ति है या अलग–अलग व्यक्ति हैं या एक ही व्यक्ति के दो नाम है?

ब्रह्मसूत्र मे नौ[1] स्थलो पर वादरायण नाम का निर्देश जिस रूप मे किया गया है उससे यह सकेत मिलता है कि इन सूत्रो का रचयिता वादरायण है। इस मान्यता को स्वीकार करने मे कोई आपत्ति दृष्टिगोचर नही होती है किन्तु आचार्य वादरायण के प्रभाव को लेकर मतवैविध्यता है।

पाणिनि ने उनाका नामोल्लेख 'पराशर्य ' के नाम से किया है। इस कारण इनका काल ई० पूर्व ६७५ से २०० ई० पू० तक का माना जाता है। वादरायण २०० ई० पूर्व के आस–पास अवश्य थे क्योकि उन्होने बौद्धो के सर्वास्तिवाद और विज्ञानवाद का खण्डन किया है जिनका उद्भव १०० ई० पूर्व मे हुआ था।

[1] ब्रह्मसूत्र। १ ।२ ।२६१ १ ।२ ।३३१ ३ ।२ ।४१ ३ ।४ ।१ ३ ।४ ।८ ३ ।४ ।१६, ४ ।३ ।१५, ४ ।४ ।७, ४ ।४ ।१२

वादरायण रचित ब्राह्मण सूत्र मे चार अध्याय है जो क्रमश समन्वय अध्याय, अविरोध अध्यय, साधन अध्याय और फल अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय मे चार पाद है प्रत्येक पाद मे कई अधिकरण है और प्रत्येक अधिरण मे कई सूत्र है।

ब्रह्मसूत्र को शड्कराचार्य ने 'शारीरक मीमासा' सूत्र कहा है क्योकि इसमे शारीरक आत्मा (देही आत्मा) का विवेचन है और कुछ लोग इसे 'वेदन्त सूत्र 'कहते है।

ब्रह्मसूत्र पर अनेक आचार्यों ने भाष्य लिखा जिसमे यह सर्वाधिक सुरक्षित रहा, विलुप्त नही हुआ ब्रह्मसूत्र की प्रासगिकता और प्रामाणिकता इससे भी सिद्ध होती है कि आज भी उसपर भाष्य या वृत्ति लिखने की परम्परा बनी हुई है। आचार्य बलदेवउपाध्याय ने लिखा है कि 'ब्रह्मसूत्र वेदान्त की कसौटी है। ब्रह्मसूत्र पर अनेक भाष्य लिखे गये है। उसमे से निम्नलिखित को प्रमुख भाष्य माना जाता है।

क्र०स०	लेखक	भाष्य	काल
१	शकराचार्य	शारीरकभाष्य (अद्वैतवाद)	७वी शती० ई०
२	भाष्कर	भाष्करभाष्य (भेदाभेदवाद)	८वी शदी ई०
३	रामानुज	श्रीभाष्य (विशिष्टाद्वैतवाद)	११वी शती० ई०
४	मध्व	पूर्णप्रज्ञभाष्य (द्वैतवाद)	१३वी शती० ई०
५	निम्बार्क	वेदान्तपारिजात (द्वैताद्वैतवाद)	११वी शती० ई०
६	श्रीकण्ठ	शैव भाष्य (शैवविशिष्टाद्वैतवाद)	१३वी शती० ई०
७	श्रीपति	श्रीकरभाष्य (वीरशैवमत)	११वी शती० ई०
८	रामानन्द	आनन्दभाष्य (रामविशिष्टाद्वैतवाद)	१५वी शती० ई०
९	वल्लभ	अणुभाष्य (शुद्धाद्वैतवाद)	१५वी शती० ई०
१०	विज्ञान भिक्षु	विज्ञानामृतभाष्य (अविभगाद्वैतवाद)	१७वी शती० ई०
११	बल्देवविद्याभूषण	गोविन्द भाष्य (अचिन्त्यभेदाभेदवाद)	१८वी शती० ई०

१२	रामप्रसाद	जानकी भाष्य (सीताविशिष्टाद्वैतवाद)	२०वी शती० ई०
१३	मुक्तानन्द	ब्रह्ममीमासाभाष्य (नव्यविशिष्टाद्वैतवाद)	
		स्वामीनारायणी	१६वी शती० ई०
१४	पञ्चानन	तर्करत्नशक्तिभाष्य (शक्तिविशिष्टाद्वैतवाद)	
		भट्टाचार्य	२०वी शती० ई०
१५	आर्यमुनि	वेदान्त दर्शन भाष्य (आर्यसमाजी)	२०वी शती० ई०
१६	मधुसूदन ओझा	विज्ञानभाष्य (आधुनिक विज्ञान)	" "

इन सभी भाष्यो मे शैव भाष्य, वीर शैवभाष्य, शक्ति भाष्य की रचना क्रमश शैवमत, वीरशैवमत तथा शाक्त मत को वेदान्त के अन्तर्गत लाने के लिए की गयी ।

इन भाष्यो के अतिरिक्त वेदान्त सूत्रो पर अनेक वृत्तिया भी लिखी गयी है। और इन वृत्तियो पर कई टीकाये लिखी गयी है।

वादरायण के विषय मे इतना निश्चित है कि ये ब्रह्मवादी, एकेश्वरवादी ,मोक्षवादी और ज्ञानमार्गी थे उन्होने वेदान्तेतर दर्शनो का खण्डन करके वेदान्त की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की थी। वादरायण की 'चतुः सूत्री 'वेदान्त की अक्षय निधि है।

बोधायन

बोधायन शङ्कर पूर्व आचार्यों मे तथा ब्रह्मसूत्र के ज्ञाता सर्वाधिक प्राचीन थे। इनका काल लगभग प्रथम द्वितीय शताब्दी मान जाता है।

बोधायन शकर पूर्व वेदान्ताचार्यो मे तथा ब्रह्मसूत्र के ज्ञात भाष्यकारो मे सर्वाधिक प्राचीन थे इनका काल लगभग प्रथम द्वितीय शताब्दी तक का माना जाता है। आचार्य रामानुज ने श्रीभाष्य नामक ब्रह्मसूत्र व्याख्या के प्रारम्भिक भाग मे लिखा है—

''भगवान बोधायन द्वारा रचित विस्तीर्ण ब्रह्मसूत्रवृत्ति को पूर्वाचार्यों ने सक्षिप्त किया है। उनके प्रदर्शित मत के अनुसार सूत्राक्षरो की व्याख्या की जाती है।''[1]

आचार्य रामानुज के इस लेख से स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल मे बोधायन ने अति विस्तृत वृत्ति की रचना की थी जो 'प्रपञ्च हृदय' नामक ग्रन्थ से भी स्पष्ट होता है।

मीमासा शास्त्र का कृतकोटि नाम वाला भाष्य बोधायन ने किया इस प्रकार के विवरणो से स्पष्ट होता है कि बोधायन ने ब्रह्मसूत्र पर कृतकोटि नामक एक विस्तृत व्याख्या की रचना की। कालान्तर मे उपवर्ष ने उसका सक्षेप किया[2] आचर्य शङ्कर ने महर्षि बोधायन का कही नामोल्लेख नही किया परन्तु कतिपय सूत्रो के भाष्य मे की गई आलोचनाओ को शाङ्कर भाष्य के विवरणकारो ने 'वृत्तिकार' की आलोचना बताया है। यह बृत्तिकार ब्रह्मसूत्रो पर विस्तृत 'कृतकोटि' नामक व्याख्या लिखने वाला बोधयन अथवा उसकी विस्तृत वृत्ति का सक्षेप करने वाला उपवर्ष हो सकता है।

ब्रह्म, जीवात्मा तथा प्रकृति की एकता और विभिन्नता के विषय मे बोधयन का क्या सिद्धान्त रहा होगा यह निश्चित रूपएसे कहना कठिन है क्योकि बोधयन के बहुत थोडे सन्दर्भ उपलब्ध है। कुछ विद्वान मानते है कि ये कृष्ण यजुर्वेद के आचार्य है। इनका मुख्य ग्रन्थ 'बोधायनधर्मसूत्र' है। यह धर्मशास्त्र कल्पसूत्र का अश है। 'बोधायनधर्मसूत्र'मे इसका उल्लेख है। यह ग्रन्थ सम्पूर्ण रूप से उपलब्ध नही है। इसमे आठ अध्याय है, जो अधिकाश श्लोकबद्ध हैं। इसमे आपस्तम्ब तथा वसिष्ठ के अनेक सूत्र अक्षरश प्राप्त होते है। यह धर्म सूत्र गौतम सूत्र से अर्वाचीन माना जाता है।इसका समय वि० पू० ५०० से २०० वर्ष है।

---

[1] भगवद्बोधायनकृता विस्तीर्णा ब्रह्मसूत्रवृत्ति पूर्वाचार्या सचिक्षिपु तन्मतानुसारेण सूत्राक्षराणि व्याख्यायन्ते। श्री रामानुज– श्रीभाष्य(१।१।१) पृ० १

[2] तस्य विशति अध्याय निबद्धस्य मीमासाशास्त्रस्य कृतकोटि नामधेयम भाष्य बोधायनेन कृतम् तद् ग्रन्थ बाहुल्यभयादुपेक्ष्य किञ्चित् सक्षिप्तमुपवर्षेण कृतम् (प्रपञ्चहृदय, उपाङ्ग प्रकरण। पृ० ३६)

उपवर्ष

भगवान उपवर्ष अत्यन्त प्राचीन वेदान्ताचार्य थे। भगवान शङ्कर ने ब्रह्मसूत्र शाङ्कर भाष्य मे दो स्थलो पर बहुत आदर के साथ नाम लिया है तथा 'भगवद्' शब्द का प्रयोग है।[1] शबर स्वमी ने भी अपने भाष्य मे अचार्य उपवर्ष का नाम उल्लिखित किया है।(मी० सू० १।११५) आचार्य उपवर्ष ने महर्षि पतजलि के सिद्धान्त स्फोटवाद का खण्डन किया।[2] अत इनका समय ई०पू० प्रथम और द्वितीय शताब्दी ई० पू० के बीच का है।[3]

पाणिनि का समय बुद्ध पूर्व प्रमाणित होने पर यह निश्चित है कि पाणिनि का गुरु आचार्य 'वर्ष' उसका पूर्व समकालिक है। 'वर्ष' के भाई उपवर्ष का काल भी वही सभव है। इस प्रकार आधुनिक विद्वानो ने उपवर्ष को पाणिनि का समकालिक माना है।

ब्रह्मसूत्रो पर बोधायन ने अतिविस्तृत वृत्ति लिखी उसमे से कुछ उपेक्षित कर उपवर्ष ने उसका सक्षेप किया। 'प्रपञ्चहृदय' ग्रन्थ के लेख से पता चलता है कि उपवर्ष का ग्रन्थ अपने रूप मे स्वतत्र था।

श्री मुरलीधर पाण्डेय ने लिख है– ''इत्थश्रीबोधयनोपवर्षयोर्भिन्नत्वचाभिन्नत्व चायाति किन्तु विशिष्टाद्वैतस्य प्रमुखतम आचार्यो वेदान्त देशिकोऽधिकदार्ढयेन उपवर्षबोधयनोरैक्य वदति श्री भाष्य तत्त्वटीकायाम्–

---

[1] क वर्ण एव तु शब्द – इतिभगवानुपवर्ष (ब्र० सू० शा० भा० १।३।२८)
ख अतएव भगवतोपवर्षेण प्रथमतन्त्र आत्मास्तित्वाभिधान प्रसक्तौ शारीरके वक्ष्याम इत्युद्वार कृत (ब्र० सू० शा० भा०)(३/३/५३)

[2] मीमासादर्शन– शबर भाष्य– १।१।५। बृत्तिकार ग्रन्थनामकोलेख, लेखक श्री गङ्गानाथ झा, चतुर्थ ओरियण्टल कान्फ्रेस, इलाहाबाद १६२६– पृ०४६ प्रकाशित।

[3] तस्य विशति अध्याय निबद्धस्य मीमासाशास्त्रस्य 'कृतिकोटि' नामधेय भाष्य बोधायनेन कृतम्। तद्ग्रन्थवाहुन्यभयादुतुक्ष्य किञ्चद्सक्षिप्तमुपवर्षेणकृतम्। उपाङ्ग प्रकरण, पृ० ३६

''वृत्तिकारोपज्ञ स्वमतमोह– शब्दस्येति। अपि र्दषणसमुच्चयार्थ अत्र शाबरभाष्यम् गौरित्यत्र क शब्द गकारौकार विसर्जनीया इति। बृत्तिकारस्य बोधायनस्यैव ह्युपवर्ष इति स्यान्नाम।'' [१]

कुछलोगो का मत है कि उपवर्ष सास्कारिक नाम है तथा बोधायन गोत्रनाम है। आचार्य वेदान्तदेशिक का बोधायन और उपवर्ष की अभिन्नता मे लिखागया यह लेख स्वय अपने मे सदिग्ध है। उस समय यह समस्य नही रहती, जब हम यह मान लेते है। कि उपवर्ष द्वारा किया गया सक्षेप बोधायन की रचना के आधार पर एक स्वतत्र लघुकाय रचन है। परिणामत बोधायन और उपवर्ष को एक व्यक्ति समझना नितान्त भ्रामक है। वास्तव मे उपवर्ष और बोधयन दो व्यक्ति थे। उपवर्ष अद्रैत वेदान्ती थे। वेदान्तन और बोधायन विशिटाद्रैतवादी थे। रामानुज वेदान्त और रामनन्द वेदान्त मे बोधयन को विशिष्टाद्वैतवादी माना गया है।

गुहदेव और कपर्दी

वेदान्त के प्राग आचार्यो मे आचार्य गुहदेव का नाम वैष्णव सम्प्रदाय के ग्रन्थो मे उल्लिखित मिलता है। रामानुज रचित 'वेदार्थ सग्रह'[2] मे और श्री निवासदास की ''यतीन्द्रमतदीपिका''[3] मे गुहदेव, कदर्पी और भारुचि इन तीनो आचार्यो का नाम वर्णित है।

आचार्य गुहदेव ने ब्रह्मसूत्रो पर काई व्याख्याग्रन्थ लिखा था या नही इसके विषय मे जानकारी का कोई ऐतिहासिक एव सैद्धान्तिक विवरण प्राप्त करने का साधन नही है। परवर्ती आचार्यो द्वारा गुहदेवका नाम वेदान्त की आचार्य परम्परा मे सम्मान पूर्वक उद्धृत किया गया है अतेव यह अनुमान भ्रामक नही होगा कि गुहदेव वेदन्त के

[1] श्री मुरली धर पाण्डेय– शकरातप्रागद्वैतवाद – पृ० १।२

[2] श्रीरामआचार्य– वेदार्थ सग्रह– पृ० १५४।

[3] यतीन्द्रमत दीपिका– 'व्यास–बोधायन–गुहदेव–भरुचि–ब्रह्म नन्दिद्रमिलाचार्य– श्रीपरकुशनाथ– यामुनमुनि– यतीश्वर प्रभृतीना मतानुसारेण' इत्यादि।(यतीन्द्रनाथदीपिका– पृ०–१ वारणसी सस्करण)

मैाखिक या लौकिक प्रचार से अवश्य जुडे रहे होगे। निश्चित है आचार्य गुहदेव निर्विशेष ब्रह्मवादी नही था क्योकि बाद मे आचार्य शङ्कर ने ब्रह्मवाद को अधिक स्पष्ट रूप मे प्रस्तुत किया।

श्रीनिवास दास 'यतीन्द्र दीपिका' मे जो आचार्यो की सूची दी गयी है वह काल कम से दी गयी है इस क्रम से अचार्य गुहदेव भारुचि के पूर्ववर्ती सिद्ध होते है। अचार्य रामानुज गुहदेव और कपर्दी की गणना शिष्ट जनो मे की है। इसलिए ये दोनो विद्वान विशिष्टाद्वैतवादी रहे है।

आचार्य भारुचि

आचार्य भारुचि वैष्णव सम्प्रदाय के थे। रामानुज ने "वेदार्थ सग्रह" मे अपने पूर्ववर्ती कुछ आचार्यो के नाम उल्लिखित किया है। "भगवद्बोधायनटङ्कद्रविडगुहदेवकपर्दिभारुचिप्रभृत्यविगीतशिष्टपरिगृहीत।"[१]

विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा (१/१८, २/१२४) और माधवाचार्य ने पाराशर सहिता की टीका मे भारुचि को धर्मशास्त्र का लेखक बतलाया है। 'सरस्वती विलास' नामक ग्रन्थ मे भारुचि को धर्मशास्त्रकार के रूप मे बताया गया है।[२]

आचार्य भारुचि 'विष्णुधर्म सूत्र' पर एक व्याख्या ग्रन्थ लिखे थे। यह पाञ्चरात्र सम्प्रदाय के अनुयायी थे जो वैष्णव का उपजीव्य ग्रन्थ है इसीलिये रामानुज ने पूर्ववर्ती आचार्यो मे मुख्य स्थान दिया। भारुचि का समय ६वी शती के प्रथमार्द्ध तक का माना जाता है।[३]

आचार्य भर्तृहरि

---

[१] वेदार्थ सग्रह, पृ० १६६राघवाचार्य सम्पादित आचार्य पीठ, बरेली से स० २०१८ मे प्रकाशित सस्करण।

[२] सरस्वती विलास– पृ० २० ५१ मैसूर सस्करण।

[३] P V Kanc History of Dharma Sastra, Vol I P 265

श्री शङ्कराचार्य से पूर्व अद्वैतवादी आचार्य भर्तृहरि अधिक प्रसिद्ध थे। इनका स्थितिकाल किसी ने ४००–४५० ई० तथा कुछ ५६१–६५१ ई० तक का, काश्मीर का मानते है। जनरव या जनश्रुति है कि भर्तृहरि राजा थे। कुछ विद्वान विक्रमादित्य का बडा भाई भर्तृहरि को मानते है।

भर्तृहरि के विक्रमादित्य के बडे भाई होने मे तो कोई ऐतिहासिक प्रमाण नही है। तब वे राजा थे, इसका प्रमाण लोकगाथा और लोकगीतो मे स्पष्ट सुनाई पडता है। इसके बारे मे एक प्राचीन श्लोक भी साक्ष्य दे रहा है–

या चिन्तयामि सतत मयि सा विरक्ता सा चान्यमिच्छति जन सा जनोऽन्यसक्त ।

अस्मत् कृते च परिशुष्यति काचिदन्याधिक ता च त च मदन च इमा च मा च।।

इस प्रकार पश्चाताप करते–करते उनके विवेक, वैराग्य और शास्त्रज्ञान सब उद्‌बुद्ध हो गये फिर तो 'चिन्ता यशसि न वपुसि व्यसन शास्त्रे न युवति कामास्त्रे। भक्र्तिभवे न विभवे प्राय परिदृश्यते महताम'।। इस श्लोक के उदाहरण बन गये। चीनी यात्री इत्सिग ने इन्हे बौद्ध माना है। परन्तु भारतीय विद्वान इन्हे शुद्ध सनातनी, महान शिवभक्त तथा अद्वैतवेदान्त के आचार्य मानते है।

आध्यात्म की परम्परा के आचार्यो मे भर्तृहरि का नाम प्रसिद्ध है। यामुनाचार्य ने अपनी 'सिद्वित्रय' (पृष्ठ ५) नामक रचना मे इसके नाम का उल्लेख किया है। प्राचीन आचार्यो ने अपने ग्रन्थ मे आदर के साथ सिद्धान्तो को ग्रहण किया है यथा– श्री पार्थ मिश्र की 'शास्त्रदीपिका'[1] मे सोमानन्द विरचित शिवदृष्ट मे[2], उमामाहेश्वर कृत तत्वदीपिका मे, विमुक्तात्मकृत 'इष्टसिद्ध मे[3] जयन्त भट्ट कृत 'न्याय मत्रजरी' मे[4] तथा

---

[1] 'तथा च हरिनिरुक्तम् प्रधानस्य मरणेनार्थिन इज्या प्रर्वतन्ति' इति। शास्त्रदीपिकायाम्– अ० १० पा० २ सू० ५७–५८

[2] सोमानन्द ८८० ई० वैयाकरणाना शब्दाद्वैतमधिक्षिपन्
वाक्यपदीयस्य कारिकाद्वय मुद्धरिति– अनादिनिधन ब्रम्ह० वा० प० १/१ तथान सोड्स्टि प्रत्ययो लोके (वा० प० १/१२३)

[3] इध्टसिद्धौ शब्दाद्वैत खण्डने श्री काम भर्तृहरेरय श्लोक उदधृत– अनादिनिधन ब्रम्हा इत्यादि वा० प० १/१

[4] न्याय मजरी मे–वाग्रुपता चेदुत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती। न प्रकाश प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी।। वा० प० १/१२५ [5]
नाशोत्पाद समालीढ ब्रम्ह शब्दमयपरम।। त० स० श० ब्रे० प० १२८ श्लोक

शान्तरक्षित के तत्त्वसग्रह मे उद्धृत है। सस्कृत वाड्मय मे भर्तृहरि नाम के महान विद्वान के लिखे ग्रन्थ ये है– (१) भर्तृहरिशतकम् (इसके तीन भाग है शृगारशतकम्, नीतिशतकम्, वैराग्यशतकम्) (२) वाक्यपदीयम् (३) भट्टि महाकाव्यम्।[1]

इस काव्य के निर्माता के बारे मे विवाद था पर यह विवाद अब समाप्त प्राय है। नवीनतम कोई भर्तृहरि इसका लेखक है ऐसा मान लिया गया है। शतकत्रय और वाक्यपदीय के लेखक के बारे मे कोई विवाद नही है। ऐतिहासिको को सन्देह है कि शतकत्रय के लेखक भर्तृहरि वैदिक है और वाक्यपदीय के रचयिता भर्तृहरि वैदिक है और वाक्य पदीय के रचयिता भर्तृहरि बौद्ध है। किन्तु बहुमत दोनो के लेखक भर्तृहरि को एक तथा वैदिक ही मानने लगा है।[2]

इस समय भर्तृहरि का एक मात्र ग्रन्थ 'वाक्यपदीय' ही उपलब्ध है। जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसमे तीन काण्ड है– ब्रह्मकाण्ड, वाक्यकाण्ड, पदकाण्ड। प्रथम काण्ड मे शब्दाद्वैतवाद का विवेचन किया गया है। वाक्यपदीय के प्रथम दो काण्डो पर भर्तृहरि रचित एक वृत्ति भी है और ब्रह्मकाण्ड पर अम्बाकर्ती नामक टीका रघुनाथ शर्मा द्वारा लिखा गया है। महाभाष्य की टीका दीपिका, शब्दधातु समीक्षा, त्रयशतक और भट्टिकाव्य भी भर्तृहरि के ग्रन्थ बताये जाते है। शब्दधातु समीक्षा उपलब्ध नही है।

वाक्यपदीय के कई अश लुप्तप्राय है। इसके द्वितीय काण्ड के ७६ कारिकाओ के व्याख्यान मे श्रीपुण्यराज ने लक्षण समुद्देश और वाधसमुद्देश की चर्चा की है। लक्षण समुद्देश तो उस समय भी लुप्तप्राय ही था।[3] पुण्यराज ने भी इसको माना है।[4]

भर्तृहरि का यह वाक्यपदीय ग्रन्थ अद्वैतप्रस्थान (उपदेशकग्रन्थ) मे शब्दाद्वैतवाद का समर्थक है। शब्द ही अद्वितीय ब्रह्म है। यह इस ग्रन्थ मे प्रतिष्ठापित किया है।

---

[1] भाटिटकाव्य टीकासु जयमगला परित्यज्यान्यासु सर्वासु टीकासु स्पघ्टतो भर्तृहरि रुदित।

[2] दृघ्टव्य– आचार्य भर्तृहरि बौद्ध इति पक्षे श्री वाचस्पतिमिश्र विरचित तत्वबिन्दुस्तट्टीका च।

[3] वाक्यपदीय २/७७ का० पुण्य० व्या०

[4] 'एतच्च उपमा समुद्देशेपि अर्थविचारणावसरे सविस्तर प्रदर्शयिघ्यति।' वा० प०२/१२६–१/२ का पुण्य० व्या०

उन्होने व्याकरण प्रधान ग्रन्थ वाक्यपदीय मे (वाक्य च पद वाक्यपदे ते अधिकृत्य कृतेऽस्मिन ग्रन्थे) प्रथमकाण्ड की ब्रह्मकाण्ड यह सामाख्या की है। प्रथम ब्रह्मकाण्ड मे सम्पूर्ण ग्रन्थ का प्रस्तावना भूत मूलतत्त्व निरुपित किया है तथा वाक्यकाण्ड मे ही स्फोट निरूपण परक एव ब्रह्मनिरुपणपरक प्रथमकाण्ड का अर्न्तभाव किया गया है। इस ग्रन्थ की पहली कारिका मे ही ब्रह्म, जगत तथा ब्रह्म के जगत रूप मे अवभासित होने मे कारण और विवर्त अविद्याजन्य मिथ्यारूप निर्दिष्ट किये गये है। यथा–

"अनादि निधन ब्रह्म शब्दतत्त्व यदक्षरम्।

विवर्ततेऽर्थ भावेन प्रक्रिया जगतो यत ।।" (वा० प० १ का १ का०)

अर्थात् ब्रह्म आदि और अन्त से रहित, अविनाशी और शब्द तत्त्व है। वह अर्थ भाव से विवर्तित रुप मे भासित होता है। वाक्य पदीय का यह सिद्धान्त शब्दब्रह्मवाद अथवा शब्दाद्वैतवाद है। शब्दतत्त्व अक्षरब्रह्म है।[3] समस्त सृष्टि शब्दतत्त्व से उत्पन्न हुई है, शब्द स्थित है और अन्तत शब्दतत्त्व मे लीन हो जाती है। जगत की यह प्रक्रिया शब्द तत्त्व या अक्षर ब्रह्म का विवर्त है। इस प्रकार भर्तृहरि विर्वतवादी थे। किन्तु काश्मीर शैवमत के आचार्यों ने उनके विर्वतवाद को परिणाम वाद बतलाया है।

इस प्रकार भर्तृहरि ने शब्दाद्वैतवाद का प्रतिपादन विवर्तवाद और मायावाद के आधार पर किया है। उनके पूर्व 'विवर्त' शब्द का प्रयोग किसी भी दार्शनिक ने नही किया था। भर्तृहरि ही विवर्तवाद के जनक है।

शब्दः वाक्

इस नीति मे शब्द वाणी है और इस प्रकार वाक् तत्त्व है। शब्द दो प्रकार का है। एक शब्दो का निमित्त रूप (स्फोट) और दूसरा अर्थ की प्रतीति कराने वाला बैखारी रुप। जैसा कि कहा गया है –

---

[3] क– अथाय मान्तरो ज्ञाता सूक्ष्मवागात्मना स्थिर । व्यक्तये स्वस्य रुपस्य शब्दत्वेन विवर्तते।। वा० प० १/११२
ख– वा० प० १/१२६

द्वावुपादान शब्देषु शब्दौ शब्दविदो विदु ।

एको निमित्त शब्दानाम् परोऽथे प्रयुज्यते।। (वा० प० १/४४)

स्फोटवाद

ऋग्वेद मे वाक् के चार प्रकार परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बखारी बताये गये है भर्तृहरि इनमे से केवल अन्तिम तीन को मानते है। इनके मत से शब्द तत्त्व की तीन अवस्थाए है– पश्यन्ती, मध्यमा और बैखारी। पश्यन्ती मे शब्द और अर्थ का भेद नही है, मध्यमा मे शब्द और अर्थ के बीच भेद है, किन्तु सयोग रहता है। यह मानसिक अवस्था है इसमे शब्द प्रकाशक है अर्थ प्रकाश्य है इसी अवस्था मे 'शब्द' को भर्तृहरि ने 'स्फोट' का नाम दिया है।

बैखरी शब्द की अभिव्यक्त अवस्था है इसे अन्य लोग सुन सकते है, मनुष्य आपसी व्यवहार मे इसी का प्रयोग करते है। शब्द की आत्मा स्फोट और ध्वनि है। ध्वनि अनित्य है, कार्य है व्यक्ति है, स्फोट नित्य है, कारण है जाति है। स्फोटवाद शब्दार्थ की एकता का सिद्धान्त है– 'स्फोट नित्य सत्तवात् जातिवत्।'

सत्ता द्वैतवाद

पूर्वोक्त शब्दाद्वैतवाद ही सत्ताद्वैतवाद है। यहा सत्तापद से
जाति पद विवाक्षित है। जाति शब्दार्थ है। सत्ता नित्य है और अनुस्यूत है इसलिये सत्ता ही 'ब्रह्म' है। इससे सत्ता ब्रह्मवाद और शब्दब्रह्मवाद एक ही है।

सत्ता द्वैत ही भावाद्वैतपद से भी अभिहित होता है। श्री मण्डन मिश्र भावाद्वैतवादी थे। सत्ता पदार्थ और भावपदार्थ समानार्थक है जैसे सत्ता नित्य है वैसे भाव भी नित्य है यह बात वाक्यपदीय विशेष रूप से जाति समुद्देश, द्रव्य समुद्देश तथा सम्बन्ध समुद्देश मे प्रतिपादित है। सत्ता और भाव एक ही तत्त्व है। यथा–

"तत्र च भावस्य परमार्थ रूपस्य सत्तात्मकस्य"। (वा० प० का० ३ जा० ख० ३६)

जीव

एक ही शब्द ब्रह्म काल नामक स्वात्रन्त्र्यशक्ति (अविद्या) के द्वारा भोक्ता, भोक्तव्य और भोगरुप से तथा दृश्य, दर्शन तथा द्रष्टा रूप से भासित होता है जैसा कि भर्तृहरि ने कहा है–

"एकस्य सर्ववीजस्य यस्य चेयमनेकधा।।

भोक्तृभोक्तव्य रूपेण भोगरूपेण च स्थिति"।। (वा० प० १/४)

अर्थात् सबके बीज रूप एकमात्र जिस की (शब्दब्रह्म) की भोक्ता, भोक्तव्य रूप से तथा भोग रूप से अनेक प्रकार की होती है।

यहा भोक्ता (जीव) है भोक्तव्य विषय हो, भोग है विषय भोग से उत्पन्न सुख–दुख आदि का अनुभव है। दृष्य विषय है, द्रष्टा जीव है और दर्शन साध्य स्वभाव किया है।

ब्रह्म और जीव मे वस्तुत कोई भेद नही है। किन्तु ब्रह्म ही जीवरूप से और भोक्ता के रुप से अवस्थित रहता है। सर्वेश्वर, सर्वज्ञ परमात्मा ही भोक्ता जीव रूप भी होता है, यह बात भर्तृहरि ने स्वरचित वृत्ति मे कही है[1]।

अर्थात् अपने से अपने को अलग करके पृथक–पृथक भावो की सृष्टि करके सर्वेश्वर, सर्वमय, भोक्ता स्वप्न मे प्रवृत्त होता है।

अध्यारोपवाद विधि

अध्यारोपवाद– विधि का तात्पर्य असत्य से सत्य की ओर चलना है (असतो मा सद् गमय) इस प्रसग मे भर्तृहरि कहते है कि जैसे बालको को असत्य के द्वारा (अक्षरो को वास्तविकता प्रदान करके) शब्द का ज्ञान कराया जाता है।[2]

---

[1] प्रविभज्यात्मनात्मान सृष्टवा भावान पृथन्विधान। सर्वेश्वर सर्वमय स्वप्ने भोक्ता प्रर्वतते।। वा० प० १/१२८ स्वोवृत्तौ

[2] उपाय शिक्षमाणाना बालानामुपलालना । असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा तत सत्य समीहते।। वा० प० २/२४०

शड्कराचार्य के द्वारा जिस प्रकार अविद्योपाधि शब्द का प्रयोग किया गया है वैसे ही भर्तृहरि ने असत्योपाधि का प्रयोग किया है– ''सत्य वस्तु तदाकारैर सत्यैरवधार्यते। असत्योपाधिभि शब्दै सत्यमेवाभिधीयते''।। (वा० प० १/२०–२१)

मोक्ष

इस मत मे परब्रह्म की प्राप्ति, परब्रह्म का लाभ, परब्रह्म का सायुज्य, मोक्ष कहा गया है। व्याकरण का महान प्रयोजन कहते हुए भर्तृहरि ने कहा कि इस मोक्ष के लिए ही व्याकरण महान उपयोगी है।

'प्राप्त्युपायोऽनुकारश्च । (वा० प० १–५)

भर्तृहरि ने स्वोपज्ञवृत्ति मे मेरा, मैं इस अहकार की गाठ का अतिक्रमण करना ब्रह्म की प्राप्ति है ऐसा कहा है। यहां ब्रह्म की प्राप्ति सायुज्य मोक्ष है। जैसा कि कहा है–

'तदव्याकरणमागम्यपरब्रह्माधिगम्यते'। (वा० प० १–२२)

अर्थात् व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करके परब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है। (वा० प० १–२२)

मोक्षसाधन

शब्दब्रह्म के सायुज्य रुप मोक्ष की प्राप्ति के लिये शब्द का वाच्यार्थ ज्ञान कारण है। उसमे व्याकरण परम साधन है। व्याकरण द्वारा जो शब्द का सस्कार होता है वही शब्दरूप परमात्मा की सिद्धि का उपाय है। इसलिये जो शब्द की षड्भाव विकार रूप प्रतिभा को जानता है वह शब्दरुप परब्रह्म का सायुज्य प्राप्त करता है जैसा कि भर्तृहरि ने कहा है– तस्माद् यशब्द सस्कार सा सिद्धि परमात्मन तस्य प्रवृत्तितत्त्वज्ञस्तद ब्रह्मामृतमश्नुते।। (वा० प० १/१३२) अर्थात् शब्दो का जो सस्कार है, वह परमात्मा की सिद्धि है। इसकी प्रवृत्ति के तत्त्व का ज्ञाता व्यक्ति ब्रह्मामृत का भोग करता है। सूर्य

नारायण शुक्ल ने 'भावप्रदीप' नामक अपनी वाक्यपदीय की टीका मे परावाक् को ही ब्रह्म कहा है।[1]

उपर्युक्त वाक्य से ही यह प्रतीत होता है कि ब्रह्म ही अविद्या के कारण नाना रुपो मे भासित होता है। यही दार्शनिक दृष्टि अद्वैत वेदान्त की भी है। तत्वदीपिकाकार ने भर्तृहरि को स्पष्ट रूप से अद्वैतवादी स्वीकार किया है।

आचार्य भर्तृमित्र

जयन्त भट्ट की 'न्याय मञ्जरी' शब्द के नित्यानित्य विवेचन प्रसग मे दो स्थलो (पृ० २१३, २२६) पर भर्तृमित्र का उल्लेख हुआ है। यामुनाचार्य के 'सिद्धित्रय' मे भर्तृमित्र का उल्लेख किया है।[2] इसके अतिरिक्त कुमारिल भट्ट ने अपने 'श्लोकवार्तिक' मे (१/१/१०,१३०–१३१) मे भी भर्तृमित्र की चर्चा की है।[3] वैष्णव ग्रन्थो मे उद्धृत भर्तृमित्र तथा मीमासा शास्त्र के ग्रन्थो मे वर्णित भर्तृमित्र एक ही है यह कहना निश्चित रूप से कठिन है।

आचार्य भर्तृमित्र की कोई रचना प्राप्त नही होती है, किन्तु भट्ट उम्बेक[4] ने माना भर्तृमित्र विरचित 'तत्वशुद्धि' नामक प्रकरण ग्रन्थ मीमांसा पर था। इससे यह सिद्ध होता है कि भट्ट उम्बेक के समय यह ग्रन्थ उपलब्ध रहा होगा। यह आचार्य, कुमारिल भट्ट और शङ्कर के पूर्ववर्ती थे।

ब्रह्मानन्दी, टङ्क

---

[1] शब्द ब्रम्ह वादिनस्तु ।परावाक्। एव ब्रम्हतदेव अविद्यया नानारुप भासते इति प्राहु। (भावप्रदीप, वाक्यपदीय ब्रम्हकाण्ड,– श्लोक १३२)

[2] यामुनाचार्य– यतीन्द्रमत दीपिका – पृ० ४–५ वाराणसी सस्करण।

[3] प्रायेणैव हि मीमासा लोके लोकायतीकृता।
तामस्तिकपथे कर्त्तुमया यत्न कृतो मया।। मीमासाप्रथम सूत्र का श्लोक वा० १/१/१०)

[4] भट्ट उम्बेक – 'श्लो० वा०' की प्रारम्भिक दसवे श्लोक की व्याख्या।

अद्वैत वेदान्त के आचार्यो मे आचार्य शङ्कर से पूर्व सर्व आचार्य ब्रह्मानन्दी हुये।[1] वेदान्त शास्त्रो मे ये नन्दी और आत्रेय नामो से भी विख्यात है।[2] इन्होने छान्दोग्यउपनिषद का व्याख्यान रूप वाक्य रचा है। यह वाक्य सक्षिप्त रूप है। इसलिए इनके वाक्य को 'सूत्र' कहा जाता है। अतएव इन्हे छान्दोग्यउपनिषद् की व्याख्याभूत सूत्रो के कर्ता, व्याख्यानभूत भाष्यकर्ता, वाक्यकर्त्ता और वृत्तिकार भी कहते है। यह बात सक्षेपशारीरक की विभिन्न टीकाओ मे श्री मधुसूदन सरस्वती, रामतीर्थ, नृसिहाश्रम और भाष्कराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र के भास्कर भाष्य मे तथा ब्रह्मसूत्र भाष्य की भामती एव कल्पतरू मे अमलानन्द ने लिखा है— श्री सर्वज्ञात्ममुनि द्वारा इनका वशपरिचय और सिद्धान्त मे स्पष्ट रूप से उद्धृत किया गया है। आज तक इनका समय निर्णीत नही हो पाया है किन्तु श्री शङ्कराचार्य, त्रोटकाचार्य, सर्वज्ञात्ममुनि, रामानुजाचार्य, प्रकाशात्म, सुदर्शन तथा वेकटनाथ आदि विद्वानो ने आदरपूर्वक इनके नाम और मत का उल्लेख किया है।[3] यथा— माण्डूक्य कारिका के वैतथ्य प्रकरण मे आचार्य शङ्कर ने ब्रह्मानन्दी का नाम लिया है— 'सिद्ध तु निवर्तकत्वादित्यागम् विदा सूत्रम्।' (मा०का० वै० प्र० ३२) आचार्य ब्रह्मानन्दी का वाक्य ग्रन्थ अब नही मिलता है। जहा—तहा वेदान्त ग्रन्थो मे उनके वाक्य तथा उनके व्याख्यान पाये जाते है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि उनका सिद्धान्त निर्विशेष अद्वैतवाद ही है। ब्रह्मानन्दी जीव और ब्रह्म मे एकता मानते है। इसका स्पष्टीकरण स्वामी विमुक्तात्मा ने इष्टसिद्धि मे तथा श्री ज्ञानोत्तम ने इष्ट सिद्धि के विवरण मे किया है— "सिद्ध तु निवर्तकत्वादिति चोक्त वाक्यकारै" (इष्टसिद्धौ पृ० ७२)।

---

[1] आचार्यटङ्कभर्तृप्रपञ्चभर्तृमित्रहरिब्रह्मदत्तशङ्करश्रीवत्साकभाष्करादिविरचितसितासितविविध निवन्धन । यामुनाचार्य के सिद्धित्रय पृष्ठ ५

[2] नान्दिकृत । सक्षेप शारीरक मे 3/१२१ श्री रामतीर्थ कृत व्याख्या मे

[3] 'ब्रम्हनन्दि विरचित वाक्याना सूत्र रुपाणाम्। स० शा० 3/२१७ तथा 3/२२० श्री म० सू० स० कृतसार —सग्रहटीकायाम्

ब्रह्मानन्दी विवर्तवाद सिद्धान्त के समर्थक थे। सक्षेपशारीरक मे आचार्य ब्रह्मानन्दी के सम्बन्ध मे पॉच श्लोक है– जिनसे अद्वैतवाद साधक एक ही श्लोक स्थाली पुलाक न्याय से यहा दिया जा रहा है–

पूर्वविकारमुपवर्ण्यशनैश्शनैस्तद्, दृष्टि विसृज्य निकट परिगृह्य तस्मात्।

सर्वविकारमथसव्यवहारमात्रमद्वैतमेवपरिरक्षतिवाक्यकार ।।

स० शा० ३–२२०

आचार्य ब्रह्मानन्दी के जो आठ वाक्य अद्वैत सम्प्रदाय के भाष्य आदि ग्रन्थो मे उपलब्ध होते है। वे श्री ब्रह्मानन्दी के सिद्धान्त के अनुकूल प्रतीत होते है। किन्तु जो बाइस वाक्य विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के ग्रन्थो मे उपलब्ध होते है वे भी अद्वैत सिद्धान्त के बाधक नही बनते है। इनमे बाईस वाक्यो मे तेरह वाक्य ब्रह्मसूत्र (१/१/१) के जिज्ञासाधिकरण मे ही प्राप्त होते है ये तेरह वाक्य न तो अद्वैत के बाधक है और न विशिष्टाद्वैत के बाधक है। अपितु वे सामान्य रुप से सभी वेदान्त के साधक है। ये प्राय उपासना के साधक है।

इस प्रकार से आचार्य ब्रह्मानन्दी ही श्री शङ्कराचार्य से पूर्ववर्ती अद्वैत वेदान्ताचार्यो मे इस प्रकार के सर्वप्रथम आचार्य थे जिनका ग्रन्थ तो उपलब्ध नही है, किन्तु उनके ग्रन्थ के तीस वाक्य वेदान्त के प्रामाणिक ग्रन्थो मे आज भी मिलते रहे है। विशिष्टाद्वैत ग्रन्थो मे प्राप्य बाइस वाक्य भी अद्वैत सिद्धान्त के प्रतिकूल नही है। उपासना की पूर्वावस्था मे पर और अपर ब्रह्म के बीच परब्रह्म का सगुण होना अद्वैताचार्यो को इष्ट है। अद्वैत ग्रन्थो मे मिलने वाले (ब्रह्मानन्दी के) वाक्य तो अद्वैत के अनुकूल ही है।

इन वाक्यो से आचार्य ब्रह्मानन्दी का वेदान्त सिद्धान्त इस प्रकार निश्चित होता है–श्री ब्रह्मानन्दी के मत मे ब्रह्मसत्, निर्विशेष नित्य एक और चित् रूप है जीव और

ब्रह्म मे एकता है। परमार्थवस्था मे जीव भी ब्रह्म ही है। इनके मत मे अज्ञान और अध्यास दोनो माने जाते है। अविद्या का अनिर्वचनीयत्व और विवर्तवाद स्वीकृत किये जाते है तथा यह सब दृश्यमान जगत न तो सत् है और न असत। किन्तु अनिर्वचनीय स्वीकार किया जाता है। इनके मत मे जगत् केवल मायामय तथा सव्यवहार मात्र है। श्री ब्रह्मानन्दी के 'सिद्ध तु निर्वतकत्वात्' इस सूत्र का अद्वैत वेदान्त मे महान आदर है।

टंङ्क

आचार्य रामानुज ने अपने ग्रन्थ 'वेदार्थ सग्रह' (पृष्ठ १५४) पर टक का उल्लेख किया है। टक विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के समर्थक प्रतीत होते है। श्री वेकटनाथ ने अति सम्मान के साथ स्मरण किया है– यथा– ''वेदविदुत्तम सर्वे बोधायनटङ्कद्रविडगुहदेवकपर्दिभारुचिप्रभृतिभि '' (तत्वमुक्तकलापस्य सर्वार्थ सिद्धौ)

द्रविड़ाचार्य

भारतीय दर्शन के विभिन्न ग्रन्थो मे आचार्य द्रविड का उल्लेख मिलता है। भगवत्पाद श्री शङ्कराचार्य के द्वारा 'सम्प्रदायवित'[१] 'आगमवित'[२] इत्यादि शब्दो से समादृत ये अद्वैतवेदान्त के महान आचार्य थे। शङ्कराचार्य ने द्रविडाचार्य के (त्वात्)' सिद्धतु निवर्टकत्वात्' सूत्र को उद्धत किया है।[३] शाङ्कर भाष्य के टीकाकार आनन्दगिरि द्रविणाचार्य को अद्वैतवादी मानते है।

इनके जीवनकाल के सम्बन्ध मे निश्चित मत नही है। टी० ए० श्री गोपीनाथ राय महोदय ने 'हिस्ट्री आफ श्री वैष्णव' नामक ग्रन्थो मे इनका स्थितिकाल नवम शताब्दी का पूर्वार्ध माना है। कुछ लोग अष्टम शताब्दी का पहला चरण मानते है।

---

[१] वृ० आ० उ० २/१/२० शाङ्कर भाष्य।
[२] माण्डूक्यकारिका २/३२ तथा ३/२० कारिका।
[३] सिद्ध तु निवर्तकात्वात्– इत्यागमविदा सूत्रम्। मा० का०, शा० भा० २/३२

कुप्पूस्वामी शास्त्री ने लिखा कि इनका काल आज भी अनिर्णीत ही है। ब्रह्मानन्दि के छान्दोग्योपनिषद् वाक्य पर द्रविणाचार्य ने एक टीका लिखी थी। वैष्णव सम्प्रदाय के ग्रन्थो मे भी द्रविडाचार्य का उल्लेख प्राप्त होता है।

रामानुज ने 'वेदार्थ सग्रह' मे आचार्य द्रविड का उल्लेख किया है।[1] यामुनाचार्य ने 'सिद्धित्रय' मे लिखा है– 'भगवता वादरायणेन इदमर्थमेव सूत्राणि प्रणीतानि विवृतानि च परिमित गम्भीर भाष्यकृता'। 'भाष्यकृता'[2] शब्द से द्रविडाचार्य को इगित किया है। सर्वज्ञात्म मुनिने 'सक्षेपशारीरक' मे द्रविणाचार्य का उल्लेख किया है।

इस प्रकार जैसे निर्विशेष अद्वैत सम्प्रदाय मे और विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय मे दोनो जगह इनका नाम आचार्य के रुप मे गिना जाता है। उसी प्रकार दोनो सम्प्रदायो मे इनका वाक्य प्रमाण के रूप मे उद्धृत किये गये है। अनेक वेदान्त ग्रन्थो मे द्रविणाचार्य के वाक्यरूप से जाने गये सत्रह वाक्य प्राप्त होते है। उनमे से छ वाक्य निर्विशेष अद्वैत ग्रन्थो मे तथा ग्यारह वाक्य विशिष्टाद्वैत ग्रन्थो मे पाया जाता है।

इनका दार्शनिक सिद्धान्त इस प्रकार है– श्री द्रविणाचार्य के मत मे परब्रह्म का निर्गुण होना अभीष्ट है। 'सक्षेप शारीरक' मे सर्वज्ञात्ममुनि ने वाक्यकार श्री ब्रह्मानन्दी का मत बताकर इस (निर्गुण) का उपपादन किया है। यथा–

अर्न्तगुणा भगवती परदेवतेति, प्रत्यग्गुणेति भगवानानपि भाष्यकार ।
आह स्म यत्तदिह निर्गुणवस्तुवादे, सगच्छते न तु पुन सगुण प्रवादे।।

(स० शा० ३/२२१)

यहा 'अर्न्तगुणा' इस पद मे गुण पद स्वरूपपरक है, देवतापद ब्रह्मपरक है। इसलिये प्रत्यागात्मस्वरुप परदेवता परब्रह्म है।

---

[1] भगवद बोधायनटक द्रविण । वेदार्थ सग्रह, पृ० १४८ काशी सस्करण
[2] सिद्धित्रये – पृ० ५

द्रविणाचार्य के मत मे अज्ञान से ही बन्धन या ससारित्व होता है और अज्ञान का दूर हो जाना ही मोक्ष है। बृहदारण्यकोपनिषद् के शाड्करभाष्य मे द्रविडाचार्य की प्रसिद्ध आख्यायिका के अनुवाद मे भगवान शड्कर ने स्पष्ट किया है। यथा– 'तुम एतद्रूपक नही हो, परब्रह्म ही हो, अससारी हो। आचार्य ने यह उद्बोधान दिया। तब तीन एषेणाओ (पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा) की अनुवृत्ति को त्यागकर 'मै ब्रह्म ही हूँ' इस भाव को प्राप्त कर लेता है (वृ० आ० उ० शा० भा० २/१/२०)।

इस सिद्धान्त मे जीव और ब्रह्म की एकता, अज्ञान से ही आत्मा ससारी होता है। 'तत्वमसि' इत्यादि महावाक्य ज्ञान से अज्ञान दूर होता है। और ब्रह्म की प्राप्ति या मोक्ष होता है। इन (द्रविडाचार्य) के मत मे मोक्ष स्वरूप का ज्ञान है अथवा ब्रह्म की प्राप्ति मोक्ष है। विवर्तवाद और अनिर्वचनीय दोनो स्वीकृत है।

विशिष्टद्वैत ग्रन्थो मे प्राप्त श्री द्रविणाचार्य के वाक्य विशेषतया उपासना परक है और परमात्मा के सगुणत्व के प्रतिपादक है। ब्रह्मसूत्र मे १/१/१६, २/१/१४, ४/३/२४, ४/४/१६ सूत्रो के शाड्कर भाष्य मे ब्रह्म की सगुणरुपता उसकी उपासना और उपासना के फल की प्राप्ति का प्रतिपादन मिलता है।

श्री शड्कराचार्य, श्री सुरेश्वराचार्य, वाचस्पति मिश्र, मधुसूदनसरस्वती, रामतीर्थ, नृसिहाश्रम, आनन्दगिरि आदि आचार्यो ने द्रविडाचार्य के प्रति पूज्यभाव प्रकट किया है।

इस प्रकार द्रविडाचार्य है, निर्विशेष अद्वैत ब्रह्म के प्रतिपादक और निर्विशेष ब्रह्म के अद्वैत सम्प्रदाय के परमादरणीय विद्वान इनका सिद्धान्त निर्विशेष अद्वैत ब्रह्म के परम अनुकूल है।

आचार्य ब्रह्मदत्त

भगवान शङ्कराचार्य से पूर्ववर्ती वेदान्तियो मे आचार्य ब्रह्मदत्त प्रमुखतम है। इन्होने भी ब्रह्मसूत्र का भाष्य रचा है। इस बात की जानकारी श्री यामुनाचार्य ने अपने 'सिद्धित्रय ग्रन्थ'[१] मे और एक अज्ञातनामा विद्वान ने 'प्रपञ्च हृदय' मे दी है।

मध्वसम्प्रदाय के 'मणिमञ्जरी' नामक ग्रन्थ मे (६/२/३) भगवान शङ्कराचार्य के समकालिक ये है, ऐसा लिखा है, किन्तु इसकी प्रामाणिकता मे विद्वानो को सदेह है।[२] सुरेश्वराचार्य ने बृहदारण्यक भाष्यवार्तिक मे, वेदान्तदेशिक श्री वेकटनाथ ने 'तत्वमुक्ताकलाप' की <u>'सर्वार्थ सिद्धिवृत्ति'</u> मे वेदान्तचार्य होने के कारण इसका स्मरण किया है।

इनके स्थितिकाल के विषय में कुछ भी ज्ञात नही है। आज भी इस आचार्य का स्थितिकाल अनिर्णीत ही है। ऐसा हिरियन्ना महोदय ने भी माना है। तथा उनके मत मे ब्रह्मसूत्र भाष्य तथा छान्दोग्योपनिषद भाष्य की भी रचना आचार्य ब्रह्मदत्त ने की। अतएव सक्षेपशारीरक के (३/२१६) की सुबोधिनी टीका मे छान्दोग्य वाक्यकार के प्रसग मे इनका नाम उल्लिखित है।

आचार्य ब्रह्मदत्त की कोई रचना उपलब्ध नही है। केवल वेदान्त ग्रन्थो मे तथा उनकी टीकाओ मे उनके मत का उल्लेख प्राप्त होता है। उसके अनुसार ब्रह्म, जीव, जगत्, मोक्ष आदि के विषय मे श्री ब्रह्मदत्त के सिद्वान्त सम्बन्धी कुछ तथ्य मिलता है। <u>श्री ब्रह्मदत्त अद्वैतवादी थे। इनके मत मे जीव अनित्य है तथा एकमात्र ब्रह्म ही नित्य पदार्थ है।[३]</u> दोनो की भिन्नता प्रतीत होने पर भी ब्रह्म से जीव भिन्न नही है किन्तु अभिन्न ही है। अतएव सुरेश्वराचार्य ने ब्रह्मदत्त को अद्वैतवादी कहकर स्मरण किया है

अनुत्सारित नानात्व ब्रह्म यस्यापि वादिन ।

---

[१] क— भर्तृहरि ब्रम्हदत्त शकर श्री वत्साग भाष्क्रादि विरचित । सिद्धित्रये पृ० ५
ख— ब्र० काण्डस्य भगवत्पाद ब्रम्हदत्त भास्करादिर्भितभेदेनापि कृतम' प्रपच हृदय पृ० ३६

[२] द्र० — म० म० श्री गोपीनाथ कविराज महोदयस्य वेदान्त दर्शन भूमिकाया पृ० १३

[३] सर्वार्ध सिद्धि २/१६

तन्मतेनापि दुस्साध्यो ज्ञानकर्म समुच्चय ।।

(नै०सि० १/६८)

ब्रह्मदत्त कर्म और ज्ञान के समुच्चय के पक्षपाती प्रतीत होते है परन्तु ब्रह्मदत्त आत्मज्ञान मे उपासना विधि का श्रेय मानते है।

सकृत प्रवृत्तया मृदनाति क्रियाकरकरुपभृत।

अज्ञानमैागम ज्ञान सागत्य नास्त्यतोऽनयो ।।

(नै०सि० १/६७)

आचार्य श्री ब्रह्मदत्त के समान आर्यवेदान्ताचार्य आश्मरथ्य भी ब्रह्म से जीव का जन्म मानते है किन्तु इन दोनो मे इतना भेद है कि आश्मरथ्य भेदाभेदवादी है और ब्रह्मदत्त अद्वैतवादी है।

जीव– ब्रह्मदत्त के मत मे जीव अनित्य है, क्योकि उसका जन्म होता है जीव ब्रह्म से उत्पन्न होता है, और ब्रह्म मे लीन हो जाता है जैसा कि 'तत्त्व मुक्ताकलाप' मे कहा गया है–

'एक ब्रह्म ही नित्य है और उससे इतर सब जन्म आदि लेने वाले है इसलिये जीव भी अचित के समान जन्मवान है।' (त० मु० क० २/१६) आचार्य ब्रह्मदत्त के मत मे जीवात्मा अपनी कार्यावस्था मे ब्रह्म से भिन्न माना जा सकता है। वह अपने कारण रुप मे होने पर ब्रह्म से अभिन्न है। इस प्रकार आचार्य के मत से ब्रह्म और जीव का भेदा–भेद स्वरुप प्रमाणित होता है। पूर्वकाल मे जीव जन्मवादी सम्प्रदाय भी था इसका सकेत उपनिषद्, पुराण तथा महाकवियो के बचनो मे उपलब्ध है। यथा–

(१) 'तोयेन जीवान् व्यससर्ज भूम्याम्।' (महानारायणोपनिषदि १–४)

(२) प्रकृतिर्या मयाख्यात व्यक्ताव्यक्त स्वरुपिणी।

पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयते परमात्मनि ।। (विष्णुपुराणे ६/४/१२६)

(३) यदि जीव परमात्मा का कार्य होने के कारण परमात्मा ही नही होगा तब परमात्मा से अतिरिक्त होने के कारण परमात्मा के ज्ञान से यह विज्ञान सिद्ध नही होगा, अथवा आत्मा ब्रह्म एक ही पहले था, इस प्रकार सृष्टि से पहले एकत्व का अवधारण होता है।

'जैसे देदीप्यमान अग्नि से तद्रूप सहस्रो चिनगारिया उत्पन्न होती है वैसे ब्रह्म से विविध जीव या पदार्थ उत्पन्न होते है।' इत्यादि वचनो से ब्रह्म से जीवो की उत्पत्ति सुनी गई है।

महाकवि कालिदास ने उस समय के प्रचलित सम्प्रदाय के सिद्धान्तानुसार यह कहा है कि–

आत्मनमात्मना वेत्सि सृजस्यात्मानमात्मना।

आत्मनाकृतिना च त्वमात्मन्येव प्रलीयसे।। (कुमार सभवे २/१०)

अर्थात् आप अपने को अपने मे ही जानते है और अपने आप अपने को उत्पन्न करते है और जब अपना काम पूरा कर चुकते है तब अपने को अपने मे लीन कर लेते है।

इससे स्पष्ट होता है कि परमात्मा जीवो को उत्पन्न करते है। श्री सुरेश्वराचार्य ने भी मानसोल्लास मे जीव–जन्म के विषय मे कहा है।

जगत

आचार्य ब्रह्मदत्त जीव के समान जगत् का भी जन्म ब्रह्म से मानते है जैसा कि 'तत्वमुक्ताकलाप' मे ब्रह्मदत्त का मत कहा गया है– 'एक ब्रह्मैव नित्य तदितरदखिल तत्र जन्मादिमाक् ।' इत्यादि (त० मु० क० २–१६)।

सक्षेप शारीरक की 'सुबोधिनी टीका' मे ब्रह्मदत्त के मत मे जगत अविद्यामूलक है– यह कहा गया है।

मोक्ष और मोक्ष का साधन

श्री ब्रह्मदत्त के मत मे ब्रह्म से उत्पन्न हाने वाले जीव का ब्रह्म मे लय ही मोक्ष कहा जाता है। यह लय अज्ञान का नाश होने पर होता है इस अज्ञान के नाश होने का उपाय या मोक्ष साधन केवल ज्ञान था केवल कर्म नही होता है, किन्तु दोनो कर्म और ज्ञान होते है। पहले 'तत्वमसि' इत्यादि औपनिषद महाकाब्यो से ब्रह्म का परोक्ष ज्ञान प्राप्त करके 'अह ब्रह्मास्मि' इस प्रकार की भावना अपने मे करके इसे चिरकालपर्यन्त करना चाहिए। इस प्रकार दृढतर अभ्यास के द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार रुप ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति होती है। इसलिये ज्ञानाभ्यास कर्म का त्याग नही करना चाहिए। इस कारण 'अह ब्रह्मास्मि' इस ज्ञान के अभ्यास के साथ वैदिक कर्म करने से ज्ञान और कर्म समुच्चय सगत होता है 'देव होकर देवो को प्राप्त करना है' इस श्रुति का भी तात्पर्य ज्ञान और कर्म का समुच्चय ही सगत होता है। ब्रह्मभावना की वृद्धि हो जाने से देवभाव का साक्षात्कार होता है। तब उद्धृत देहपात के अनन्तर उपास्यदेव भाव की प्राप्ति हो जाती है यह ब्रह्मदत्त का मत श्री सुरेश्वराचार्य ने 'नैष्कर्म्य सिद्धि' मे उद्वत किया है–

इस प्रकार उपसहार मे कोई अपने सम्प्रदाय के बल के गर्व से कहते है– जो यह वेदान्त वाक्य 'अह ब्रह्म' यह विज्ञान उत्पन्न होता है, वही उत्पत्ति मात्र से अज्ञान निरस्त हो जाता है तब दिन–दिन लम्बे समय तक उपासना युक्त रहने वाले की भावना की वृद्धि होने से समस्त अज्ञान नष्ट हो जाता है 'देवोभूत्वा देवानप्योति' ऐसा श्रुति मे कहा है। (नै० सि० १/६७)

इस प्रकार ब्रह्मस्वरूप के अवबोधक 'तत्वमसि' इत्सादि वक्यो से ब्रह्मस्वरुप का बोध हो जाने के पश्चात् 'आत्मावाऽरे' इत्यादि वाक्यो से ब्रह्म की भावना की जाती है। इस कारण 'तत्वमसि' इत्यादि वाक्य केवल ब्रह्म स्वरूप मात्र का बोधक है। अज्ञान की निवृत्ति तो भावनाजन्य ज्ञान की निवृत्ति से ही होती है। अतएव आत्मा भावना निधेय है। इस प्रकार कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दोनो साध्य विषयक है न कि सिद्धविषयक।

प्रसख्यानम्

श्री ब्रह्मदत्त प्रसख्यान को स्वीकारते है। दूसरे वेदान्ती जैसे 'दशमस्त्वमसि' इस वाक्य से साक्षात्कार होता है उसी प्रकार 'तत्वमसि' इत्यादि महावाक्य से ब्रह्मसाक्षात्कार होता है। ऐसा मानते है, किन्तु प्रसख्यानवादी ऐसा नही मानते है।

'प्रसख्यान' शब्द का अर्थ 'नैष्कम्यसिद्धि'[1] तथाा उसकी टीका चन्द्रिका मे वर्णित है– 'नैष्कर्म सिद्धिचन्द्रिका टीका' मे– प्रसख्यानस्य चित्तैकाग्रय्रूपस्य।'

श्री ब्रह्मदत्त मानते है कि 'तत्वमसि' इत्यादि वाक्य के सुनने से आत्मस्वरूप विषयक अखण्डाकार वृत्ति उत्पन्न नही होती है। इसलिये कि शब्दो मे वैसी शक्ति है जिससे वैसी अखण्डाकार वृत्ति का उदय होता है।

आचार्य भर्तृप्रपञ्च और मण्डन मिश्र भी प्रसख्यानवादी थे। आचार्य भर्तृप्रपञ्च का साक्षात प्रसख्यान पक्षीय वचन उपलब्ध नही होता है। केवल वृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य वार्तिक मे तथा नैघ्कर्म्य सिद्धि मे उनका प्रसख्यान खण्डन प्राप्त होता है। श्री मण्डनमिश्र ने तो ब्रह्मसिद्धि मे बहुत बार प्रसख्यान पक्ष को उपस्थित किया है। जैसे– ब्रह्मसिद्धि मे– 'साक्षात्प्रमिते ब्रह्मणि साक्षात्कारायप्रवृत्तेरिष्टत्वात्। (ब्र० सि० सि० का० ११ का० पृ० १५६)

ध्याननियोगवादी

श्री ब्रह्मदत्त ध्याननियोगवादी थे न कि नियोगवादी। नियोगवादी वह कहलाता है जो तत् त्व पदार्थ के शोधन द्वारा ब्रह्म और आत्मा को एक मानता है जैसे भगवान शङ्कराचार्य और उनके अनुयायी। ध्यान नियोगवादी श्री ब्रह्मदत्त जीवनमुक्ति को नही मानते है। देहपात के अनतर ही ब्रह्मप्राप्ति या मोक्ष सभव है। श्री मरलीधर पाण्डेय ने

[1] नैष्कर्म्य सिद्धि – ३/६०

उद्धृत किया है– 'एतच्चबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवर्तिकेनैष्कर्म्यसिद्धेश्चन्द्रिकाटीकाया च स्पष्टीकृतम्'[1]

'भावनोपचयाद देवो भूत्वा विद्वानिहैव तु।
देवानप्येति सोऽग्न्यादीञ् शरीरत्याग्रत परम्।।'

(वृ० अ० उ० भा० वा० ४/१/२७ पृ० १३५७)

श्री ब्रह्मदत्ताचार्य के सिद्धान्त सक्षेप मे ये है–

१ ब्रह्म से जीव उत्पन्न होते है और ब्रह्म मे लीन हो जाते है।

२ उपनिघद् वाक्यो मे 'आत्मा वाऽरे' इत्यादि वाक्यो की प्रधानता है न कि 'तत्वमसि' इत्यादि वाक्यो की।

३ भावना की प्रधानता, नियोग की नही।

४ ब्रह्मदत्त का जीव विज्ञानवादियो की भाति प्रतीत होता है।

५ श्री ब्रह्मदत्त नैरयायिको के समान असत्कार्यवादी प्रतीत होते है।

६ ये ध्यान नियोगवादी है। ये प्रपञ्च विलयवाद को मानते थे इसका खण्डन शङ्कराचार्य ने किया है।

७ ये जीवनमुक्ति को नही मानते है।

८ ये श्री भर्तृप्रपञ्च तथ मण्डन मिश्र के अभिप्रेत ज्ञान, कर्म समुच्चय से भिन्न प्रकार के ज्ञान–कर्म समुच्चय को मानते है।

९ ये प्रसख्यानवादी है।

१० श्री ब्रह्मदत्त का जीव चार्वाक आदि के समान नश्वर है।

११ श्री ब्रह्मदत्त का जीव पौराणिको की भाति प्रलयकाल मे शरीर के साथ ब्रह्म मे प्रलीन हो जाता है।

---

[1] श्री मुरलीधर पाण्डेय श्रीशकरात्प्रागद्वैतवाद पृ० २८८

१२ मण्डन मिश्र और सुरेश्वर ने भी इनके मत का निराकरण किया है।

आचार्य भर्तृप्रपञ्च– आचार्य भर्तृप्रपञ्च एक प्रख्यात वेदान्ती थे। उनका मत भेदा–भेदवाद है। इनका कोई भी व्याख्या ग्रन्थ, ब्रह्मसूत्रो पर लिखा हुआ उपलब्ध नही होता है। सक्षेपशारीरिक के टीकाकार मधुसूदन सरस्वती ने भर्तृप्रपञ्च को ब्रह्मसूत्र का भाष्यकार मानते है 'कैश्चित् तत् सूत्र व्याचक्षाणै भर्तृप्रपचादिभि ।'[1]

यामुनाचार्य ने अपने 'सिद्धित्रय' मे भर्तृप्रपञ्च को वेदान्त दर्शन का लेखक स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त कठोपनिपद तथा बृहदारण्यक उपनिषद् पर भी भाष्य लिखे थे।

दार्शनिक सिद्धान्त– इनके सिद्धान्त को भेदा भेदवाद, द्वैताद्वैतवाद अथवा अनेकान्तवाद कहा जाता है। परमार्थ ब्रह्म मे एक है जगतरुप मे अनेक है। जीव नाना तथा परमात्मा एकदेश मात्र है। ब्रह्म मे अनेक जीवो की सत्ता होने के कारण ही वह अनेक रुप है और मूलत ब्रह्म रुप मे वह एक है। जीव द्रप्टा, कर्ता, भोक्ता, है। वे कर्मज्ञान समुच्चयवादी थे।

भर्तृप्रपञ्च के अनुयायी चार सम्प्रदायो मे बटे थे, इससे शङ्कर पूर्व ही वेदान्त का प्रचार हुआ। भर्तृप्रपञ्च सतब्रह्म की आठ अवस्थाओ को मानते थे। जो निम्न है– (१) अर्न्तयामी, (२) साक्षी (३) अव्याकृत (४) सूत्रात्मा (५) विराट (६) देवता (७) जाति (८) पिण्ड। इनके कुछ अनुयायी (भर्तृप्रपत्र्च के) ब्रह्म की तीन अवस्था को मानते है। अक्षर, अर्न्तयामी, क्षेत्रज्ञ। और कुछ पाच, कुछ आठ अवस्था को मानते है। कुछ लोग इन अवस्थाओ को अक्षर की शक्ति मानते है तो कुछ लोग इन्हे विकार मानते है।

परिणामवाद

---

[1] मधुसूदन सरस्वती की टीका ' सक्षेप शारीरक' १/७ पर।

यह जगत को ब्रह्म का परिणाम मात्र माना है। आचार्य शङ्कर ने भी परिणामवाद को माना था किन्तु आधुनिक परिभाषा परिणाम और विवर्त की उस समय स्पप्ट नही थी। ब्रह्म का परिणाम तीन प्रकार से होता है–

(१) अर्न्तयामी तथा जीवरूप मे (२) अव्याकृत, सूत्र विराट तथा देवता रूप मे।

(३) जाति तथा पिण्ड रूप मे।

भर्तृप्रपञ्च के मत से जगत् सर्गकाल की यही संक्षिप्त व्याख्या है।

मोक्ष–आचार्य भर्तृप्रपञ्च जीवात्मा को ब्रह्म का परिणाम स्वीकार करते है। जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति की तरह ही मुक्ति के दो रुप मिलते है (१) अपरमोक्ष (२) परमोक्ष। शरीर रहते जब ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है तब इसे अपरमोक्ष, जीवनमुक्ति या 'अपवर्ग' कहते है।

जब देहपात हो जाता है तब 'परामुक्ति' की प्राप्ति होती है यही विदेह मुक्ति या परम मोक्ष है। इस प्रकार भर्तृप्रपञ्च ब्रह्म साक्षात्कार हो जाने पर भी देह के रहते अविद्या की पूर्ण निवृत्ति नही मानते है। देह की प्रवृत्तियो का कारण अविद्या है।

प्रमाण समुच्चयवाद– ये लौकिक और वैदिक दोनो प्रमाणों को मानते थे। इसलिए ये 'प्रमाण समुच्चयवादी' कहलाते है। इस प्रकार इनके सिद्धान्त को चार भागो मे डा० वीर मणि उपाध्याय ने बाटा है– (१) राशित्रय वाद (२) परिणामवाद (३) अनेकान्तवाद (४) मोक्षनिरुपण।

राशित्रयवाद मे परमात्मा को उत्तम राशि, जीव को मध्यम राशि और जगत को अधम राशि कहा है। डा० सगम लाल पाण्डेय ने इनके सिद्धान्त को साख्य और अद्वैत दर्शन के बीच की एक कडी माना है। डा० मैसूर हिरियन्ता ने इन्हे परिणामवादी माना है।

आचार्य शकर ने वृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य मे ५/१/१ मे "अत्रैके वर्णयन्ति" से आचार्य भर्तृप्रपञ्च के भेदाभेदवाद का खण्डन करते है तथा आचार्य शकर 'नेति नेति' से ही ब्रह्म का वर्णन स्वीकार करते है।

आचार्य सुन्दरपाण्ड्य– सुन्दरपाण्ड्य श्री शङ्कर प्राग अद्वैत वेदान्ती रहे है। ये दक्षिण भारत के मीमासा एव वेदान्त दर्शन के विद्वान थे। इनका स्थितिकाल कुछ लोग ६५० ई० मानते है।[1] ये पाण्ड्यराज कुब्जवर्धन अथवा कुल पाण्ड्य इन दो नामो से भी प्रसिद्ध थे। इनकी उपाधि 'अरिकेशरि' थी। प्रसिद्ध शैवाचार्य तिरुज्ञान सम्बन्ध के प्रभाव से आचार्य सुन्दर पाण्ड्य ने जैन धर्म को त्यागकर शैवधर्म को स्वीकार कर लिया। इन्होने अपनी उपासना की महिमा से तिरसठ शैवाचार्यो मे प्रमुख स्थान प्राप्त किया।

कुछ विद्वानो के मत मे तो सुन्दर पाण्ड्य राजा नेडूमारण अथवा महाराज नायनर का नाम दूसरा नाम सुन्दर पाण्ड्य था।[2]

इनका वेदान्त विषयक ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नही है। ये दक्षिण भारत के मीमासा वेदान्त दर्शन के विद्वान थे। इन्होने ब्रह्मसूत्र के किसी प्राचीन भाष्य से सम्बन्धित कारिकाबद्ध वार्तिक ग्रन्थ की रचना की थी। इस सम्बन्ध मे कोई निश्चित मत तो नही मिलता, किन्तु विद्वानो का मन्तब्य है कि शङ्कराचार्य ने 'समन्वयाधिकरण' के भाष्य के अन्त मे (ब्र० सू०, शा० भा० १/१/१४) जो निम्नलिखित तीन श्लोक उद्धत किये है वे सुन्दर पाण्ड्य के वार्तिक ग्रन्थ से उद्धत है

अपि चाहु गौणमिथ्यात्मनोसत्वे पुत्रदेहादि वाधनात्।

सद् ब्रह्मात्माह मित्वेव बोधे कार्य कथ भवेत्।।

अन्वेष्टव्यात्म विज्ञानात् प्राक् प्रमातृत्व मात्मन।

---

[1] म० भ० श्री गोपीनाथ कविराज महोदय का 'शकर से पूर्व के आचार्य' शीर्षक लेख 'कल्याण' पत्रिका १६६३ वै० स० वेदान्ताक पृ० ६३८ मे प्रकाशित।

[2] महामहोपाध्याय कुप्पू स्वामी शास्त्री द्वारा लिखित लेख–Some Problems of Identıfy ın the cultural Hıstory of Ancıent Indıa (Journal of orıental Research, Madras, Vol I

अन्विष्ट स्यात् प्रमातैव पापदोषादि वर्जित ।।

देहात्मप्रत्ययो यद वत् प्रमाणत्वेन कल्पित ।

लौकिक तद्वदेवेद प्रमाण त्वात्मनिश्चयात् ।। (ब्र० सू० शा० भा० १/१/४)

भामतीकार वाचस्पति मिश्र ने उपर्युक्त श्लोको का 'ब्रह्मविदा गाथा' कहकर वर्णन किया है परन्तु नरसिह स्वरुप के शिष्य आत्मस्वरूप द्वारा रचित पदमपाद की पञ्चपादिका की टीका प्रबोध परिशोधनी की अनुसार उपर्युक्त श्लोक सुन्दर पाण्ड्य कृत ही बतलाये जाते है। अमलानन्द के कल्पतरु (३/३/२५) मे सुन्दर पाण्ड्य के वचन 'नि श्रेण्यारोहणप्राप्यम्' उद्धत है।[1]

गैड़पाद– अद्वैत वेदान्त के प्रतिष्ठापक आदि आचार्य शड्कर के प्राचार्य[2] श्री गौडपाद है। इनकी प्रसिद्ध कृति "माण्डूक्यकारिका" है। गौडपाद के अद्वैत सिद्धान्त से मिलता–जुलता आचार्य का अद्वैत वेदान्त है। शड्कर का मायावाद गौडपाद से प्रभावित है। क्योकि उपनिपदो मे स्पप्ट रूप से माया का उल्लेख न होकर मायावाद के पूर्वाभास की झलक मिलती है। विश्व प्रपञ्च की शून्यता का स्पष्ट प्रतिपादन बौद्ध सम्प्रदायो मे मुख्यतया विज्ञानवाद और भारतीय दर्शन मे पाया जाता है। गौडपाद की जगत को 'अविद्यात्मक या मायिक' बतलाये है। आचार्य शड्कर ने गौडपाद निर्मित माण्डूक्य कारिका पर अपने भाष्य मे परमगुरु को नमस्कार, किया है–

'यस्त पूज्याभिपूज्य परम गुरुममु पादपातैर्नतोऽस्मि। (मा० का० शा० भा० अन्ते ब्र० सू० शा० भा०) मे आचार्य शड्कर ने परमगुरु गौडपाद का नामोल्लेख बडे आदर के साथ किया है– और दो स्थलो पर उल्लेख किया है।[3] श्री शड्कर सम्प्रदाय मे गुरुवन्दन परम्परा मे इस प्रकार गुरुनामावली का उल्लेख प्राप्त होता है।

---

[1] ब्र० सू० ३/३/२५ शाड्कर भा० कल्पतरु पृ० ७६५

[2] प्राचार्य से तात्पर्य आचार्य के आचार्य अर्थात् गोविन्द भगवतपाद के गुरु।

[3] क सम्प्रदाय विदो वदन्ति (१/४/१४)
ख वेदान्तार्थ सम्प्रदायविद्भिराचार्यै। (२/१/६)

नारायण पदमभव वसिष्ठ शक्ति च तत्पुत्रपराशर च,

व्यास शुक गौडपाद महान्त गोविन्द योगीन्द्रमथास्य शिष्यम्

श्री शङ्कराचार्यमथास्य पद्मपाद च हस्तामलक च शिष्यम्।

तत्तोटक वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरु सन्ततमानतोऽस्मि।।

इस प्रकार गुरु परम्परा मे व्यास तथा शुक के अनन्तर आचार्य श्री गौडपाद का नाम आता है।

योग वासिष्ठ मे श्री शुक का उल्लेख इस प्रकार किया गया है।[1] भगवान शङ्कर ने अपने श्वेताश्वतरोपनिषद के भाष्य मे आचार्य गौडपाद को श्री शुकाचार्य का शिष्य कहा है।[2]

श्री मुरलीधर पाण्डेय ने अपने ग्रन्थ श्री शङ्करप्राग्द्वैतवाद मे श्री गौणपाद की गुरुपरम्परा को इस प्रकार उल्लिखित किया– "एतद्विषये म० म० श्री गोपीनाथ शर्मक विराज महोदयेन ब्रह्मसूत्र भूमिकाया लिखित यद्जम्मूस्थ श्री रघुनाथ मन्दिर ग्रन्थालय स्थिते श्री विद्यार्णवे ग्रन्थे (कश्मीरत प्रकाशित) श्री गौणपादस्य गुरु परम्परेत्थ निवद्धास्ति (१) कपिल (२) अत्रि (३) वसिप्ठ (४) सनक (५) सनन्दन, (६) भृगु (७) सनत्सुजात (८) वामदेव (६) नारद (१०) गौतम (११) शनक (१२) शक्ति (१३) मार्कण्डेय (१४) कौशक (१५) पराशर (१६) शुक (१७) अगिरा (१८) कण्व (१६) जावात्रि (२०) भारद्वाज (२१) वेदव्यास (२२) ईशान (२३) रमण (२४) कपर्दी (२५) भूधर (२६) सुभत (२७) जलज (२८) भूर्तश (२६) परम (३०) विजय (३१) विजय (३२) मरण (भरत) (३३) पदमेश (३४) सुभग (३५) विशुद्ध (३६) समर (३७) कैवल्य (३८) गुणेश्वर (३६) सपाय (४०) योग (४१) विज्ञान (४२) अनङ्ग (४३) विभ्रम (४४) दामोदर (४५) चिदाभास (४६)

---

[1] जगाम शिखर मेरो समाध्यर्थमनिन्दितम्।
तत्र वर्षसहस्राणि निर्विकल्पसमाधिना।।
दश स्थित्वा शशामासावात्मन्यस्नेहदीपवत्। (यो० वा० ११ १, ४३ ४४)

[2] शुकशिष्यो गौडपादाचार्य (श्वेता उ०)

चिन्मय (४७) कलाधर (४८) विश्वेश्वर (४६) मन्दार (५०) त्रिदश (५१) सामर (५२) मृड (५३) हर्प (५४) सिह (५५) गौण (५६) वीर (५७) अघोर (५८) ध्रुव (५६) दिवाकर (६०) चक्रधर (६१) प्रणयेश (६२) चर्तुभुज (६३) आनन्दभैरव (६४) धीर (६५) गौणपाद एवमात्रान्ये च आचार्य कपिलादारभ्य श्री शड्करपर्यन्तम् एकसप्तति सख्या गुरुणा परिगणिता । श्री गौणपादाद् श्री शड्कराचार्य मध्ये सप्तगुरव सन्ति।[1] श्री विद्यार्णव के प्रथम श्वास मे कहा गया है–

तच्छिष्याण क्रम ज्ञात्वा स्वगुरुक्त विधानत ।

स्मरणात् सिद्धिमाप्नोति साधकस्तु न सशय ।।

श्री गौणपाद के काल निर्धारण विषय मे महान विवाद है। ईसा पूर्व आठवी सदी मे ईशोत्तर सातवी सदी पर्यन्त के बीच का समय माना जाता है। श्री प्रज्ञानन्द सरस्वती महोदय अपने ग्रन्थ वेदान्त दर्शन मे ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का समय निर्धारित किया है। श्री विधुशेखर भट्टाचार्य इनका समय सातवी शती के पश्चात का माना है। जिस प्रकार काल निर्धारण के विषय मे विवाद है उसी प्रकार गौणपाद की कृतियो को लेकर भी मतैक्य नही है।

१ माण्डूक्योपनिषत्कारिका (आगम शास्त्रम्) २. साख्यकारिका भाष्यम्।

३ नृसिहोत्तर तापन्युपनिपद् व्याख्या ४ श्री दुर्गासप्तशती टीका

५ सुभगोदय ६ श्री विद्यारत्न सूत्रम

इन ग्रन्थो मे माण्डूक्य उपनिषद् कारिका ग्रन्थ श्री गौणपाद की प्रसिद्ध कृति है। यह ग्रन्थ अद्वैत सिद्धान्त की आधार शिला है। जिस प्रकार श्री मद्भगवद गीता के विषय मे यह प्रसिद्ध है कि "गीता सुगीता कर्तव्याकिमन्यच्छास्त्रविस्तरै" उसी प्रकार अद्वैतबोध के लिए यह दृढतापूर्वक कहा जा सकता है इस ग्रन्थ का सुगम अनुशीलन

[1] श्री मुरलीधर विरचित– श्री शड्करात् प्रागद्वैतवाद, पृ० ३०५

ही पर्याप्त हो सकता है। क्योकि इसके विपय मे महत्वपूर्ण कथन है कि यह अकेले ही मुमुक्षुओ को परमपद की प्राप्ति करा सकता है। इस ग्रन्थ मे चार प्रकरण है। उनमे क्रमश २९, ३८, ४८, १०० इस प्रकार कुल मिलाकर २१५ कारिकाए है। प्रथम प्रकरण आगम प्रकरण है। इस प्रकरण मे सम्पूर्ण माण्डूक्योपनिषद् की व्याख्या हुई है और साथ ही जगदुत्पत्ति के अनेक प्रयोजनो का वर्णन और उनका खण्डन किया गया है। कुछ लोग सृष्टि का हेतु भगवान को मानते है, कुछ लोग काल से भूतो की उत्पत्ति मानते है, कोई भोग के लिए सृष्टि स्वीकार करते है, कोई क्रीडा के लिए जगत की उत्पत्ति मानते है। भगवान कारिकाकार इन सभी पक्षो को अस्वीकार करते है– देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा' (१/९)। अर्थात् पूर्णकाम भगवान को सृष्टि का कोई प्रयोजन नही है। यह तो उनका स्वभाव ही है। अत यह जो कुछ प्रपञ्च है वह वास्तव मे है नही, केवल बिना हुआ ही भास रहा है।

सिद्धान्त– प्रणव की उपासना– 'प्रणव' से तात्पर्य 'ओम' शब्द से है। मा० का० मे– 'प्रणवो ब्रह्म निर्भयम्' (मा० का० १–२५) 'प्रणव' ही अपर ब्रह्म है। ओकार ही अपरब्रह्म माना गया है। वह ओकार अपूर्व, अर्न्तवाहय शून्य, अकार्य तथा अव्यय है।

'प्रणवो हह्ययपर ब्रह्म प्रणवश्च पर स्मृत ।

अपूर्वोऽनन्तरऽवाह्ययोऽनपर· प्रणवोऽव्यय ।। (मा० का० ०१–२६)

प्रवण ही सबके हृदय मे स्थित ईश्वर है। इस प्रकार सर्वव्यापी ओकार को जानकर बुद्धिमान पुरुष शोक नही करत– 'सर्वव्यापिनमोकार मत्वा धीरो न शोचति।'

जिसको ओकार के अर्थ का भली–भाति ज्ञान हो जाता है वही मुनि है और कोई पुरुष नही है– 'अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशम शिव। ओकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जन ।। (मा० का० १–२९)

'ओम्' यह अक्षर ही सब कुछ है जो कुछ भूत–वर्तमान और भविप्यत सब कुछ है उसी की व्याख्या है। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी त्रिकालातीत वस्तु है वह भी ओकार ही है। 'ओमित्येतदक्षरमिद सर्वमिति . ।'[1]

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने लिखा है– "प्रणव का अर्थ ओम्" है ओम् मे चार मात्राए है। अ, उ, म और अर्द्धमात्र इन मात्राओ से क्रमश जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय अवस्था का बोध होता है और उनमे जो सत्ता विद्यमान रहती है उसका ही वाचक ओम् है। ओम् का ध्यान ब्रह्म का ध्यान है। परवर्ती आचार्यो ने सोऽहम् से ओम् की निष्पत्ति की है और ओम् का अर्थ बताया है, "मैं ब्रह्म हूँ।[2]

आत्मवाद

आत्मवाद के सिद्धान्त मे गौणपाद स्पष्ट करते है कि आत्मा, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तुरीय अवस्थाओ से परे है। माण्डूक्योपनिषद मे ओकार की तीन मात्रा अ उ म के द्वारा स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के अभिमानी विश्व, तैजस् और प्राज्ञ का वर्णन करते हुए उनका समष्टि अभिमानी वैश्वानर, हिरण्यगर्भ, एव ईश्वर के साथ अभेद किया गया है। इनकी अभिव्यक्ति की अवस्थाए क्रमश जाग्रत स्वप्न, और सुषुप्ति है तथा इसके भोग स्थूल, सूक्ष्म और आनन्द है। जाग्रत अवस्था मे जीव दक्षिण नेत्र मे स्थित रहता स्वप्न की स्थिति मे कण्ठ मे और सुषुप्ति की अवस्था मे हृदय मे रहता है इसी का नाम 'प्रपञ्च' है।

अजातवाद– सत्कार्यवाद और असत्कार्यवाद दोनो का खण्डन करते हुए गौणपाद ने अजातवाद को स्थापित किया है।

भूत न जायते किचिद अभूत नैव जायते।

---

[1] माण्ड्क्योपनिषद– गीताप्रेस गोरखपुर पृ० ७

[2] सस्कृत वाडगमय का वृहद इतिहास (दशमखण्ड वेदान्त) पृ० ८ प्रधानसम्पादक– पदमभूषण आचार्य वल्देव उपाध्याय सम्पादक– प्रो० सगम लाल पाण्डेय

ववदन्तोऽद्वया ह्ययेवमजाति ख्यापयन्ति ते।। (मा० का० ४/४)

माण्डूक्य करिका मे कहा गया है कि ये वादी लोग अजात वस्तु का ही जन्म होना स्वीकार करते है किन्तु जो पदार्थ निश्चय ही अजात और अमृत है वह मरणशीलता को कैसे प्राप्त हो सकता है।

अजातस्यैव धर्मस्य जातिमिच्छन्ति वादिन ।

अजातो ह्यमृतो धर्मो मर्त्यता कथमेस्यति।। (मा० का० ४/६)

आचार्य गौणपाद ने लिखा है कि – कोई वस्तु न तो स्वत उत्पन्न होती है और न परत और न उभयत ।

"स्वतो वा परतो वापि न किचिद् वस्तु जायते।

सदसत्सदसद्वापि न किचिद्वस्तु जायते।।" (मा० का० ४/२२)

इस कारिका पर नागार्जुन की पुनरावृत्ति स्पप्ट रूप से परिलक्षित होती है।[१] इस प्रकार कार्यकारण अनुपपन्न है। कार्य–कारण से अनन्य है, अन्य नही। वास्तव में अजाति ही सत्य है। इस प्रकार तर्कत अद्वैत को स्थापित करते है। आचार्य गौणपाद की महानता यह भी है कि वह स्वय वैदिक परम्परा के आचार्य होते हुए भी 'अजातिवाद' को स्वीकार करते है। यथा– ख्याप्यमानामजाति तैरनुमोदामहे वयम्। विवदामो न तै साधर्मविवाद निबोधत।। (मा० का० ४/५)

गौणपाद का मत है कि– उनका (बौद्धो का) जो अजाति वाद विषयक कथन है उसका हम अनुमोदन करते है। हम उसके साथ विवाद नही करते है। आगे चलकर इस अजातिवाद को शड्कराचार्य ने भी परमार्थ सत्य के रूप मे स्वीकार किया है।

मायावाद

जिस प्रकार स्वप्न मे हमे द्वयाभास होता है वैसे जाग्रत अवस्था मे भी होता है।

---

[१] न स्वतो जायते भाव परतोनैव जायते। न स्वत परतश्चैव जायते जायते कुत ।। (म० का० २१–१३

यह द्वयाभास वास्तविक नही है केवल मायिक है।

यथा स्वप्ने द्वयाभास स्पन्दते भायया मन ।

तथा जाग्रद् द्वयाभास स्पन्दने मायया मन ।। (मा० का० ३/२९)

वेद और उपनिषदो मे भी माया का स्पष्ट निरुपण किया गया है ' नेहनानास्ति किञ्चन', इन्द्रो मायाभि, पररुप ईयते' इत्यादि उदाहरणो से मायावाद स्पष्ट होता है। इस नामरुपात्मक जगत की प्रतीति माया के कारण ही भासित होती है। और वह परमात्मा माया से ही उत्पन्न होता है।[1] शा भाप्य गौणपाद कारिका मे– सतो हि विद्यमानात् कारणात् मायानिमितस्य हस्तत्यादि कार्यस्यैव जगज्जन्मयुज्यते।[2]

माया ही ससार का र्हतु है इसकी मोहन शक्ति अतीव बलवती है जिससे कि वह परमात्मा भी स्वय मोहित हो रहा है।

"मायैषा तस्य देवस्य यया समोहित स्वयम्।'[3] (मा० का० २/१९)

इस प्रकार भगवान गौणपादाचार्य मानते है कि प्रतीति माया के कारण ही है– "मायामात्रमिद द्वैतमद्वैत परमार्थत" (मा० का० १–१७) यह माया न तो सत है न तो असत है, और न सदसत् है। न भिन्न है न अभिन्न है और न भिन्नाभिन्न है। यह न सावयव हे और न निरवयव है और न तो उभयरूप है। वस्तुत स्वरूप विस्मृति ही माया है। अत स्वरुपज्ञान से ही उसकी निवृत्ति होती है। जिस प्रकार मन्द अन्धकार मे रज्जूतत्व का निश्चय न होने पर उसमे सर्प का भान होता है उसी प्रकार मायोपाहित जीव को भी भेटप्रपञ्च की भ्रान्ति होती है। माया के हटते ही एकमात्र अखण्ड अद्वैत वस्तु ही अवशि ट रह जाती है।[4] जैसे– स्वप्न–माया और गन्धर्व नगर होते है वैसा ही

---

[1] माण्डूक्योपनिषद– गीताप्रेस गोरखपुर पृ० १४५

[2] शाड्कर भाष्य गौणपाद कारिका मे ३/२७

[3] शाड्कर भाष्य गौणपाद कारिका मे ३/२७

[4] माण्डूक्योपनिषद् – गीताप्रेस गोरखपुर पृ० ४८
अनादिमायया सुप्तो यदा जीव प्रबुध्यते। अजम निद्रम स्वप्नमद्वैत बुध्यते तदा ।। (मा० का० १/१६)

विद्वतजन इन प्रपञ्च को देखते है। तो फिर परमार्थ क्या है? इसका उत्तर आचार्य ने इस कारिका से दिया है।

न निरोधो न चोत्पात्तिर्न बद्धो न च साधक ।

न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता।। (मा० का० २/३२)

जीव

आचार्य जीवस्वरूप को घटाकाश महाकाश के दृप्टान्त से स्पप्ट करते है। जिस प्रकार महाकाश ही घटाकाश रुप मे प्रतीत होता है वैसे ही ब्रह्म भी जीव रुप मे प्रतीत होता है।

आत्मा ह्यकाशवज्जीवैघटाकाशैरिवोदित ।

घटादिवच्च सघातैर्जातावेतन्निदर्शनम्।। (मा० का० ३/३)

घटाादि के लीन होने पर जिस प्रकार घटाकाशादि महाकाश मे लीन हो जाते है उसी प्रकार जीव इस आत्मा मे विलीन हो जाते है।

अद्वैतवाद का अविरोध

अद्वैतवाद सभी द्वैतवादो की प्रागपेक्षा है। द्वैतवाद के पोषक मतावलम्बियो का आपस मे विवाद है पर अद्वैतवाद से उनका कोई विरोध नही है।

वसिद्धान्त व्यवस्थासु द्वैतिनो निश्चता दृढम्। परस्परविरुध्यन्ते तैरय न विरुध्यते। अद्वैत परमार्थो हि द्वैत तद्भेद उच्यते। तैषामुभयथाद्वैत तेनाय न विरुध्यते।। (माण्डूक्यकारिका— ३/१७—१८)

वस्तुत एकमात्र अद्रव्य तत्व आत्मा की ही सत्ता है। आत्मा के विषय मे कहा गया है कि आत्मा एक अखण्ड, अजन्मा, और निर्लेप है। इसी से— 'एकमेवाद्वितीयम' 'इद सर्वयदयमात्मा' तथा 'द्वितीयादैभय भवति' उदर मन्तरं कुरुते अथ तस्य भय भवति' आदि श्रुतियो से अभेद दृप्टि की प्रशसा और भेद दृप्टि की निन्दा की गयी है। इस

प्रकार सारा द्वैत व्यवहारिक दृष्टि से हे। परमार्थत कोई द्वैत नही है। यह सारा द्वैत केवल मनोदृश्यमात्र है मन के अमनीभाव को प्राप्त होते ही द्वैत की तनिक भी उपलब्धि नही होती है। ' मायामात्रमिद द्वैतमद्वैत परमार्थत ।' (मा० का० १–१७) अद्वैततत्व के विषय मे आचार्य गौणपाद ने लिखा है–

न कश्चिज्जायते जीव सम्भावोऽस्य न विद्यते।

एतत्तदुत्तम सत्य यत्र किचिन्न जायते।। (मा० का० ३/४८)

मोक्षवाद

इस मत मे द्वैत ही प्रपञ्च है, प्रपञ्च ही ससार है और प्रपञ्च का अभाव ही मोक्ष है। यथोक्तम्–"प्रपञ्चोपशम शिव ।" (माा० का० १–२६) जैसे स्वप्न दिखाई पडता है, जैसे माया दिखाई पडती है, जैसे गन्धर्व नगर होता है, उसी प्रकार वेदान्त मे निष्णात् बुद्धिमानो को यह विश्व दिखाई पडता है।

स्वप्नमाये यथा दृष्टे गन्धर्व नगर यथा।

तथा विश्वमिद दृष्ट वेदान्तेषु विचक्षणै।। (मा० का० २–३१)

मोक्ष नित्य प्राप्त है यह आत्मज्ञान है इसकी प्रतीति अज्ञान के निवृत्त हो जाने पर सब को होती है। बन्धन और मुक्ति उत्पत्ति और निरोध, साधक और साध्य ये सब वाणी के विलासमात्र है। परमार्थ तत्त्व केवल अद्वैत है।

क्या गौडपाद प्रच्छन्न बौद्ध थे? कुछ आधुनिक विद्वानो ने गौडपाद पर प्रच्छन्न बौद्ध होने का आरोप लगाया है। उनका कथन है कि अद्वैतवाद गौणपाद का अपना सिद्धान्त नही है बल्कि अपने सिद्धान्त की आड (ओट) मे बौद्ध सिद्धान्त का ही प्रतिपादन किया है। प० विधुशेखर भट्टाचार्य जिन्होने गौणपाद के आगम शास्त्र की तुलना शून्यवाद के ग्रन्थो से की है किन्तु गौणपाद ने स्वय लिखा है कि वे जो कुछ कह रहे है– "नैतद् बुद्धेन भाषितम्" (माण्डू० कारिका ४/९९)

गैडपाद ने प्रच्छन्न बौद्ध न होने का प्रमाण देते हुए लिखा है कि शून्यवाद अद्वयवाद है, अद्वैतवाद नही। इस अन्तर को न समझने के कारण लोगो ने गौणवाद को "प्रच्छन्न बौद्ध" कहा है। वे शुद्ध अद्वैत वेदान्ती है जो शाड्कर सम्प्रदाय मे सम्प्रदायविद आचार्य के रुप मे माने जाते है। अत गौणपाद की माण्डूक्य कारिका अद्वैतवेदान्त का एक मानक ग्रन्थ थे।

गोविन्द पाद

अद्वैतवेदान्त की गुरु परम्परा अत्यन्त प्राचीन तथा महत्वपूर्ण है। उपनिषदो में आपातत दीख पडने वाले विरोधो को दूर करने तथा मूल सिद्धान्त की व्याख्या करने केलिये महर्षि बादरायण व्यास ने ब्रह्मसूत्रो की रचना की तथा उनके तत्त्व अपने पुत्र शुकदेव को सिखलाये। इन्ही शुकदेव से गौडपाद ने अद्वैत कारिकाओ की रचना की। गौडपाद के शिष्य हुये गोविन्दपाद और उनके शिष्य शड्कराचार्य थे। इस प्रकार अद्वैतशड्कर से आरभ न होकर के अत्यन्त प्राचीन परम्परा से उन्हे प्राप्त हुआ था जैसा कि शड्करदिग्विजयके निम्न श्लोक से स्पष्ट है कि–

व्यास पराशरसुत किल सत्यवत्या तस्याऽऽत्मज शुकमुनि प्रथितानुभाव ।
तच्छिष्यतामुपगत किल गौडपादो गोविन्दनाथमुनिरस्य च शिष्यभूत ।।

(शड्कर दिग्विजय ५।१०५)

गौडपादाचार्य के शिष्य एव शड्कराचार्य के गुरु गोविन्दपाद नर्मदातट पर निवास करते थे तथा एक महान योगी थे। इनके विषय मे प्रसिद्ध है कि इनका स्थूल शरीर एक सहस्र वर्ष तक इस ससार मे रहते हुये भी दिव्य था। स्वामी विद्यारण्य का मन्तव्य है कि गोविन्दपाद भाष्यकार पतजलि के रूपान्तर हैं।[1] राजवाणे कथा के अनुसार जिनसेन, गुणभद्र तथा शड्कराचार्य के गुरु गोविन्दपाद समसामयिक थे। इस कथा के अनुसार जिनसेन गोविन्दपाद के परम गुरु थे क्योकि इस ग्रन्थ मे उल्लेख मिलता है कि गुणभद्र जिनसेन के शिष्य थे। और गोविन्दपाद गुणभद्र के शिष्य थे। यह मत असदिग्ध है कि जिनसेन ने ७०५ शकाब्द अर्थात् ७८३ सन्मे हरिवंश की रचना की थी। इस ग्रन्थ से यह पता चलता है कि जिनसेन, गुणभद्र, एव गोविन्द ये तीनो आचार्य धाराधिप भेज के सभा पण्डित थे। किन्तु उक्त कथन कितना प्रासगिक है इसपर विवाद है।

गोविन्दपाद रचित कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नही होता है। 'रस हृदय' नामक एक ग्रन्थ गोविन्दभागवत् पाद द्वारा रचित माना जाता है। जिसका विषय रसायनशास्त्र से सम्बन्धित माना जाता है। माधवाचार्य ने अपने ग्रन्थ 'सर्वदर्शन सग्रह' मे रसेश्वर दर्शन प्रकरण मे उक्त ग्रन्थ को प्रामाण्य के रूप मे माना है। इस प्रकार गोविन्दभागवत्पाद का ऐतिहासिक विवरण प्राप्त करना अन्यन्त कठिन है परन्तु इतना तो निश्चित है कि गोविन्दपाद शड्कराचार्य के गुरु थे।

इस अध्ययाय मे किये गये विवेचन से इतना स्पष्ट है कि ऋग्वेद सहिता से लेकर शकराचार्य के पूर्ववर्ती आचार्ये के समय मे भी अद्वैतवाद के स्पष्ट एव अस्पष्ट रूप से बीज वर्तमान थे किन्तु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अद्वैतवाद का जितना स्पष्ट एव सैद्धान्तिक रूप से विकास और उन्नति शकराचार्य के दर्शन मे

[1] शकर दिग्विजय–५।६४

हुई उतना किसी अन्य दर्शन मे नही। <u>अद्वैतवाद की एक मजबूत आधारशिला शड्कराचार्य के द्वारा ही डाली गयी थी</u>। शड्करदिग्विजय मे वर्णित कथा के अनुसार गोविन्द भागवत्पाद के विषय मे जानकारी मिलती है। यथा–

तमखिलगुण पूर्णं व्यासपुत्रस्य शिष्यात् अधिगतपरमार्थ गौणपादान्महर्षे।

अधिजिगमिषुरेष ब्रह्मसस्थामह त्वा प्रसृमरमहिमान प्रापमेकान्तभक्त्या।।

(शड्कर दिग्विजय ५।६७)

अर्थात् शड्कराचार्य गोविन्दपाद से विनम्र भाव से बोले कि हे भगवन् मैं आपके पास वेदान्त पढने के लिए अत्यन्त भक्ति भाव से आया हूँ। समाधिस्थ गोविन्दाचार्य के पूँछने पर कि तुम कौन हो तब श्री शड्कर प्राचीन पुण्य के कारण आत्मज्ञान के सूचक वचनो के द्वारा गोविन्दपाद से बोले– हे स्वामिन्! मै पृथ्वी नही हूँ , न तेज हूँ, न आकाश हूँ, न वायु हूँ और न उनके गुण हूँ और न मैं इन्द्रियॉ हूँ, प्रत्युत् इनसे अवशिष्ट केवल जो परम तत्त्व शिव है वही मै हूँ[1]।

भक्ति पूर्वक की गयी पूजा से संतुष्ट होकर यति–श्रेष्ठ गोविन्द ने उपनिषद के चार वाक्यो के द्वारा ब्रह्मतत्त्व का उपदेश शकर को दिया। ये चारो महावाक्यो को द्वारा ब्रह्मतत्व का उपदेश शकर को दिया। ये चारो महावक्य वेदो से सम्बद्ध उपनिषदो से सग्रहीत किये गये है और सख्या मे चार है जो निम्न हैं–

१ '<u>तत् त्वमसि</u>' (छान्दो० उप०६।८।७) सामवेद काय यह आत्मा तथा ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करने वाला है।

२ '<u>प्रज्ञान ब्रह्म</u>' (एतरेय उपनिषद्५) ऋग्वेद का यह महावाक्य ब्रह्म को ज्ञान स्वरूप बतलाता है।

---

[1] स्वामिन्नह न पृथ्वी न जल न तेजो न स्पर्शनो न गगन न च तद्गुणा वा। नाऽपिइन्द्रियाणपि तु विद्धि ततोऽवसिष्टो य केवलोऽस्तिपरम स शिवोऽहमस्मि।। (शड्कर दिग्विजय ५/६६

३ '<u>अह ब्रह्मास्मि</u>' (बृहदा० उप० १।४।१०) यजुर्वेद का यह महावाक्य गुरु उपदेश से तत् (ब्रह्म) तथा त्व (जीव) पदो के अर्थ का यथार्थ ज्ञान करने से मै ही नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य स्वभाव ब्रह्म हूँ यह अखण्डाकार चित्तवृत्ति उत्पन्न होती है यह अनुभव वाक्य कहलाता है।

४ '<u>अयमात्माब्रह्म</u>' (मा० उप० २) अथर्ववेद से सम्बद्ध परोक्ष रूप से बतलाये गये ब्रह्म के प्रत्यक्ष रूप से आत्मा होने का निर्देश करता है।

इस प्रकार बुद्धिमान शङ्कर ने सम्प्रदायवेत्ता पराशरपुत्र व्यास के द्वारा कहे गये सूत्र के द्वारा प्रतिपदित ब्रह्म को जानकर दयालु व्यास जी के वेदान्त शास्त्र के गूढ अभिप्राय को भी भली–भाति जान लिया। और शङ्कराचार्य गोविन्दपाद के निकट रहकर समस्त शास्त्रों का अध्ययन किये। इस प्रकार गोविन्दभगवत्पाद आचार्य शकर के पूज्य गुरु थे।

चतुर्थ–अध्याय

श्री शड्कराचार्य

शङ्कर पूर्व भारत

श्री शड्कराचार्य के आविर्भाव से पूर्व भारत मे विभिन्न मत–मतान्तरो का बोलबाला था, तथा जैन और बौद्ध धर्म मुख्य रूप से प्रचलित था। किन्तु जैन धर्म की अपेक्षा बौद्ध धर्म काफी शक्तिशाली था। उस समय बौद्ध धर्मद्वारा खुलकर वैदिक धर्म को चुनौती दी गयी।

यद्यपि यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि बुद्ध ने अपने धर्म की नीव उपनिषदो पर ही खडी की थी किन्तु अपने धर्म की विशिष्टता स्थापित करने के लिये वेदो की प्रामाणिकता पर सदेह किया और आत्मावाद का खण्डन किया। वेदविदित यज्ञो की आलोचना किया।

बौद्ध धर्म की सुदृढता मौर्य युग तथा कुषाण युग मे और अधिक हुई। उस युग मे बौद्धो के प्रभुत्व का आभास माधवाचार्य ने अपने ग्रन्थ 'शकर दिग्विजय' मे इस प्रकार दिया है– साशिष्य सघा प्रविशन्ति राज्ञा गेह तदादि स्ववशे विधतम्।

राजा मदीयोऽजिरमस्मदीय तदाद्रियध्व न तु वेदमार्गम्।।

(शड्कर दिग्विजय सर्ग ७/६१)

जैन धर्म भी वैदिक धर्म का कम विरोधी नही था। जैन मतावलम्बी अपने धर्म का प्रचार–प्रसार करते थे तथा वैदिक धर्म का खण्डन करते थे। जैन धर्म भी बौद्ध धर्म की भाति श्रुतियो और उपनिषदो पर आधारित था किन्तु श्रुतियो को ही अप्रमाणित सिद्ध करने मे अपनी सारी शक्ति लगा रखी थी। वैदिक धर्मावलम्बी भी अपने धर्म के पुर्नरुत्थान के लिये प्रयत्नशील हुये। इसी समय मौर्यो का पतन हुआ और ब्राह्मण वशी शासक पुष्यमित्र ने दो बार अश्वमेध यज्ञ किये। मनु द्वारा मनुस्मृति की रचना भी इसी समय की गयी। गुप्त वश के राजाओ ने वैदिक धर्म के अभ्युदय के लिये अतीव प्रयास किया।

'प्राचीन मित्येव न साधु सर्व नवीन मित्येव न निन्दनीयम्' के अनुसार प्राचीनता और अर्वाचीनता के प्रति उदासीनता मानवोन्नति की अवरोधक हुआ करती है। इसी मान्यता के आनुसार जैन और बौद्ध सहित लोकायतिक (चार्वाक) कणाद, पौराणिक, कारणिक, पाञ्चरात्रिक आदि दस मतो ने जन्म लिया। जिनका वर्णन बाणभट्टकी 'हर्ष चरित' मे मिलता है। उस समय सबसे महत्त्वपूर्ण कापालिक मत्र के तात्रिक थे। माधवाचार्य की रचना '<u>शङ्कर दिग्विजय</u>' मे उग्रभैरव कापालिक का वर्णन मिलता है। इस प्रकार सर्वत्र धार्मिक अराजकता उच्छृखलता और अनाचार व्याप्त था।

ऐसी विषम और भयावह स्थिति मे धार्मिक जगत में किसी ऐसे उत्कट त्यागी, निस्पृह, बीतराग, धुरन्धर विद्वान सर्वगुण सम्पन्न अवतारी पुरुष की महान आवश्यकता थी जो धर्म की विश्रृखलित कड़ियो को एकाकार करके उसे सुदृढ बनाता और धर्म का वास्तविक स्वरूप सबके सम्मुख प्रस्तुत करता।

भगवान श्रीकृष्ण द्वारा भगवद्गीता मे कथित वचन 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत्' अर्थात जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब–तब मै अवतार धारण करता हूँ को चरितार्थ करने हमारी पावन मातृभूमि भारत वर्ष मे विभिन्न काल मे तेजस्वी सन्त और महापुरुष अवतरित होते रहे है। एक बार पुन हम इसी वचन को हम दक्षिण भारत मे केरल राज्य के 'कालडी' नामक ग्राम मे आठवीं शताब्दी ईसवी मे पूर्ण होता हुआ पाते है जब श्री शङ्कर ने सनातनी नम्बूदरी ब्रह्मण दम्पति विशिष्टता और शिवगुरु के घर मे जन्म लिया।

शङ्कराचार्य ने भारतीय दर्शन के इतिहास को विशेषत अद्वैतवेदान्त के इतिहास को विशेषत दो युगो मे बाट दिया है। जिन्हे प्राकशङ्कर युग और शङ्करोत्तर युग कहा जाता है। इसमे प्रथम युग मे कर्म का महत्त्व था और द्वितीय युग मे ज्ञान का महत्त्व था। प्राक शकर युग मे बौद्ध दर्शन तथा वैदिक दर्शन के मध्य

मतभेद और सघर्ष था जो द्वितीय युग मे समाप्त हो गया। किन्तु इसमे भी दो अन्य सघर्ष प्रकट हो गये। एक अद्वैत वेदान्त और वैष्णव वेदान्त के मध्य तथा दूसरा न्याय दर्शन और अद्वैत वेदान्त का सघर्ष। इस प्रकार बहुत से विद्वानो का मत है कि शड्कराचार्य ने बौद्ध धर्म का अन्त कर दिया। किन्तु कुछ लोगो ने शड्कराचार्य को प्रच्छन्न बौद्ध कह कर आरोप लगाया जो कि सत्य नही है और इसका खण्डन बाद मे वेदान्ती आचार्यों द्वारा किया गया।

२ शङ्कर का दिव्य जन्म

शड्कर शड्कर साक्षच्छड्कर त सदानुम ।

येनप्रकाशितेद्वैते वेदान्ते रमते मन ।।

भारतवर्ष के केरल प्रान्त मे पूर्ण नदी के पास वृषाद्रि नामक पर्वत पर नम्बूदरी पाद ब्राह्मण की एक टोली निवास करती थी उसमे एक परम वेदवेत्ता ब्राह्मण के घर महान शिवभक्त 'शिवगुरु' नामक बालक का जन्म हुआ। शिवगुरु के पिता का नाम विद्याधर था जो आचार्य शड्कर के पितामह थे। पडित विद्याधर था जो आचार्य शड्कर के पितामह थे। पडित विद्याधर की विद्वता से प्रभावित होकर केरल के महाराजा (राजशेषर) ने स्वय निर्मित शिवमन्दिर का कार्यभार विद्याधर को प्रदान किया था। विद्याधर को भगवान शिव की अनुकम्पा से 'शिवगुरु' नामक पुत्र पैदा हुआ। शिवगुरु के प्रकाण्ड पाण्डित्य, सद्गुणो और आदर्श चरित्र की ख्याति सर्वत्र फैल गई। कुछ समय पश्चात् शिवगुरु का विवाह मद्य पडित की परम साध्वी, सुशील–कन्या 'विशिष्टा देवी' के साथ हुआ। विविध ग्रन्थो मे विशिष्टा के विविध नाम जैसे सती, कामाक्षी, आर्या आदि मिलते है। किन्तु विद्वानो का एक बडा वर्ग विशिष्टा नाम को ही मानता है। शिवगुरु और विशिष्टा देवी विरक्त स्वभाव होने के कारण बहुत दिन तक सन्तान हीन रहे है। दोनो ने प्रौढावास्था मे वृषपर्वत पर चन्द्रमौलीश्वर देवता की शरण ली और

कठोर तपस्या किये जिससे भगवान शिव प्रसन्न होकर सर्वज्ञ पुत्र प्राप्ति का वरदान दिया।[1] प्रौढावस्था मे शिवराधनास्वरूप साक्षात शड्करावतार शड्कर नामक बालक का प्रादुर्भाव हुआ।

ततो महेश किल केरलेषु श्रीमद्वृषाद्रौ करुणा समुद्र ।

पूर्णानदी पुण्यतटे स्वयभू लिड्गात्मनाऽनड्गधगोविरासीत्।।

आनन्दगिरि ने अपने गन्थ 'शड्कर विजय' ग्रन्थ मे बताया है कि अष्टम वर्ष मे विशिष्टता देवी का विवाह हुआ था। वे बचपन से ही शिवभक्त थी। पति के सन्यास धर्म ग्रीण कर गृहत्याग करने के अनन्तर विशिष्टा देवी चिदम्बरम् ग्राम के शिवविग्रह की सेवा–पूजा लग गयी थी। उनकी सेवा से सतष्ट होकर महादेव ने उन्हे दर्शन दिया और शिव के आशीर्वाद से शड्कर का दैवी जन्म हुआ था।

जयराम मिश्र ने लिखा है कि शुभग्रहो से युक्त, शुभराशि, पुनर्वसु नक्षत्र, सूर्य मगल और शनि उच्च स्थान एव गुरु केन्द्रस्थ, वैशाख शुक्ल पञ्चमी, रविवार को मध्याह्न विशिष्टा देवी ने तेजपुञ्ज बालक को उसी प्रकार जन्म दिया था। जिस प्रकार श्री पार्वती जी ने कुमार कार्तिकेय को जन्म दिया था। माधवाचार्य ने शड्कर दिग्विजय मे लिखा है[2]–

लग्ने शुभे शुभयुते सुषुवे कुमार श्रीपार्वतीव सुखिनी शुभवीक्षिते च।

जाया सती शिवगुरोर्निज तुगसस्थे सूर्ये कुले रविसुत च गुरौ च केन्द्रे।।[3]

आचार्य शड्कर का जन्म केरल प्रान्त मे 'कालडी' नामक ग्राम मे नम्बूदरी पाद ब्राह्मण कुल मे हुआ था। किन्तु कब हुआ था? उस प्रश्न का यथार्थ उत्तर देना नितान्त कठिन है।

---

[1] श्री शकर दिग्विजय (माधवाचार्य विरचित) अनुवादक प० बलदेव उपाध्याय, पृ० ४६ सर्ग २ श्लोक ५२
देवोऽप्यपृच्छदथ त द्विज वृद्धि सत्य, सर्वज्ञमेकमपि सर्वगुणोपपन्नम्।
पुत्र ददान्यथ बहून्विपरीतकास्ते भूर्यायुषस्तनुगुणनवदद् द्रिजेश ।।

[2] जयराम मिश्र। अनादि शकराचार्य जीवन और दर्शन पृ० १६ लोक भारती प्रकारशन इलाहाबाद।

[3] माधवाचार्य। शकर दिग्विजय, पृ० ६ प्रकाशक– महन्त– नरोत्तम गिरि श्री श्रवणनाथ ज्ञान मन्दिर हरिद्वार।

सस्कृत के श्रेष्ठ कवियो ने भी जब अपने आश्रय दाताओ के नामोल्लेख करने तथा ग्रन्थ के रचनाकाल के निर्देश करने की ओर अपना घ्यान नही दिया है तब हमे शड्कराचार्य जैसे विरक्त पुरुष को इन आवश्यक बातो के उल्लेख करने पर आश्चर्य नही करना चाहिये। वे सच्चे सन्यासी तथा विरक्त साधक थे। उन्हे इस बात की चिन्ता ही क्या हो सकती थी कि वे अपने सम–सामयिक राजा–महाराजा के नाम का कहीं उल्लेख करते। इनके शिष्यो की दशा इस विषय मे उनसे भिन्न न थी। उन लोगों के ग्रन्थो मे भी समय–रूिपण की ऐतिहासिक सामग्री का सर्वथा अभाव है। यही कारण है कि आचार्य के काल का इदमित्थरूपेण निरूपण करना इतनी विषय समस्या है।

आचार्य के काल निर्धारण को लेकर गहरा मतभेद है। विक्रम पूर्व सप्तम शतक से लेकर विक्रम से अनन्तर नवम शतक तक किसी समय मे इनका आविर्भाव हुआ यह सब कोई मानते है परन्तु किस वर्ष मे इनकी उत्पत्ति हुई थी इसके विषय मे कोई सर्वमन्य मत नही है। सम्प्रति उनके जन्मकाल के समय मे बारह मत प्रचलित हैं जो उनको ५०० ई० से लेकर ९०० ई० तक बताते हैं। इस अनिश्चितता मे आशा की एक किरण वाचस्पति मिश्र का निश्चित समय है जिन्होने ८९८ वि० सं० मे 'न्याय–सूची' निबन्ध लिखा था और जिन्होने शड्कर के शारीरिक भाष्य पर 'भामती' नामक टीका लिखी है। अत शड्कर का जन्म समय निश्चित रूप से ८४१ ई० (८९८ ५७) से पहले था। एक और प्रमाण यह है कि शड्कराचार्य के शिष्य सुरेश्वराचार्यका उदाहरण जैन दार्शनिक विद्यानन्द ने दिया है जिसकी जानकारी शान्ति रक्षित द्वारा तत्त्व–सग्रह मे दी गयी है। तत्त्व–सग्रह का रचनाकाल ७४८ ई० है। अतएव विद्यानन्द, सुरेश्वर और शड्कर निश्चित रूप से ७४८ ई० के पहले थे। किन्तु विद्वानो का एक बडा वर्ग आचार्य शड्कर का जन्म ७८८ ई० मे और निधन ८२० ई० मे हुआ था। उनका अल्प जीवन मात्र ३२ वर्ष का था। शड्कराचार्य के विषय मे कहा गया है–

अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।

षोडशे कृतवान् भाष्य द्वात्रिंशेमुनिरभ्यगात्।।

इस सूक्ति के अनुसार आठ वर्ष की आयु तक शङ्कराचार्य ने चारो वेदो का अध्ययन कर लिया और बारह वर्ष तक षडाङ्ग वेदो का गूढ ज्ञान प्राप्त किया और अध्ययन–अध्यापन कार्य मे तत्पर हो गये, सोलह वर्ष की उम्र मे उन्होने वादरायण के ब्रह्म–सूत्र पर शारीरिक–भाष्य लिखा और ३२ वर्ष मे उनके जीवन की इह लीला समाप्त हो गयी।

जीवन चरित्र के आधार पर ग्रन्थ

आचार्य शङ्कर का जीवन चरित्र लिखने की तरफ बहुत से विद्वानो ने प्रयास किया। पद्मपाद ने शङ्करदिग्विजय का वर्णन अपने ग्रन्थ 'विजयडिण्डिम' मे किया। किन्तु यह ग्रन्थ आज उपलब्ध नही है। किसी भी समसामयिक विद्वान ने भी शकर के विषय मे नही लिखा।

जो कुछ भी हो आचार्य के जीवन से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थो की रचना समय–समय पर होती आई है। जिनमे दो चार भी छपकर प्रकाशित हुये है, और अन्य ग्रन्थ हस्तलिखित रूप मे ही है।

शङ्कर विजय

डा० औफ्रेक्ट की सूची के अनुसार इन का नाम नीचे दिया जाता है–

१ शङ्कर दिग्विजय– रचयिता माधव (हिन्दी अनुबाद के साथ प्रकाशित हरिद्वार)।

२ शङ्कर दिग्विजय– आनन्द गिरि (मुद्रित, कलकत्ता)।

३ शङ्कर विजय– चिद्विलास (ग्रन्थाक्षर मे मुद्रित)।

४ शङ्कर विजय– व्यास गिरि ।

५ शङ्कर विजय– सदानन्द (मुद्रित, काशी)।

६ आचार्य चरित (केरलीय)।

७ शङ्कर अभ्युदय– राजचूडामणिदीक्षित (श्री वाणी विलास प्रेस श्री रगम मे मुद्रित)।

८ शङ्कर विजयविलास काव्य– शङ्कर देशिकेन्द्र।

९ शङ्कर विजय कथा।

१० शङ्कराचार्य चरित।

११ शङ्कराचार्य अवतार कथा– आनन्दतीर्थ।

१२ शङ्कर विलास चम्पू– जगन्नाथ।

१३ शङ्कराभ्युदय काव्य– रामकृष्ण।

१४ शङ्करदिग्विजयसार– ब्रजराज।

१५ प्रचीन शकर विजय– मूकशङ्कर (कामकोटि के १८वे अध्यक्ष)।

१६ ब्राह्मशङ्कर विजय– सर्वज्ञ चित्सुज

१७ शङ्कराचार्योत्पत्ति

१८ गुरुवश काव्य– (लक्षमणचार्यकृत, मुद्रितश्रीरङ्गम्)

आचार्य शङ्कर का व्यक्तित्त्व

आचार्य शङ्कर बडे भारी मातृभक्त थे। माता के लिये भी यदि इस संसार मे कोई स्नेह का आधार था तो वह थे स्वयं आचार्य शङ्कर। पाच वर्ष की अवस्था मे ही यज्ञोपवीत सस्कार सम्पन्न हुआ तत्पश्चात वेदाध्ययन किये। ये श्रुति–स्मृति प्रतिपादित सन्मार्ग के प्रवर्तक और सरक्षक आचार्य है। इसलिये उनको श्रुति–स्मृति और पुराणो का आलय कहा गया है– 'श्रुतिस्मृतिपुराणानामालय करुणालयम्' आचार्य शङ्कर का दर्शन निसन्देह श्रुतियो, स्मृतियो तथा पुराणो का निचोड है।

वेदाध्ययन के बाद ही अचार्य को वैराग्य उत्पन्न हो गया और नर्मदा नदी के तट पर गुरु गोविन्द भगवत्पाद से दीक्षा लिये जो आचार्य गौडपाद के शिष्य थे।

दीक्षा के उपरान्त आचार्य काशी और हिमालय गये फिर सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किये, और बौद्धविप्लव के अनन्तर हिन्दू धर्म को सनातन बौद्धिक आदर्श मे पुन प्रतिष्ठित करने के लिये दूरदर्शी प्राज्ञ आचार्य ने भारत के चार प्रान्तो मे चार धर्म दुर्गा–मठ स्थापित किये। उत्तर मे बदरीकाश्रम मे ज्योर्तिमठ, पूर्व दिशा मे जगन्नाथ पुरी मे गोवर्धन मठ, पचिम मे द्वारिका मे शारदा–मठ और दक्षिण मे श्रृगेरी मे श्रृगेरी मठ। ये चारो मठ प्रहरी के सदृश मानो ये चारो वेदो की तथा भारत की चारो सीमाओ की रक्षा करते हुये तब से आज तक 'विजय वैजन्ती' फहरा रहे है।

इन मठो के आतिरिक्त काञ्ची मे कामकोटि मठ और काशी मे सुमेरु मठ भी शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित माने जाते है। इन मठो के मठाधीश जगदगुरू शङ्कराचार्य कहे जाते है जो शङ्कराचार्य के मतो का उन्नयन तथा प्रचार प्रसार करते हैं। इन मठो के अतिरिक्त शक्ति पीठो की तथा द्वादश ज्योर्तिलिगो की स्थापना का श्रेय भी आचार्य शङ्कर को दिया जाता है।

शङ्कराचार्य के शिष्य

शङ्कराचार्य ने अपने जीवन काल मे पूर्वोक्त चार पीठो की स्थापना करके सुरेश्वर, पद्मपाद, तोटक, और हस्तामलक इन चार प्रतिभासम्पन्न शिष्यो को पीठाधीश्वर पद पर अभिषिक्त किया था। इन शिष्यो मे सुरेश्वर और पद्मपाद ने विशेष ख्याति आर्जित की।

शिष्य पद्मपाद अैर सुरेश्वर द्वारा अद्वैतवेदान्त के दो सम्प्रदायो की स्थापना की है जिन्हे क्रमश विवरणप्रस्थान और वार्तिकप्रस्थान कहा जाता है। हस्तामलक का केवल "हस्तामलकस्तोत्र" है जिसमे केवल १४ श्लोक है। यह याज्ञवल्क्य सवाद शैली का प्रतिपादक है। इसग्रन्थ मे गुरु शिष्य सवाद है। "हस्तामलक स्तोत्र" अतिवर्णाश्रमी धर्म

का प्रतिपादक है। जो शकराचार्य को अभीष्ट था। इस पर १६वी शताब्दी मे स्वामी करपात्री के ''अद्वैत बोधदीपिका'' ग्रन्थ लिखे

आचार्य त्रोटक ने भी कई ग्रन्थ लिखा इसमे मुख्य ''श्रुतिसारसमुद्धरण''है जो त्रोटक छन्द मे लिखा गया है। इसमे १७६ त्रोटक हैं। इसलिए इसे 'त्रोटक श्लोक' भी कहा गया है। यद्यपि 'त्रोटक' का नाम आनन्द गिरि था। जो शङ्कराचार्य के भाष्यो पर टीका लिखने वाले 'आनन्दगिरि' से भिन्न थे।

५. आचार्य शङ्कराचार्य द्वारा प्रणीत ग्रन्थ

शङ्कराचार्यकी कृतियो के रूप मे सम्प्रति दो सौ से भी अधिक ग्रन्थ उपलब्ध होत है। जिसका वर्णन शङ्कर ग्रन्थवली मे मिलता है। किन्तु इन सभी ग्रन्थो की रचना गोविन्दपाद के शिष्य आदि शङ्कराचार्य ने ही की है यह प्रमाणित नही हो पाता क्योकि परवर्ती जगद्गुरू शङ्कराचार्यो ने भी अनेक रचनाये की और उन्होने ग्रन्थो की पुष्पिका मे अपने को आदि शङ्कराचार्य के सदृश गोविन्द पाद का शिष्य स्वीकार किया। अपने वास्तविक गुरु के नाम का निर्देश नही किया है। इससे आदि शङ्कराचार्य के ग्रन्थो का निर्णय करना कठिन हो गया है। जैसे– इन ग्रन्थो मे विवेक चडामणि, दशश्लाकी, दृगदृश्य विवेक, अपरोक्षानुभूति आदि अधिक प्रचलित है।

डा० श्री कृष्णपाद बेवल्लकर, डा० गोपीनाथकविराज और डा० सगम लाल पाण्डेय ने इन सभी ग्रन्थो की प्रामाणिकता पर विचार किया है। शङ्कराचार्य की प्रामाणिक रचनाये केवल निम्न है–

१ वादरायण के ब्रह्मसूत्र पर शरीरकभाष्य।

२ ईश, केन, कठ, प्रश्न, एतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, मुण्डक, और माण्डूक्य इन दश उपनिषदो पर भाष्य।

३ भगवद्गीता का भाष्य।

४ उपदेशसाहस्री (केवल पद्यात्मक अश)।

आचार्य शड्कर की रचनाओ मे मुख्य दो वर्ग है– भाष्य और प्रकरण। उपदेश साहस्री प्रकरण ग्रन्थ है और शेष भाष्य ग्रन्थ है। किन्तु आचार्य शड्कर द्वारा लिखित ग्रन्थो को हम चार कोटियो मे विभाजित कर सकते है–

१ भाष्य ग्रन्थ

२ प्रकरण ग्रन्थ

३ स्तोत्र ग्रन्थ

४ तन्त्र ग्रन्थ।

भाष्य ग्रन्थ

आचार्य शड्कर द्वारा प्रणीत भाष्य ग्रन्थो को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है– (अ) प्रस्थानत्रयी (ब) इतर ग्रन्थो पर भाष्य।

प्रस्थानत्रयी भाष्य के अन्तर्गत १ ब्राह्मसूत्र भाष्य २ गीता भाष्य और उपनिषद् भाष्य आते है। इन भाष्यो के द्वारा शड्कराचार्य ने सिद्ध किया है कि अद्वैतवेदान्त के तीन अध्याय हैं। उपनिषद भगवदगीता और ब्रह्मसूत्र तीनो का समन्वय अद्वैत वेदान्त मे होता है। शड्कर के पूर्व कोई भी व्यक्ति प्रस्थानत्रयी का भाष्यकार नही था।

ब्राह्मसूत्र

यह आचार्य की अद्वितीय कृति मानी जाती है। बादरायण कृत ब्रह्मसूत्र परमलघु और सक्षिप्त है बिना भाष्य को इसको समझना कठिन है। आचार्य शड्कर ने बडी सरल, सुबोध मधुर कोमल, तथा प्रसन्न शैली मे ब्रह्मसूत्र का भाष्य किया जाता है। भाषा बडी ही प्रौढ तथा साथ ही प्रसाद युक्त है। वाचस्पति मिश्र जैसे अद्‌भुत विद्वान और प्रौढ दार्शनिक ने आचार्य शड्कर के इस भाष्य को केवल प्रसन्न गभीर भर ही नही कहा है। बल्कि इसे गगाजल सदृश पावन बताया है।

इस भाष्य का 'शारीरक भाष्य' भी कहते है। शारीरिक शब्द से तात्पर्य है– शरीर मे निवास करने वाला 'आत्मा' इन सूत्रो मे आत्मा के स्वरूप की मीमासा की गयी है। इसलिए इन सूत्रो को शारीरिक सूत्र एव इस भाष्य को शरीरक भाष्य की सज्ञा दी गयी है।

२. श्रीमद्‌भगवद्‌गीता भाष्य

आचार्य शङ्कर ने इस भाष्य मे गीता की निवृत्ति मूलक और ज्ञानपूरक व्याख्या की है वे अपने इस भाष्य मे सिद्ध करने की चेष्टा की है कि ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के बल 'तत्वज्ञान' से ही होती है, ज्ञानकर्म समुच्चय से नही।

३. उपनिषद्‌भाष्य

इस उपनिषद् भाष्य मे बारह उपनिषदो का आचार्य शकर ने भाष्य किया है। परन्तु केन, श्वेताश्वर, माण्डूक्य और नृसिहतापिनी उपनिषदो पर लिखे गये भाष्यो पर विद्वानो को पूर्ण सदेह है। वे इन चारो को आदि शङ्कराचार्य की कृति न मानकर किसी अन्य शङ्कराचार्य की कृति मानते है।

उपनिषद् के भाष्यो की शैली बडी उदात्त गभीर, सरल, सुबोध और आकर्षक है। अपने मत की पुष्टि के लिये आचार्य ने प्राचीन वेदान्ताचार्यो के सिद्धान्तो का उद्धरण दिया है। इस दृष्टि से बृहदारण्यक उपनिषद् का भाष्य सबसे अधिक विद्वतापूर्ण, व्यापक और प्राञ्जल है। ब्रह्मप्राप्ति के साधनो मे उन्होने कर्मकाण्ड की उपादेयता का बडी युक्ति एव तर्क से खण्डन किया है। आचार्य शङ्कर के प्रस्थानत्रयी के ये भाष्य प्रौढ शास्त्रीय गद्य के उत्कृष्ट उदाहरण है।

(ब) इतरग्रन्थो पर भाष्य– यद्यपि आचार्य शङ्कर कृत इतर ग्रन्थो की भाष्य रचना पचास के लगभग बतायी जाती है किन्तु ये ग्रन्थ किसी अन्य शङ्कराचार्य के है आदि शङ्कराचार्य की नही। आदि शङ्कराचार्य की नि सदिग्ध रचनाएँ इस प्रकार है–

१ **विष्णुसहस्रनाम भाष्य–** इसमे परमात्मा के प्रत्येक नाम की युक्तियुक्त व्याख्या की गयी है।

२ **सनत्सुजातीय भाष्य–** धृतराष्ट्र के मोह को दूर करने के लिये सनतसुजातीय ऋषि ने जो आध्यात्मिक उपदेश दिया था वह महाभारत के उद्योगपर्व[1] मे वर्णित है। इसे सनत्सुजातीय पर्व कहते है।

3- ललितात्रिशती भाष्य

इस भाष्य मे भगवती ललिता के तीन सौ नाम है। आचार्य शङ्कर, ललिता के अनन्य उपासक थे।

४. माण्डूक्य कारिका भाष्य

गौडपादाचार्य ने माण्डूक्य उपनिषद् पर कारिकाए लिखी है और उन्ही के ऊपर आचार्य शंकर ने भाष्य की रचना की।

स्त्रोत ग्रन्थ

आचार्य शङ्कर परमार्थत अद्वैतवादी थे किन्तु व्यवहार क्षेत्र मे देवी–देवताओ, तीर्थो, पवित्रनदियो की उपासना और आराधना की सार्थकता को भलीभाति समझते थे। वे मानते थे कि 'सगुण ब्रह्म' की उपासना से ही निगुण क्षेत्र मे प्रवेश होता है लोक सग्रह के निमित्त आचार्य स्वय सगुण ब्रह्म की उपासना करते थे। उन्होने शिव, विष्णु, गणेश, शक्ति आदि देवी–देवताओ की भावपूर्ण स्तुतियो की रचना की है। शङ्कर के नाम से सम्बन्धित स्त्रोत मुख्य है–

१ गणेश स्तोत्र   २ शिवस्तोत्र   ५ युगल देवता

३ देवी स्तोत्र   ४ विष्णुस्तोत्र   ६ नदीतीर्थ विषयक स्तोत्र

७ साधारण स्तोत्र।

---

[1] महाभारत– उद्योग पर्व अध्याय ४२ से ४६ तक।

इसके अतिरिक्त आनन्द लहरी, गोविन्दाष्टक दक्षिणामूर्ति स्तोत्र, दशश्लोकी आदि भी शङ्कराचार्य की प्रामाणिक रचनाए मानी जाती है।

(द) प्रकरण ग्रन्थ

आचार्य शङ्कर ने वेदान्त सम्बन्धी अनेक छोटे–छोटे ग्रन्थो की रचना की है। वेदान्त तत्त्व प्रतिपादक होने के कारण ये 'प्रकरण ग्रन्थ' कहे जाते है। आचार्य अद्वैत वेदान्त का पावन सन्देश सर्वसाधारण तक पहुँचा देना चाहते थे और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होने प्रकरण ग्रन्थों की रचना की। जिससे वेदान्त को सर्वसाधारण के लिये सर्वसुलभ बनाने की चेष्टा की। प्रकरण ग्रन्थो की सख्या ४० तक मानी जाती है यथा– अपरोक्षानुभूति, आत्मबोध, उपदेश साहस्री, पचीकरण प्रकरण, वाक्य वृत्ति, विवेक चूडामणि शतश्लोकी आदि।

तन्त्र ग्रन्थ

आचार्य शङ्कर ने दो तन्त्र ग्रन्थो की रचना की है– (१) सौन्दर्य लहरी और (२) प्रपञ्चसार किन्तु कतिपय विद्वान इसे आचार्य का ग्रन्थ मानने मे सन्देह प्रकट करते है।

इस प्रकार ३२ वर्ष की अल्पायु मे इतने विशाल वाङ्गमय का प्रणयन करना भारतीय मनीषा की अप्रतिम उपलब्धि है।

६. मण्डन मिश्र और शङ्कर का शास्त्रार्थ

आचार्य शङ्कर मडन मिश्र से शास्त्रार्थ के लिये उत्कठित थे। रास्ते मे मडन मिश्र का घर पूछने पर दासियो ने उत्तर दिया–

स्वत प्रमाण परत प्रमाण कीरांगना यत्र गिर गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तर सन्निरुद्धा, जानीह तन्मण्डन पण्डितौक ।।

(शङ्करदिग्विजय ८/६)

अर्थात् जिस घर मे शुक और शुकी आपस मे बातचीत करते हुये यह बोलते हो– वेद स्वत प्रमाण है, अथवा परत प्रमाण, कर्म ही फलदाता है अथवा ईश्वर जगत् नित्य है अथवा अनित्य उसी घर को मण्डन मिश्र का घर समझ लीजियेगा।

आचार्य शङ्कर मण्डन मिश्र के घर पहुँचे वे श्राद्धकर्म मे उस समय लगे थे। कुछ समय पश्चात आचार्य शङ्कर का मण्डन मिश्र से वार्तालाप हुआ और मण्डन मिश्र शास्त्रार्थ के लिये तैयार हुये तथा व्यास और जैमिनी को मध्यस्थता के लिये शङ्कर ने आमन्त्रित किया किन्तु ऋषियो ने कहा हे! विद्वत् शिरोमणि शङ्कर! मण्डन की सहधर्मिणी उभयभारती मध्यस्थता करेगी। वे साक्षात सरस्वती की अवतार है। मण्डन मिश्र पहले मीमासा के थे और कर्मकाण्डी थे जहा वेदान्ती कर्मफलदाता ईश्वर को मानता था, वहा मण्डन मिश्र कर्म का फलदाता ईश्वर को न मानकर कर्म को मानते थे।

आचार्य शङ्कर ने मण्डन मिश्र से कहा हे सौम्य! मुझे सामान्य अन्न की भिक्षा नही चाहिए मै तो विवादरूपी भिक्षा की आकाक्षा से आपके पास आया हूँ परन्तु इस विवाद मे एक शर्त हम लोगो को माननी पडेगी जो पराजित होगा वह एक दूसरे का शिष्य बनेगा। सभा–मण्डप मे शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ उभय भारती ने मध्यस्थता स्वीकार की। जयराम मिश्र ने लिखा है– शङ्कराचार्य ने अपनी प्रतिज्ञा रखी– ब्रह्म 'सत्य' है जगत 'मिथ्या' है 'जीव' और 'ब्रह्म' एक ही है जैसे सीप मे रजत का भान होता है वैसे सत्चित् आनन्द स्वरूप ब्रह्म मे दृश्यमान प्रपञ्च भासित होता है।

जब उपनिषदो के तत्वमसि, अह ब्रह्मास्मि, प्रज्ञानब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म आदि महावाक्यो द्वारा जीव और ब्रह्म की एकता का बोध होता है तब अनादि अविद्या समेत समस्त प्रपञ्च नष्ट हो जाता है। जीवन–मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। शङ्कर ने कहा यही मेरा विषय है। उपनिषद् इसमे प्रमाण है। यदि मै शास्त्रार्थ मे पराजित

हुआ तो 'काषाय–वस्त्रो' का परित्याग करके श्वेत–वस्त्र धारण करूँगा। उभयभारती ही जय–पराजय का निर्णय करेगी।"[1]

मण्डन मिश्र ने भी अपना विषय रखा, वेद का कर्मकाण्ड ही प्रधान है, यही प्रमाण है, उपनिषद प्रमाण नही है। दु खो से मुक्ति कर्म के द्वारा ही होती है कर्म का अनुष्ठान प्रत्येक मनुष्य को आयु पर्यन्त करना चाहिए। यदि मैं इस शास्त्रार्थ मे पराजित हुआ तो गृहस्थ धर्म को छोडकर सन्यास ग्रहण कर लूँगा।

विद्वान्मण्डली के बीच वादी और प्रतिवादी मे शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ, उत्तरोत्तर शास्त्रार्थ की उत्कृष्टता और गभीरता बढती गयी, एक–दूसरे को पराजित करने के लिये प्रयत्न हो रहा था। आचार्य ने श्रुति प्रमाण से मण्डन को निरुत्तर कर दिया कि वेदान्त ब्रह्मज्ञान मे प्रमाण है, कर्म मे नही। तदन्तर 'तत्वमसि' महावाक्य को लेकर निर्णायक शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ।[2] मण्डन मिश्र मीमासक होने के कारण द्वैतवादी थे। उधर शड्कर वेदान्ती होने के कारण अद्वैत के प्रतिपादक थे। मण्डन उपनिषदो मे द्वैतपरक स्वीकार करते है, अद्वैत नही। मण्डन मिश्र ने पूर्वपक्ष ग्रहण किया और आचार्य शड्कर ने उत्तर पक्ष। मण्डन मिश्र ने कहा– यतिश्रेष्ठ! जीव और ब्रह्म की एकता कभी सिद्ध नही हो सकती, यह तीनो प्रमाणो से बाधित है। आचार्य शड्कर ने उत्तर दिया कि जीव और ब्रह्म की एकता को सिद्ध करने के लिये प्रमाणो की आवश्यकता ही नही है। 'ततत्वमसि' के विरुद्ध मण्डन ने मुण्डकोपनिषद की इस श्रुति का उदाहरण दिया।[3]

आचार्य शड्कर ने आक्षेप का निराकरण करते हुये कहा– हे गृहस्थ शिरोमणि! इस श्रुति मे 'बुद्धि' और 'पुरुष' का भेद प्रदर्शित किया गया है, न कि 'जीव' और 'ब्रह्म' का। पुरुष उससे सर्वथा भिन्न है इसलिये वह सुख–दुखो के भोगने वाले फलफलो से

---

[1] जय राम मिश्र– आदि शकराचार्य जीवन और दर्शन पृ० ८२

[2] शकर दिग्विजय– ८/७८ से ६१।

[3] द्वा सुपर्णा सुयजा सखाया समान वृक्ष परिषस्वजाते।
तरोरन्य पिप्पल स्वाद्वत्ति अनश्ननन्यो अभिचाकशीति।। मुण्डकोपनिषद्– ३/१/१

सर्वथा विमुक्त है। इसके बाद भी मण्डन मिश्र ने जीव और ब्रह्म का भेद दिखाने वाली कठोपनिषद की एक श्रुति का उदाहरण दिया।[1]

आचार्य शङ्कर ने उत्तर मे कहा इससे भी अद्वैत सिद्धान्त मे कोई बाधा नही पहुचती यह तो लोकसिद्ध भेद का प्रतिपादन मात्र करती है। ऐसे अर्थ लोक मे सिद्ध नही दिखलायी पडेगे। जगत् मे अभेद दिखलायी नही पडता है।[2] 'तत्वमसि' महावाक्य से जीव और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित होती है।[3] जो प्रमाणो, श्रुति, स्मृति अर्थात तर्क से वाधित नही हो सकती है। आचार्य शङ्कर ने मीमासक मर्मज्ञ मण्डन मिश्र को भरी विद्वन्मण्डली मे पराजित कर दिया। मीमासा कर्मकाण्ड पर अद्वैतज्ञान की पूर्ण विजय हुई। भारती ने भरी सभा मे निर्णय घोषित किया– "मेरे पतिदेव इस शास्त्रार्थ मे पराजित हो गये है, और आचार्य प्रवर विजयी।"

मण्डन मिश्र द्वारा स्तुति

ब्रह्मा के अवतार, मीमासक शिरोमणि, महान कर्मकाण्डी मण्डन मिश्र शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ मे पराजित होने पर आचार्य को गुरु मानकर याज्ञिको की भरी सभा मे उनकी स्तुति करने लगे– हे भगवन्! अब मुझे आपके वास्तविक स्वरूप का पूर्ण बोध हो गया। आप ससार के आदिकारण है, आपका स्वरूप ज्ञानमात्र है, पर अज्ञानियो के उद्धार के निमित्त इस शरीर को धारण किये हुये है। वास्तव मे आप अशरीरी हैं। हे यतिशिरोमणि! आपने उपनिषदो द्वारा निरूपित एक अद्वितीय, अखण्ड, अनादि, अनन्त, सत् चित् आनन्द ब्रह्म के स्वरूप की सम्यक् व्याख्या की है। 'तत्वमसि' महावाक्य का अस्त्र आपने वेदविरोधी और नास्तिक बौद्धो के सिद्धान्त का शिरच्छेदन करने के लिए किया है। यदि आप ऐसा न करते तो वैदिक धर्म रसातल मे चला गया होता।

---

[1] ऋत पिबन्तौ सुकृतस्यलोके गुहा प्रविष्टौ परमे परार्धे।छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पचाग्नयो ये च त्रिणाचिकेत ।। कठोपनिषद् १/३/१

[2] 'मृत्यो स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्चति।' तथा शकर दिग्विजय– ८/११३

[3] शकर दिग्विजय–८/७६ ८/७७

हे शाश्वत गुरु! हे जगद्गुरु! श्रुतियो के अर्थ निरूपण मे कपिल, कणाद और गौतम ऐसे प्रतिभाशाली ऋषियो ने भी भूले की, ठीक–ठीक विवेचन मे वे भी भ्रमित हो गये। आप शिवरूप मे अवतीर्ण हुये हैं आप अज्ञानान्धकार दूर करने के लिये श्रुतियो के अर्थ की वास्तविक व्याख्या की है। अल्पबुद्धि वाले टीकाकारो की टीकाए विषधर सर्पो के समान है उनके दशन से श्रुतिया जर्जर हो गयी थी। मैं आज गृहस्थ धर्म को छोडकर आपका शिष्यत्व स्वीकार करता हूँ। कृपया ब्रह्मतत्व का उपदेश कीजिये। आचार्य शङ्कर ने प्रसन्न होकर इनके सन्यास का नाम सुरेश्वराचार्य रखा।

शङ्कर और भारती का शास्त्रार्थ

शास्त्रार्थ मे पति के पराजित हो जाने पर भारती ने आचार्य शङ्कर से कहा हे विद्वान! मेरे पति की पराजय अभी अपूर्ण है क्योकि शास्त्रो मे पत्नी को पति की अर्द्धांगिनी माना गया है। मैं पूर्ण रूप से मानती हूँ कि आप सर्वज्ञ है। तथापि मेरी इच्छा है कि शास्त्रार्थ करुँ।[1] शास्त्रार्थ वाली घटना एक तपस्वी के मुख से मै बचपन मे सुन चुकी हूँ जिसने मेरे भूत और भविष्य से सम्बन्धित महत्वपूर्ण घटनाओ का उद्घाटन किया था। जिसमे कहा था कि शङ्कर के साथ तुम्हारे पति (ब्रह्म) मण्डन का शास्त्रार्थ होगा और वे पराजित होगे और गृहस्थ कर्म छोडकर सन्यास ग्रहण करेगे। जो अक्षरश आज सत्य हुई। आचार्य शङ्कर ने कहा– हे अबले! तुम्हारा हृदय मेरे साथ शास्त्रार्थ करने के लिये उत्कठित हो रहा है, यह जो वचन तुमने कहा वह अनुचित है, क्योकि यशस्वी पुरुष महिलाजनो के साथ वाद–विवाद नहीं करते।

किन्तु वाद मे शङ्कर तथा भारती (साक्षात् सरस्वती) से शास्त्रार्थ हुआ और लगभग सत्रह दिन तक चला। सरस्वती ने सोचा कि शङ्कर बचपन मे ही सन्यासी हो गये थे अत कामशास्त्र मे इनका ज्ञान नही होगा। अत इसी कामशास्त्र के द्वारा मै

[1] शङ्कर दिग्विजय– ५८, ५६ ६० प्रकाशक– महन्त नरोत्तम गिरि– हरिद्वार

इन्हे जीतूॅंगी। भारती ने पूछा– काम की कलाए कितनी है? इसका स्वरूप कैसा है, किस स्थान पर वे निवास करती है शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष मे उनकी स्थिति कहा–कहा रहती है आदि। इस पर आचार्य शङ्कर ने कहा इस विषय मे मुझे एक मास की अवधि दीजिये। हे सुन्दरी! इसके बाद तुम कामशास्त्र मे अपनी निपुणता छोड दोगी। बाद मे जब शकराचार्य आये तब उभयभारती ने कहा हे भगवन्! आप सदाशिव है, ब्रह्मा के भी अधिपति है, सभी देवताओ और प्राणियो के भी अधिपति है। कौमारि, आप सभी विद्याओ के अधिपति तथा सर्वज्ञ है। आपने सर्वज्ञ होते हुये भी शास्त्रार्थ मे मुझे पहले नही पराजित किया। अवधि मागकर आपने जगत के मर्यादा की रक्षा किये है। हम लोगो के लिये यह शर्म की बात नही है। सूर्य की प्रचण्ड ज्योति के सामने तारे और चन्द्रमा की ज्योति (फीकी) मन्द पड जाती है। ऐसा कहकर वे ससार छोडने के लिये उद्यत हुई और शङ्कराचार्य ने प्रार्थना किया कि भविष्य मे मै ऋष्यश्रृग मे मन्दिर की स्थापना कराऊॅगा आप उसमे अपनी शक्ति से प्रत्यक्ष निवास करे और भक्तजन की मनोकामनाएं पूर्ण करती रहे।

७. शाङ्कर दर्शन के स्रोत

आचार्य शङ्कर का सिद्धान्त कोई अभिनव सिद्धान्त नही था। वह तो वेद प्रतिपादित निर्दोष वेदान्त शास्त्रीय सिद्धान्त के प्रतिपादक रहे है। श्रुति प्रतिपादित अद्वैत मार्ग के पथ–प्रदर्शक मात्र थे। इसको नया शाङ्कर सिद्धान्त देना एक भ्रान्ति थी, और है। शुद्ध ब्रह्मवाद ही उनका सिद्धान्त है। वे जीवन भर वेद एव उपनिषदो की पूजा करते रहे। अतएव उनके विचारो पर वेदो का अत्यधिक प्रभाव पडा है और यह उनकी सभी कृतियो मे समान रूप से परिलक्षित भी होता है। यह हमारा दृढ विश्वास है कि शङ्कर के धर्मदर्शन का मुख्य स्रोत उपनिषद साहित्य है। किन्तु इसके अतिरिक्त भी कुछ ऐसे तथ्य और कारक अवश्य है जिनका प्रभाव भी उनकी अभिव्यक्ति विधि तथा

विचारो पर पडा है। कतिपय विद्वान आचार्य शड्कर के विचारो एव अभिव्यक्त विधियो पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव स्वीकार करते है, किन्तु वही अधिकाश इस प्रभाव को अस्वीकार करने के पक्ष मे भी अकाट्य तर्क प्रस्तुत करते है। अतएव इस विवादास्पद बिन्दु को यही छोडकर देना प्रासगिक होगा।

कतिपय दार्शनिक 'योगवासिष्ठ' ग्रन्थ का प्रभाव भी शड्कर की रचनाओ पर स्वीकार करते है क्योकि कुछ दार्शनिको का मत है कि ब्रह्म के स्वरूप सम्बन्धी विचार और व्यक्तिगत आत्मा के साथ ब्रह्म के तादात्म्य का सिद्धान्त विशेष रुप से उसी से प्रभावित है।[१] **डा० बी० एल० आत्रेय** लिखते है कि– "शड्कर की विवेकचूडमणि, अपरोक्षानुभूति, शतश्लोकी जैसी काव्यात्मक रचनाओ की तुलना करने पर स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि शड्कर योगवासिष्ठ से केवल प्रभावित ही नही थे वरन् उनकी शिक्षाओ को यथावत् ग्रहण किया है। डा० दास गुप्ता ने स्पष्ट रूप से सिद्ध किया है कि योगवासिष्ठ का काल हर–हालत मे शड्कर का पूर्ववर्ती है।[२] अतएव शकर पर योगवासिष्ठ का प्रभाव मानना तर्कसगत है।

शड्कर के धार्मिक एव दार्शनिक विचारो पर आचार्य गौणपाद के प्रभाव को भी स्वीकार किये बिना नही रहा जा सकता है। शकर ने गौणपाद की माण्डूक्य कारिका पर भाष्य लिखकर स्वय उनसे सम्बन्धित बताया है।

वस्तुत उपनिषद् शड्कर के धार्मिक एव दार्शनिक विचारो के मुख्य स्रोत है। यह मत समस्त अन्त वाह्य साक्ष्यो से प्रमाणित सिद्ध होता है। ब्रह्मज्ञान के सम्बन्ध मे स्वय शड्कर ने उपनिषदो को सर्वोच्च और स्वतत्र आप्तवाक्य के रूप मे माना है। उदाहरणार्थ– उन्होने स्पष्ट रूप से स्वीकारा है कि परमात्मा या ब्रह्म केवल वेदान्त

---

[१] योगवसिप्ठ तृतीय अध्याय – ७–२० चतुर्थ अध्याय – २२–२५ पचम अध्याय ४३, २०

[२] इण्डियन आइडियलिज्म– पृ० १५४

द्वारा ही जाना जा सकता है[1] और शब्द ही ब्रह्म का स्रोत है। शुद्ध ज्ञानस्वरूप परमसत को उपनिषदो द्वारा ही जाना जा सकता है।[2]

आचार्य शड्कर ने सभी मुख्य उपनिषदो और ब्रह्मसूत्रो पर भाष्य लिखे है। ब्रह्मसूत्र उपनिषदो का ही सार है। भाष्यो का उद्देश्य यही प्रतीत होता है कि शकर उनके विचारो का स्पष्टीकरण और प्रचार करना चाहते थे। शड्कर के विचारो का स्रोत उपनिषद् ही रहे है इस तथ्य को पूर्वी साहित्य के अनेक विद्वान भी स्वीकार करते है।

प्रो० पाल ड्युसन के मतानुसार 'भारतीय प्रज्ञान के वृक्ष पर उपनिषदो से अच्छा पुष्प और वेदान्त दर्शन से अच्छा कोई फल नही है। इस दर्शनतन्त्र का जन्म उपनिषदो की शिक्षाओ से ही हुआ और शकर ने इसे इसके उत्कृष्ठतम स्तर तक पहुचाया।[3] प्रो० मैक्समूलर के अनुसार भी शड्कर के दर्शन मे उपनिषदो के लगभग सभी बीज विद्यमान है। इस सम्बन्ध मे वे कहते है कि जब हम विचार करते है कि वेदान्त दर्शन के सारभूत तत्वमीमासीय विचार कितने सूक्ष्म एव गूढ है तो यह जानकर आश्चर्य होता है कि शकर ने उनको या उनके बीजो को प्राचीन उपनिषदो मे से खोज निकाला है। हम यह अस्वीकार नही कर सकते कि वेदान्ती दार्शनिको के बहुत से गूढ विचारो की जुडे उपनिषदो मे निहित है।[4]

प्रो० रानाडे भी मानते है कि ब्रह्मसूत्र और उपनिषद् वे आधार शिलाए है जिनपर समस्त वेदान्त दर्शन का भवन खडा है। किन्तु ब्रह्मसूत्र उपनिषदो के सिद्धान्तो का साराश मात्र है और भगवतगीता भी उन्ही सिद्धान्तो का प्रतिपादन करती हैं जो उपनिषदो मे निहित है। अत आचार्य शड्कर ही नही वरन् लगभग सभी अनुपथी लोग शकर के धर्म–दर्शन का स्रोत उपनिषदो को ही मानना उचित समझते है।

---

1 शाड्कर भाष्य, ब्रह्मसूत्र (प्रस्तावना)
2 सिद्धान्त मुक्तावली पृ० २३
3 आउट लाइन्स आफ वेदान्त सिस्टम ऑफ फिलासफी प्रीफेस
4 दि लेक्चर्स आन वेदान्त फिलासफी, पृ० १३५, १३६

प्रत्येक भाष्यकार ने अपनी भाष्य की पुष्टि हेतु वेद ओर उपनिषद् मे वर्णित विचारो का उल्लेख किया। जितने भाष्यकार हुये उतना ही वेदान्त दर्शन का सम्प्रदाय विकसित हुआ। वेदान्त दर्शन के चार सम्प्रदाय मुख्य रूप से है–

१ अद्वैतवाद– आचार्य शङ्कर २ विशिष्टाद्वैतवाद– रामानुज

३ द्वैतवाद– मध्वाचार्य ४ द्वैताद्वैत– निम्बार्काचार्य

शाङ्कर दर्शन– अद्वैतवेदान्त

ब्रह्मविचार– आचार्य शङ्कर के सुप्रसिद्ध वेदान्त सिद्धान्त को समझने के लिये यह श्लोक परम विख्यात है–

श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्त ग्रन्थकोटिभि ।

ब्रह्मसत्य जगन्निमिथ्या जीवो ब्रह्मैव नाऽपर ।।

अर्थात् जो सिद्धान्त विस्तार से करोडो ग्रन्थो के द्वारा कहा गया है वह यह है कि एकमात्र सर्वात्मा या परमात्मा (१) ब्रह्म ही सत्य है। (२) नाम रूपात्मक यह जगत मिथ्या है। वस्तुत यह स्थिर सत्ता के अभाव मे प्रतीयमान है और (३) यह जीव ब्रह्म ही है (४) जीव और ब्रह्म मे कोई भेद नही। उपर्युक्त इन्हीं चार तथ्यो पर अद्वैतवाद का पूरा दर्शन आधारित है।

सत्य और मिथ्या की परिभाषा के अनुसार परमार्थ सत्य वह है– 'यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा' (चतुश्लोकी भागवत्) अर्थात् जो सभी कालो मे विद्यमान हो, किसी भी काल मे जिसका बाध न हो अर्थात् त्रिकालाबाधित हो और जो सर्वत्र अवस्थित है। यदि उस परमार्थ सत् को कोई छोडना चाहे तो नही छोड सकता है क्योकि उसका सभी के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है। भेद सहिष्णु, अभेद सम्बन्ध का नाम तादात्म्य है अर्थात् जिसमे वास्तविक अभेद एव काल्पनिक भेद हो जैसे सुवर्ण के साथ आभूषणो का। वह ब्रह्म सर्वत्र कालपरिच्छिन्न से रहित है। अत श्रुति द्वारा 'सत्यज्ञानमनन्त ब्रह्म' कहा गया

है। मिथ्या वह है जो कभी रहे या कभी न रहे। यहा 'रहने' का अभिप्राय केवल 'प्रतीति' से है। कल्पित पदार्थ मध्य मे भासित होने पर भी वस्तुत आदि एव अन्त की तरह मध्य मे भी अविद्यमान ही है। अतएव माण्डूक्योपनिषद् कारिकार श्री गौडपादाचार्य जी ने कहा है– 'आदावन्ते च यन्नस्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा।' आचार्य नृसिह सरस्वती ने 'वेदान्त डिण्डिम' नामक ग्रन्थ मे लिखा है–

यदस्त्पादौ यदस्त्यन्ते यन्मध्ये भाति तत्स्वयम्।
ब्रह्मैवैकमिद सत्यमिति वेदान्तडिण्डिम ।।
यन्नादौ यच्च नास्त्यन्ते तन्मध्येभातमप्यसत्।
अतोमिथ्या जगत् सर्वमिति वेदान्तडिण्डिम ।।

अर्थात् जो आदि मे है, अन्त मे है, एव मध्य मे स्वय भासित है वह एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है, यह वेदान्त का डिण्डिम घोष है। जो आदि मे नही, अन्त मे नही, मध्य मे भासित होने पर भी असत् मिथ्या ही माना गया है। अत यह जगत् मिथ्या ही है। ऐसा वेदान्त का मत है।

विश्व के प्रति सामान्यत मनुष्य का दृष्टिकोण वस्तुवादी होता है। वह समझता है कि ससार मे अन्य वस्तुओ के साथ उसकी भी सत्ता है और वे वस्तुएं उससे स्वतत्र है। प्रो० मैक्समूलर के शब्दो– "अधिकाश मनुष्य जाति के लिये दृष्टिगत जगत् पूर्णत सत्य है, वे उससे अधिक सत्य कुछ भी नही समझते है।[1] ससार मे जो कुछ इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय है वह सत् समझा जाता है और इसके विपरीत असत्।[2] इसी दृष्टिकोण से शकर ने मनुष्य के सामने उपस्थित और दृश्यमान वस्तुओ को सत् माना है तथा इसके विपरीत प्रकार की वस्तुओ को असत् कहा है किन्तु सत् के विषय मे सामान्य दृष्टिकोण विश्वसनीय नही है। यदि जो कुछ दिखाई देता है, वही सत् होता

---

[1] थ्री लेक्चर्स आन दि वेदान्त फिलासफी पृ० १२६

[2] शाडकर भाष्य, केनोपनिषद्– ६–१२

तो हम भ्रान्त प्रत्यक्षीकरण और यथार्थ प्रत्यक्षीकरण मे भेद न कर पाते। यदि दिखाई देना मात्र सत् का मानदण्ड हो तो मृगमरीचिका का जल या रस्सी का सर्प कभी असत् न माना जा सकता।

इसका तात्पर्य यह है कि कम से कम कुछ परिस्थितियो मे हमे सामान्य वस्तुवाद छोडना ही पडेगा। शङ्कर ने भी कहा कि–'कोई वस्तु केवल इसलिये सत् नही कही जा सकती क्योकि वह दिखाई देता है। प्रतिपत्ति तो सत्यत्त्व और मिथ्यात्त्व की समान रूप से होती है। रज्जु मे सर्प की प्रतीति भ्रम है और इस प्रकार की दिखाई देने वाली वस्तुए मिथ्या है।

आचार्य शङ्कर कहते है कि– 'सत्य वह है जिसके विषय मे हमारी बुद्धि परिवर्तित न हो। 'यद्विषया बुद्धिर्न व्यभिचरति तत्सत्'।[१] महाभारतकार कहते है– सत्य वह है जो अव्यय और निर्विकार हो।[२]

'ब्रह्म' शब्द का तात्पर्य

'ब्रह्म' शब्द की व्युत्पत्ति सस्कृत की 'बृह' धातु से हुई है। 'बृह' का अर्थ है– वृद्धि को प्राप्त होना अथवा बढना। शकर के अनुसार यदि हम इसके धात्वर्थ पर विचार करे तो ब्रह्म शब्द का अर्थ चिर, शुद्ध आदि स्मरण आने लगता है।[३] अपनी महानता के कारण निरतिशय अथवा भूमा ब्रह्म कहलाता है।[४] ब्रह्म का यह नाम पडने का यही कारण है कि यह बृहत्तम और पूर्ण है।

ब्रह्मसूत्रकार वादरायण का मत है कि ब्रह्म शब्द का प्रयोग उपनिषद् मे निरपेक्ष सत् के अर्थ मे किया जाता रहा है। वह सम्पूर्ण ससार का उपादान और निमित्तकारण माना जाता है।

---

[१] शाङ्कर भाष्य गीता २/१६
[२] शन्तिपर्व– १६२ १०
[३] शाडकर भाष्य ब्रह्मसूत्र १/१/१
[४] शाडकर भाष्य केनोपनिषद् १५

शाकर भाष्य मे 'ब्रह्म' का लक्षण इस प्रकार दिया गया है– 'लक्षणन्तु असाधारण धर्म वचन'। लक्षण दो प्रकार का होता है– १ स्वरूप लक्षण २ तटस्थ लक्षण। स्वरूप लक्षण से तात्पर्य है– 'स्वरूप सत्व्यावर्तक स्वरूपलक्षणम्' अर्थात् जो लक्षण अपने लक्ष्य का स्वरूप होता हुआ स्वलक्ष्य को अन्य अलक्ष्यो से पृथक् करता है वह स्वरूप लक्षण है। उदाहरणार्थ– 'सत्यं ज्ञानमनन्त ब्रह्म', 'विज्ञानमानन्द ब्रह्म', 'सच्चिदानन्द ब्रह्म' इत्यादि।

तटस्थ लक्षण से तात्पर्य है– 'कदाचित् कत्वे सति व्यावर्तकम् तटस्थलक्षण्।' अर्थात् जो लक्षण स्वलक्ष्य मे यदा–कदा रहकर अपने लक्ष्य का अन्य अलक्ष्यो से पृथक बोध कराता है वह तटस्थ लक्षण है। जन्माधाधिकरण में ब्रह्म का तटस्थ लक्षण करते हुये महर्षि वादरायण ने लिखा है– 'जन्माहास्य यत।' यहा पर जन्म, स्थिति तथा लय की कारणता ब्रह्म मे सदैव नही रहती, अपितु केवल माया के अधिष्ठान काल मे ही रहती है।

'जन्माहास्य यत इस सूत्र के भाष्य मे आचार्य शङ्कर ने ब्रह्मज्ञान को सिद्धवस्तु विषयक माना है। यह धर्मजिज्ञासा की भाति, पुरुष बुद्धि की अपेक्षा नही रखता है, अपितु वस्त्वाधीन होता है। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञान भी वस्त्वाधीन है, क्योकि वह भी सिद्धवस्तुविषयक है– 'एव भूत वस्तु विषयाणा प्रामाण्य वस्तुतन्त्रम्। तत्रैव सति ब्रह्मज्ञानमपि वस्तुतन्त्रमेव भूतवस्तुविषयत्वात्'।

उपनिषद् मे सगुण और निर्गुण दो रुपो मे ब्रह्म का वर्णन किया गया है। शकर ने ब्रह्म को निर्गुण कहा है फिर भी ब्रह्म को शून्य नही समझा जा सकता है। उपनिषद ने भी 'निर्गुणो गुणी' कहकर निर्गुण को भी गुणयुक्त माना है। निर्गुण ब्रह्म का वर्णन 'नेति–नेति' से किया जाता है। 'अर्थात् आदेशो नेति–नेति' ब्रह्म ही परमार्थिक दृष्टि से

पूर्णत सत्य है। ब्रह्म स्वयज्ञान है वह प्रकाश की तरह ज्योर्तिमय है।[1] ब्रह्म का साक्षात्कार ही चरम लक्ष्य है। वह सर्वोच्च ज्ञान है। ब्रह्म अनन्त, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान है।

शड्कर ने ब्रह्म को ही आत्मा कहा है। इसलिये शड्कर के दर्शन मे आत्मा को ब्रह्म कहकर अभिन्नता को प्रमाणित किया है।[2] ब्रह्म को सिद्ध करने के लिये शड्कराचार्य किसी प्रामाण्य की आवश्यकता महसूस नही करते। इसका कारण है कि ब्रह्म स्वत सिद्ध है। ब्रह्म व्यक्तित्व से शून्य, अपरिवर्तनशील, अनिर्वचनीय, निर्विशेष, निराकार है। ब्रह्म की अनुभूति होती है ब्रह्म परमसत् होने के कारण यद्यपि उस सब मे व्याप्त है जिसका हम अनुभव करते है या जिसके अस्तित्व की कल्पना कर सकते है तो भी हमारे अनुभव या कल्पना की कोई वस्तु ब्रह्म पर आरोपित नही की जा सकती।[3]

आचार्य शड्कर ब्रह्म को अनन्त ज्ञान और अनन्त शक्ति सम्पन्न भी मानते है। वह समस्त विश्व का उपादान और निमित्त कारण है। यदि ब्रह्म निरपेक्ष और अद्वितीय है तो नानात्वपूर्ण ससार का मूल इसी मे खोजना पडेगा। दृश्य जगत का उपादान और निमित्तकरण उससे भिन्न कुछ और मानने का अर्थ ब्रह्म की अद्वितीयता और निरपेक्षता को अस्वीकार करना होगा इसलिये शड्कर ने यह स्वीकार किया है कि स्वय ब्रह्म ही ससार की रचना करने वाली अनिर्वचनीय शक्ति माया से विभूषित है और वही माया ससार की उपादान और निमित्तकरण है। ऐसी स्थिति मे शड्कर उसे सगुण ब्रह्म, अपरब्रह्म या ईश्वर कहते है।[4] ब्रह्म को जब हम विचार से जानने का प्रयत्न करते है तब वह 'ईश्वर' हो जाता है। ईश्वर को 'सविशेष' ब्रह्म भी कहते है। ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जब माया मे पडता है तब वह ईश्वर हो जाता है। शकर के दर्शन मे ईश्वर को

---

[1] शाड्करभाष्य, ब्रह्मसूत्र १ १ ५, श्वेताश्वर ३ १६
[2] प्रो० हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा– भा० दर्शन की रुपरेखा– पृ० २६६
[3] शाड्कर भाष्य छान्दोग्य– ६ २ १
[4] शाड्कर भाष्य– केनोपनिषद् १ ५

'मायोपहित ब्रह्म' भी कहा जाता है। ईश्वर माया के द्वारा विश्व की सृष्टि करता है माया ईश्वर की शक्ति है जिसके कारण वह विश्व का प्रपञ्च रचता है। ईश्वर विश्व का कारण है लेकिन स्वय अकारण है। यदि ईश्वर के कारण को माना जाय तो अनवरत् श्रृखला चलती जायेगी और अनवस्था दोष प्रसक्त हो जायेगा। ईश्वर को विश्व का स्रष्टा माना जाता है। ईश्वर विश्व का उपादान और निमित्त दोनो कारण है वह स्वभावत निष्क्रिय है परन्तु माया से युक्त होने के कारण वह सक्रिय हो जाता है।

ईश्वर व्यक्तित्वपूर्ण है। वह उपासना का विषय है। कर्म नियम का अध्यक्ष ईश्वर है। ईश्वर ही व्यक्तियो को उनके शुभ और अशुभ कर्मो के आधार पर सुख–दुख का वितरण करता है। ईश्वर कर्मफल दाता है। ईश्वर नैतिकता का आधार है। ईश्वर स्वय पूर्ण है यह धर्म अधर्म से परे है शकर ने ईश्वर को विश्व मे व्याप्त तथा विश्वातीत माना है। जिस प्रकार दूध मे उजलापन अर्न्तभूत है वैसे ही ईश्वर विश्व मे व्याप्त है। ईश्वर विश्वातीत भी है, जिस प्रकार घडी साज की सत्ता घडी से अलग रहती है उसी प्रकार ईश्वर विश्व का निर्माण कर अपना सम्बन्ध विश्व से विच्छिन्न कर विश्वातीत रहता है।

ब्रह्म परमार्थिक दृष्टि से सत्य है जबकि ईश्वर व्यवहारिक दृष्टि से सत्य है ब्रह्म निर्गुण, निराकार और निर्विशेष है परन्तु ईश्वर सगुण और सविशेष है। ब्रह्म उपासना का विषय नही है, परन्तु ईश्वर उपासना का विषय है। ईश्वर विश्व का सृष्टा, पालनकर्ता, सहारकर्ता है, परन्तु ब्रह्म इन गुणो से शून्य है। ईश्वर मायोपहित है, ब्रह्म माया से शून्य है। इस प्रकार ईश्वर और ब्रह्म मे यह व्यवहारिक भेद है।

अब प्रश्न यह उठता है कि ब्रह्म या ईश्वर के लिये प्रमाण क्या है? शकराचार्य मानते है कि ब्रह्म के लिये प्रथम प्रमाण श्रुति है जो उसके स्वरूप का वर्णन विशद रूप

से करती है। द्वितीय प्रमाण स्वानुभूति है जिसके आधार पर महर्षियो ने अनुभव किया कि उनकी आत्मा ही ब्रह्म है– 'अयमात्मा ब्रह्म' या मैं ही ब्रह्म हूँ, 'अह ब्रह्मास्मि'।

जीव विचार

ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य के अनुसार जब आत्मा का प्रतिबिम्ब अविद्या मे पडता है तब वह जीव हो जाता है। इस प्रकार जीव आत्मा का आभासमात्र है। जहा आत्मा की परमार्थिक सत्ता होती है वहा जीव को व्यावहारिक सत्ता होती है। जब आत्मा शरीर, इन्द्रिय–मन इत्यादि उपाधियो से सीमित होता है तब वह जीव हो जाता है।[१] आत्मा एक है जब कि जीव–भिन्न शरीरो मे अलग–अलग है इससे सिद्ध होता है कि जीव अनेक है। जीव ससार के कर्मो मे भाग लेता है। शुभ–अशुभ के कारण वह पुण्य और पाप का भागी होता है। जीव ज्ञाता, कर्ता अनुभविता भी होता है क्योकि सुख–दुख की अनुभूति जीव को होती है। शकर ने जीव को बन्धन–ग्रस्त माना है अपने प्रयासो से जीव मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। शरीर के नष्ट हो जाने के बाद जीव आत्मा मे लीन हो जाता है।

जीव आत्मा का वह रुप है जो देह से युक्त है। उसके तीन शरीर है– स्थूल शरीर, लिग शरीर, कारण शरीर। जब आत्मा का अज्ञान के वशीभूत होकर बुद्धि से सम्बन्ध होता है तब आत्मा जीव का स्थान ग्रहण करती है।

जिस प्रकार एक ही आकाश उपाधि भेद के कारण घटाकाश, मठाकाश इत्यादि रुपो मे दिखाई पडता है उसी प्रकार एक ही आत्मा शरीर और मनस् की उपाधियो के कारण अनेक दीख पडता है।

जीव और ईश्वर

[१] 'तथाक्षराद विविधा सोम्य भावा प्रजायन्ते तत्र चैवा पियन्ति।। मुण्डकोपनिषद २/१/१

जब ब्रह्म का माया से सम्बन्ध होता है तब वह ईश्वर हो जाता है और जब ब्रह्म का अविद्या से सम्बन्ध होता है तब वह जीव हो जाता है इस प्रकार जीव और ईश्वर दोनो ही ब्रह्म के विवर्त है। ईश्वर और जीव दोनो की व्यवहारिक दृष्टि से ही सत्यता है परमार्थिक दृष्टि से नही।[1] इससे स्पष्ट होता है कि जीव और ईश्वर एक दूसरे के शारीरिक उपाधिया ही उत्पन्न होती है, आत्मा नित्य होने से कभी उत्पन्न नहीं होता है।[2] जीव और ईश्वर मे समानताओ के अतिरिक्त भिन्नता भी है यथा– ईश्वर मुक्त है जीव बन्धन ग्रस्त है, ईश्वर अकर्ता है जब कि जीव कर्ता है। ईश्वर उपासना का विषय है जब कि जीव उपासक है। ईश्वर जीव का शासक है जबकि जीव शासित है ईश्वर जीवो को कर्मो के अनुसार सुख–दु ख प्रदान करता है। जीव ईश्वर के अशो की तरह है, यद्यपि ईश्वर निरवय है।

शङ्कर ने जीव और ईश्वर के सम्बन्ध को बताने के लिये मुण्डकोपनिषद् मे वर्णित उपमा की ओर सकेत किया है–

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्ष परिषस्वजाते।
तयोरन्य पिप्पल स्वाद्वत्ति, अनश्ननन्यो अभिचाकशीति।।

(मुण्डको० ३/१/१)

अर्थात् साथ–साथ रहने वाले तथा समान आख्यान वाले दो पक्षी एक ही वृक्ष का आश्रय करके रहते है। उनमे से एक फल को मधुर समझकर बडे चाव से खाता है और दूसरा बिना खाये सिर्फ देखा करता है। पहला जीव है जब कि दूसरा ईश्वर है। जीव भोक्ता है जब कि ईश्वर द्रष्टा है। जीव कर्ता है ईश्वर नियन्ता है। शकराचार्य के मत मे दोनो अविद्योपाधिक और काल्पनिक है शंकर के मत मे प्रतिबिम्बवाद अवच्छेदवाद और आभासवाद के बीज है जिसका विकास परवर्ती अनुवायियो ने किया।

[1] शाङ्कर भाष्य १/१/३२ (ब्रह्मसूत्र)
[2] ब्रह्मसूत्र २/३/१७

तत्वमसिवाक्य के उद्घाटन मे जीव और ईश्वर का सम्बन्ध स्पष्ट होता है । तत त्वम् का वाच्यार्थ क्रमश ईश्वर और जीव है।

जीव और ब्रह्म

वस्तुत ब्रह्म और जीव दोनो उसी प्रकार अभिन्न है जिस प्रकार चिनगारिया अग्नि से अभिन्न होती है। यदि जीव को ब्रह्म या आत्मा से भिन्न माना जाय तब जीव का ब्रह्म से तादात्म्य नही हो सकता। क्योकि दो विभिन्न वस्तुओ मे तादात्म्य नही सोची जा सकती है। जीव और ब्रह्म मे भेद उपाधि के कारण है।[१] जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध की व्याख्या के लिये शकर ने उपमा क सहारा लिया है जिसे प्रतिबिम्बवाद कहते है– जिस प्रकार एक चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जब जल की भिन्न–भिन्न सतहो पर पडता है तब जल की स्वच्छता और मलिनता के अनुरुप प्रतिबिम्ब भी स्वच्छ और मलिन दीख पडता है उसी प्रकार जब एक ब्रह्म का प्रतिबिम्ब अविद्या पर पडता है तब अविद्या को प्रकृति के कारण जीव भी भिन्न आकार प्रकार का दीख पडता है।

माया

आत्मा से भिन्न जो कुछ भी हो सकता है उसे शकराचार्य ने 'माया' कहा है। 'माया' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ऋग्वेद मे हुआ है। ऋग्वेद का प्रसिद्ध मत्र है– "इन्द्रो मायाभि पररुप ईयते।[2] इसका अर्थ है कि इन्द्र रहस्यमयी शक्ति के द्वारा अनेक रुप धारण करता है। इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स में कहा गया है कि 'माया' शब्द का प्रयोग सुर एव असुर दोनो के छल–कपट के लिये किया गया है। जैसे– असुरो की माया को जीतकर ही इन्द्र ने सोम को जीता। माया के कारण ही सूर्य और चन्द्रमा एक दूसरे के बाद आते है।[3] <u>अथर्ववेद मे भी 'माया' शब्द का प्रयोग</u>

---

[1] ब्रह्मसूत्र २/३/४८

[2] ऋग्वेद– ६/४७/१८ (इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स मे उदधृत

[3] ऋग्वेद १०/५८/१८ (वही)

इसी अर्थ मे किया गया है— 'द्यूत क्रीडा मे माया के द्वारा ही भाग्य जगाता है।[1]
शकराचार्य के अनुसार माया सत् भी नही है, असत् भी नही है क्योकि जो सत् है वह आत्मा है इसलिये माया सदसद् विलक्षण है इतना ही नही, शकराचार्य ने उसे तत्त्व और अन्यत्व से भी अनिर्वचनीय कहा है। 'अव्यक्ता हि माया तत्त्वान्यत्वनिरुपणस्य अशक्यत्वात्।' (शारीरक भाष्य १/४/३)

परमार्थिक दृष्टि से माया अनिर्वचनीय है परन्तु व्यवहारिक दृष्टि से माया नामरुपात्मक सत् है इस अर्थ मे जितने विषय है वे सब मायिक या माया के अन्तर्गत है। उनकी उत्पत्ति स्थिति और लय माया मे है।

'माया' शब्द का प्रयोग भगवद्गीता मे भी उपलब्ध होता है भगवान कृष्ण ईश्वरभाव मे बोलते हुये स्वय कहते है कि "मै अविनाशी और अजन्मा होने पर भी समस्त भूत–प्राणियो का ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति को अधीन करके योगमाया से प्रकट होता हूँ।[2] गीता के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि माया दिव्य आध्यात्मिक सत्ता पर अवलम्बित है। उसका स्वतत्र अस्तित्व नही है माया के कारण ही ईश्वर अनेक रूप धारण करता है, किन्तु अपने को अलिप्त रखता है।

योगवासिष्ठ मे भी 'माया' शब्द का प्रयोग किया गया है और माया को प्रकृति कहा गया है वह शिव की स्पन्दनकारी एव दैवी इच्छा है।[४] पुराणो मे भी विश्व को ईश्वर की रहस्यमयी शक्ति का कार्य कहा गया है— उदाहरणार्थ— ब्रम्हपुराण मे कहा गया है कि द्वैत की दोषपूर्ण दृष्टि को अविद्या कहते है[3] और मनुष्य द्वैत दिखाने वाली अपनी माया से ही अपने को भ्रमित करता है।[४]

---

[1] अथर्ववेद– ४/३७/३
[2] भगवद्गीता ४ ६
[4] योगवशिप्ठ – ६/२८५ १४ सा राम स्वन्दशक्तिरकृत्रिमा
[3] शाकरभाष्य–श्वेताश्वरतर, प्रस्तावना।
[4] शाकरभाष्य– श्वेताश्वतर प्रस्तावना। स्वमायया स्वमात्मान मोहयेत द्वैतरूपा

शङ्कर माया का प्रयोग करने वाले पहले दार्शनिक नही थे। यदि व्यवहारिक जगत की व्याख्या के लिये माया का प्रयोग करने के कारण शङ्कर को मायावादी कहा जा सकता है तो प्राचीन काल के उन ऋषियो और विद्वानो को भी मायावादी कहना चाहिए जिन्होने शास्त्रो की रचना की है।

शङ्कर माया को सर्वशक्तिमान ईश्वर की रहस्यमयी शक्ति मानते है ईश्वर अनिर्वचनीय दिव्य शक्ति के द्वारा विश्व की रचना करता है और स्वय उससे अप्रभावित उसी प्रकार से रहता है जैसे जादूगर अपनी जादू की शक्ति से अप्रभावित रहता है।[1] माया का आश्रय ईश्वर ही है। सर्वत्र ईश्वर से ही सबन्ध रखने वाले जो नाम रूप हैं जिसे इस दृश्य जगत का बीज कहा गया है, और जिसे न सत् कह सकते है और न ही असत्, वह माया ही है।[2] इस माया के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वह त्रिगुणात्मिका माया सम्पूर्ण ससार की बीज है।[3] वह समस्त इन्द्रियानुभाविक विश्व का कारण है। तीन गुणो वाली माया ईश्वर की अपनी शक्ति है और वही ससार की सब वस्तुओ की मूलस्रोत है।[4] शकर कहते है कि यह माया साख्य की प्रकृति से भिन्न है क्योकि यह स्वतत्र और सत् है जबकि माया दूसरे पर आश्रित है।[5] शकर का विचार है कि ससार की उत्पत्ति सर्वज्ञ एव सर्वशक्तिमान ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार नही हो सकती है।[6] इस प्रकार शङ्कर के मत मे माया अनादि है, भौतिक और जड है, ज्ञाननिरस्या है माया विवर्तहै, भावरूप हैतथा सदसद्निर्वचनीय या भावाभाव विलक्षण है।

जगत प्रपञ्च माया की प्रतीति है, जीव और जगत दोनो मायाकृत है। जिस प्रकार रज्जु मे भ्रम से सर्प की प्रतीति होती है और रज्जु का ज्ञान हो जाने पर सर्प

---

1 शाङ्कर भाष्य ब्रह्मसूत्र २१३
2 शाङ्कर भाष्य ब्रह्मसूत्र २११४
3 शाङ्कर भाष्य ७४ १३१६ १३२६
4 शाङ्कर भाष्य (ब्रह्मसूत्र) १४३
5 शाङ्कर भाष्य (ब्रह्मसूत्र) १४३
6 ब्रह्मसूत्र शाङ्कर भाष्य ११२

का बाध हो जाता है उसी प्रकार ब्रह्म, माया या अविद्या के कारण जीव जगत प्रपञ्च रुप मे भासित होता है। और निर्विकल्प अपरोक्ष ज्ञान से जब ब्रह्मानुभव हो जाता है तब जीव जगत प्रपञ्च का बाध हो जाता है। यही मोक्ष या आत्म स्वरुप का ज्ञान है।

अविद्या

शङ्कर माया को ईश्वर की मूल शक्ति मानते है किन्तु इससे भी अस्वीकार नही किया जा सकता कि कही–कही विश्व को 'अविद्यात्मक', 'अविद्याकल्पित' तथा 'अविद्याप्रत्युत स्थापित' भी कहा है।[1] किन्तु यह भी निश्चत है कि शङ्कर ने अविद्या को ईश्वर नही कहा है उन्होने ईश्वर को 'मायिन' तो कई बार कहा है, किन्तु 'अविद्यावान' एक बार भी नही कहा। इसके विपरीत उन्होने ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वविद् आदि नामो से अवश्य अभिहित किया है। शङ्कर के ये कथन इस बात को इगित करते है कि उनके अनुसार अविद्या और माया को पर्यायवाची नही माना जा सकता। ईश्वर अथवा जगन्नियन्ता को अविद्या का विषय नही कहा जा सकता । ईश्वर को अविद्या का विषय मानना आत्म–व्याघाती होगा। देह सघात आदि के साथ आत्मा की तद्रूपता मान लेना ही अविद्या या अज्ञान है। कर्ममात्र से अज्ञान का नाश नही हो सकता क्योकि कर्म और अज्ञान का नाश नही हो सकता क्योकि कर्म और अज्ञान मे कोई विरोध नही है। जिस प्रकार अधकार का नाश केवल ज्ञान से ही होता है, उसी प्रकार अज्ञान का नाश केवल ज्ञान से ही होगा। यह अविद्या के ही कारण है कि हमे आत्मा ससीम प्रतीत होती है, अविद्या के नष्ट हो जाने पर आत्मा जो नितान्त अभेद है, स्वस्वरूप को अपने आप प्रकट कर देता है। यह उसी प्रकार हे जैसे बादलो के छट जाने पर सूर्य स्वत प्रकाशित हो जाता है। अविद्या अनिर्वचनीय और अनादि है यह आत्मा या जीव पर आरोपित एक उपाधि है।

---

[1] ब्रह्मसूत्र शाङ्कर भाष्य २ १ १४

अध्यास

शड्कराचार्य ने ब्रह्मसूत्र शाड्कर भाष्य मे अध्यास के तीन लक्षण दिये है– जिनमे कोई तात्विक भेद नही है। प्रथम लक्षण के अनुसार– 'अध्यासो नाम स्मृतिरूप परत्र पूर्व दृष्टावभास।' अर्थात् अध्यास अवभास है,[१] जो भासित हो रहा है वह उत्तर ज्ञान से निरसित हो जायेगा। यथा– रज्जु मे सर्प की प्रतीति। द्वितीय लक्षण के अनुसार– 'अन्यस्य अन्यधर्मावभासता' अर्थात् किसी अन्य वस्तु का किसी अन्य वस्तु के धर्म के रूप मे अनुभासित होना है। यथा सीपी मे रजत का भान तृतीय लक्षण है– 'अतस्मिन तद्बुद्धि'। अर्थात् अध्यास– 'अतद' मे तद् का मिथ्या भान है। यह असत् का सत् पर आरोप है। यह सत् और असत् का, सत्य और अनृत का, मिथुनीकरण है।[२]

अध्यास ही माया का हेतु है यदि अध्यास का निराकरण हो जाय तो माया का स्वत निराकरण हो जायेगा। अविद्या के कारण शुद्ध आत्मत्व पर अनात्मा का तथा देहेन्द्रियान्त.करणादि अनात्मधर्मो का अभ्यास होते ही यह शुद्ध साक्षि चैतन्य जीव या प्रमाता के रूप मे प्रतीत होता है यही अध्यास है।[३] यह अनादि, अनन्त, नैसर्गिक तथा मिथ्याज्ञानरूप अध्यास सारे अनर्थो का मूल कारण है। अद्वैत आत्मतत्व के अपरोक्ष ज्ञान से इसका नाश होता है तथा वेदान्त शास्त्र प्रारम्भ होता है[४]–अविद्या और माया मे मुख्य भेद है कि अविद्या ज्ञानमीमासीय और माया तत्वमीमासीय सम्प्रत्यय है। माया ईश्वर की शक्ति है श्रुति और स्मृति मे उसी को प्रकृति कहा गया है वह ससार का बीज है। शकर कहतेहै–'सर्वज्ञस्य ईश्वरस्य आत्मभूतइव अविद्याकल्पिते, नाम रुपेतत्वान्यत्वाभ्याम निर्वचनीये ससारबीज भूते च श्रुति स्मृत्योरभिलप्यते'। (शारीरक भाष्य २/१/४) स्वामी

---

[१] शाड्कर भाष्य ब्रह्मसूत्र उपोद्धात

[२] वही अत्यन्त विविक्तयोधर्मधर्मिणो मिथ्याज्ञाननिमित सत्यानृत मिथुनीकृत्य 'अहमिदम ममेदम' इति नैसिर्गिकोऽय लोकव्यवहार।

[३] एव लक्षणमध्यास पण्डिता अविद्येति मन्यन्ते, तद्विवेकेन च वस्तुस्वरुपावधारण विद्यामाहु। वही।

[४] वही – अस्यानर्थ हेतो प्रहाणाय आत्मैकत्व विद्याप्रतिपत्यये सर्वे वेदान्ता आरम्भयन्ते।

विद्यारण्य ने पञ्चदशी मे माया या अविद्या के तीनो रूपो का वास्तव, अनिर्वचनीय और तुच्छ का वर्णन किया है।[५]

जगत विचार

'<u>ब्रह्मसत्य जगन्निमिथ्या जीवो ब्रह्मैव नाऽपर</u>'। अर्थात् शङ्कर के मतानुसार ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है तथा जीव और ब्रह्म अभिन्न है। जगत् की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे दार्शनिको मे पर्याप्त मतभेद है कोई अचेतन परमाणुओ से उत्पत्ति मानता है, कोई सत्कार्यवाद, कोई असत्कार्यवाद तथा परिणामवाद और विवर्तवाद को मानता है। इसमे से आचार्य शकर विवर्तवाद को मानते है। तालिका से स्पष्ट है–
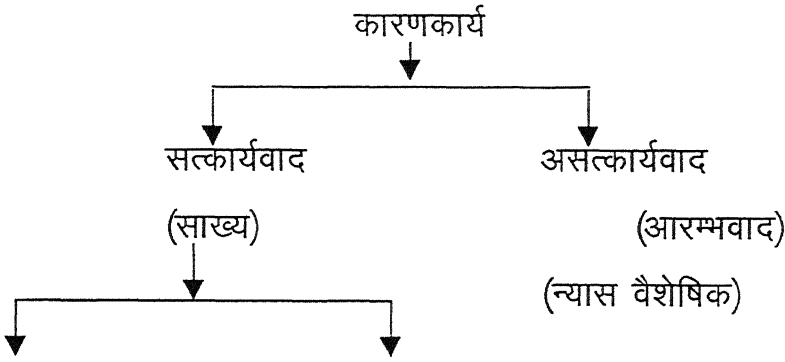
परिणामवाद (रामानुज)　　विवर्तवाद (शकर)

शकराचार्य के अनुसार जगत् ब्रह्म का विवर्त है, परिणाम नही। जगत् ब्रह्म की प्रतीति मात्र है, विकार या तात्विक परिवर्तन नही। ब्रह्म कूटस्थ नित्य है अत उसमे किसी प्रकार का परिवर्तन सभव नही है। <u>माया या अविद्या के कारण ब्रह्म जीव और जगत् के रूप मे प्रतीत होता है अत जगत्कारणता सगुण ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है</u>। शकर ने अपने दर्शन मे विध कोटियो का उल्लेख किया है–

१ प्रतिभासिक सत्ता – यथा–स्वप्न, भ्रम

२ व्यवहारिक सत्ता – जगत–जीव, ईश्वर

---

[५] तुच्छाऽनिर्वचनीया च वास्तवी चैत्यसौ त्रिधा। ज्ञेया माया त्रिभिर्बोधै श्रौतयौक्तिकलौकिकै ।। पचदशी

३ परमार्थिक सत्ता – ब्रह्म

शड्कर ने जगत को व्यवहारिक सत्ता के अन्तर्गत रखा है। जगत् व्यवहारिक दृष्टिकोण से पूर्णत सत्य है। जगत प्रतिभासिक सत्ता की अपेक्षा अधिक सत्य है और परमार्थिक सत्ता की अपेक्षा कम सत्य है। जगत् तभी असत्य होता है जब जगत् की व्याख्या परमार्थिक दृष्टिकोण से की जाती है। जो देश, काल और कारण–नियम के अधीन है वह सत्य नही है क्योकि इसकी उत्पत्ति और विनाश होता है। अत जगत भी सत्य नही है। जगत् ब्रह्म का विवर्त है। ब्रह्म जगतरुपी प्रपञ्च का अधिष्ठान है जो विवर्त है उसे परमार्थत सत्य नही कहा जा सकता। अत विश्व असत्य है।

शड्कर का जगत् विचार बौद्ध मत के शून्यवाद के जगत् विचार से भिन्न है। शून्यवाद के अनुसार जो शून्य है वही जगत् के रूप मे दिखाई देता है। परन्तु शंकर के मतानुसार ब्रह्म जो सत्य है वही जगत के रुप मे दिखाई देता है। शून्यवाद के अनुसार जगत का आधार असत् है जबकि शकर के अनुसार जगत का आधार सत् है।[1]

मोक्ष

मोक्ष आत्मा या ब्रह्म के स्वरूप की अनुभूति है। आत्मा या ब्रह्म नित्य शुद्ध चैतन्य एव अखण्ड आनन्द स्वरूप है। आत्मा ज्ञान स्वरूप है और मोक्ष आत्मा का स्वरूप ज्ञान है। भगवान बुद्ध ने अद्वैत परमतत्व और निर्वाण को एक ही माना है उसी प्रकार शकराचार्य के अनुसार ब्रह्म और मोक्ष एक ही है। जो ब्रह्म को जानता है वह स्वय ब्रह्म ही हो जाता है।[2] इस प्रकार ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मभाव एक ही है। मोक्ष उत्पाद्य नही है और न तो कोई नवीन बात होती है बल्कि मोक्ष प्राप्त हुये की प्राप्ति है–'प्राप्तस्य प्राप्ति मोक्ष।' जीव का जीवत्व अविद्या के करण है। अविद्या के वशीभूत जीव देहेन्द्रियान्त करणदि से तादात्म्य कर लेता है और देह की सुख–दुख की

---

[1] शाड्करभाष्योपनिषद् ४ १ शाड्कर भाष्य ब्रह्मसूत्र ११४

[2] ब्रह्मविद ब्रह्मैव भवति– मुण्डकोपनिषद् ३ २ ६

अनुभूतियो को अपना समझ लेता है और भोक्ता बनकर जन्म–मरण के चक्र मे फस जाता है और ससरण करता रहता है यही बन्धन है। अर्थात् आत्मा का शरीर और मन से अपनापन का सम्बन्ध ही बन्धन है। वस्तुत बन्धन और मोक्ष दोनो व्यवहारिक है तथा परमार्थत मिथ्या है। ब्रह्म साक्षात्कार, अविद्यानिवृत्ति प्रपञ्च विलय, मोक्ष प्राप्ति ये सब एक बात है और उपचार मात्र है अविद्यानिवृत्ति और ब्रह्म भाव या मोक्ष मे कार्यान्तर नही है।[1]

आचार्य शङ्कर ने ब्रह्मसूत्र शाङ्कर भाष्य मे समन्वयाधिकरणस्थ 'तत्तुसमन्वयात्' इस सूत्र के विवेचन क्रम मे 'ब्रह्मभावश्च मोक्ष' अर्थात् ब्रह्मभाव या ब्रह्मावगति को मोक्ष कहा गया है यह मोक्ष नित्य, शुद्ध, ब्रह्मस्वरूपवान मोक्ष सुख के समान आपेक्षिक या परिणामी सुख नही है जो धर्म के क्षीण होने पर नष्ट हो जाय– 'क्षीर्णपुण्ये मर्त्यलोक विशन्ति' अर्थात् मोक्ष परमार्थिक नित्य है।[2] मोक्ष किसी कर्म से प्राप्त नही हो सकता है उसके लिये ब्रह्म या परमसत् का अव्यवाहित ज्ञान अपेक्षित है। अनासक्त भाव से किये गये कर्म इस मार्ग को प्रशस्त कर सकते है। किन्तु इसके द्वारा भी साक्षात ज्ञान नहीं हो सकता है। उसके लिये ब्रह्म या परमसत् का अव्यवहित ज्ञान अपेक्षित है। अनासक्त भाव से किये गये कर्म इस मार्ग को प्रशस्त कर सकते है किन्तु इसके द्वारा साक्षात् ज्ञान नही हो सकता है। कर्म का परिणाम तो केवल रचना–रूपान्तरण, परिवर्तन या किसी वस्तु की उपलब्धि रुप मे देखा जाता है।[3] किन्तु मोक्ष इसमे से कुछ नही है अर्थात् कर्मो से शकराचार्य मोक्ष का सीधा सम्बन्ध नही मानते है।[4]

ब्रह्मभाव को प्राप्त करने के पश्चात् 'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसशया। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे पराऽवरे।' अर्थात् सभी प्रकार के शोक एव मोह से

---

[1] श्रुतयो मध्ये कार्यान्तर वारयन्ति। शाङ्कर भाष्य १/१/१४
[2] नित्यो हि मोक्ष– शाङ्कर भाष्य तैत्तिरीय १२
[3] शाङ्कर भाष्य तैत्तिरीय – १२
[4] शाङ्कर भाष्य ब्रह्मसूत्र– ४–१–१३

रहित ऐसा मुक्त पुरुष सर्वत्र ब्रह्म का ही दर्शन करता हे क्योकि वह स्वय ब्रह्म स्वरुप हो जाता है– 'तत्र को मोह क शोक एकत्वमनुपश्यत ।'

इस प्रकार शड्कराचार्य ने माक्ष के तीन लक्षण बताये है– १ अविद्यानिवृत्तिरेव मोक्ष (मोक्ष अविद्यानिवृत्ति है। २ ब्रम्हभावश्च मोक्ष (ब्रह्मभाव मोक्ष है) ३ नित्यमशरीरत्व मोक्षाख्यम् (नित्य शरीरत्व मोक्ष है)

शड्कर मुक्ति के दोनो रूपो को मानते है– सदेह मुक्ति और विदेह मुक्ति। अधिष्ठान भूत आत्म साक्षात्कार से अविद्या निवृत्त होते ही शरीर के रहने पर भी अशरीरत्व या जीवनमुक्ति सिद्ध होती है जीवनमुक्त व्यक्ति को अपने शरीर से उसी प्रकार कोई आसक्ति नही होती है जिस प्रकार सर्प को अपनी केचुली से नही होती है।

जिस प्रकार कुलाचक्र पूर्ववेग के कारण कुछ देर तक घूमता रहता है उसी प्रकार जीवन मुक्त का शरीर प्रारब्ध कर्म के कारण कुछ समय तक बना रहता है किन्तु इस समय किसी नवीन कर्म का सचय नही होता है। प्रारब्ध कर्म के नष्ट होने पर ही देहपात होकर विदेह मुक्ति होती है।

अर्थात् जब 'तत्वमसि' महावाक्य की (उपदेश) परिणति 'अह ब्रह्मास्मि' इस अनुभव वाक्य मे होती है तब ब्रह्म साक्षात्कार होता है।

शड्कर ने कर्म और भक्ति को ज्ञान प्राप्ति मे सहायक न मानकर केवल ज्ञान को माना है। ज्ञान की प्राप्ति वेदान्त दर्शन के अध्ययन से ही सभव है। जो साधनचतुष्टय का पालन करता है वही वेदान्त का सच्चा अधिकारी बनता है– जो निम्न है–

१ **नित्यानित्य वस्तु विवेक**– साधक को नित्य और अनित्य वस्तुओ मे भेद करने का विवेक होना चाहिए।

२ **इहामुत्रार्थ भोग विराग–** साधक को लौकिक पारलौकिक भोगो की कामना का परित्याग करना चाहिए।

३ **शमदमादि–** साधन–सम्पत्– साधक को शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति और तितिक्षा इन छ साधनो को अपनाना चाहिए।

४ साधक को मोक्ष प्राप्त करने का दृढ सकल्प होना चाहिए। जो साधक उपर्युक्त चार साधनो से युक्त होता है उसे वेदान्त की शिक्षा लेने के लिये ब्रह्मज्ञान अनुभूति प्राप्त गुरु के चरणो मे उपस्थित होना चाहिए। गुरु के साथ साधक को श्रवण–मनन–निदिध्यासन प्रणाली का पालन करना चाहिये।

गुरु के उपदेशो को सुनना ही 'श्रवण' है, उस पर तार्किक दृष्टि से विचार करना 'मनन' है फिर सत्य पर निरन्तर ध्यान रखना 'निदिध्यासन' है।

स्पष्ट है, कि शकराचार्य के ज्ञानमार्ग मे तर्क और श्रुतिज्ञान का समन्वय है। तर्क का प्रयोग श्रुत्यर्थ को ग्रहण करने मे आवश्यक है। श्रुतिज्ञान तर्क ज्ञान को प्रेरित करता है उसके समक्ष एक आदर्श रखता है। तर्कज्ञान उस आदर्श को प्राप्त करने के लिये अपनी अन्तरग समीक्षा करता है। वह अपने को जितना युक्ति युक्त और परिपूर्ण बनाता है उतना ही वह ब्रह्मात्मैक्य के अनुभव के सन्निकट पहुचता है– 'तर्को वै ऋषि'– अर्थात् तर्क ही आर्षज्ञान का प्राप्तकर्ता है।

इस प्रकार शाङ्कर दर्शन पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि शाङ्कर दर्शन जीवन दर्शन है। अन्य भारतीय दर्शन सिद्धान्तो की ही भॉति आचार्य शङ्कर के दर्शन मे भी न केवल मानव जीवन के सर्वोच्च आदर्श पर ही विचार किया गया बल्कि प्राप्त करने का मार्ग भी बताया गया है और व्यवहारिक जीवन मे भी अपनाने पर बल दिया गया है।

पञ्चम–अध्याय

शङ्कराचार्योत्तर अद्वैतवादी आचार्य और उनके सिद्वात

शड्कराचार्य ने सहिताओ, उपनिषदो, आरण्यको, ब्राह्मणो, ब्रह्मसूत्र एव श्रीमद्भागवत गीता के आधार पर जिस अद्वैतवाद सिद्वान्त की व्यवस्थित एव सैद्धान्तिक स्थापना की थी, बाद मे उनके शिष्यो–प्रशिष्यो ने भी अद्वैतवाद को सुदृढता प्रदान करने मे योगदान दिया। शड्करोत्तर मुख्य आचार्यो मे आचार्य पद्मपाद, सुरेश्वराचार्य, प्रकाशात्मा, सर्वज्ञात्ममुनि और वाचस्पतिमिश्र का महत्वपूर्ण योगदान है। इन महान आचार्यो का आविर्भाव ईसा की अष्टम एव नवम शताब्दी मे हुआ था जो अद्वैतवाद का स्वर्णकाल था। निसन्देह आचार्य शड्कर ने अपने भाष्यो में तर्कपूर्ण ढग से अद्वैतवाद की स्थापना की थी किन्तु उपर्युक्त दार्शनिको द्वारा अध्यास, मिथ्यात्व, अविद्या, जीव ब्रह्म सम्बन्ध, अविद्या निवृत्ति आदि सम्बन्धे पर अद्वैत विरोधी बौद्ध, न्याय आदि मतो का तर्कत खण्डन किया तथा युक्तियुक्त ढग से अद्वैतवाद की व्याख्या की है। शकरोत्तर अद्वैत वेदान्तियो द्वारा रामानुज, मध्वादि वैष्णवो के द्वैतपरक युक्तियो का भी खण्डन किया। शड्करोत्तर अद्वैत वेदान्तियो मे शड्कराचार्य के दो शिष्य सुरेश्वराचार्य तथा पद्मपादाचार्य ने अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थर लिखकर अद्वैतवाद का विकास किया तथा इन आचार्यो के अतिरिक्त वाचस्पतिमिश्र, सर्वज्ञात्ममुनि, विमुक्तात्मा, प्रकाशात्मयति, श्रीहर्ष, आनन्दबोध, चित्सुखाचार्य अमलानन्द, विद्यारण्य स्वामी प्रकाशानन्द यति मधुसूदन सरस्वती, ब्रह्मानन्द सरस्वती नृसिहाश्रम सरस्वती, अप्पय दीक्षित, धर्मराजा हरवीन्द्र और सदानन्द आदि प्रसिद्ध है।

उपर्युक्त प्रमुख आचार्यो मे शड्कर के शारीरक भाष्य पर वाचस्पति मिश्र की प्रसिद्ध 'भामती' नामक टीका है भामती के नाम पर 'भामती–प्रस्थान' कहलाता है। भामती पर अमलानन्द सरस्वती ने वेदान्त कल्पतरु नामक टीका लिखी है। पद्मपाद् द्वारा रचित शारीरक भाष्य मुख्यत चतुसूत्री पर, पञ्चपादिका नामक वृत्ति पर

प्रकाशात्मयति की पचपादिका 'विवरण' नामक टीका है जिसके आधार पर 'विवरण प्रस्थान' कहलाता है। ये दोनो प्रस्थान अद्वैतवाद के प्रामाणिक प्रस्थान है। इस प्रस्थान के प्रमुख दार्शनिक, प्रकाशात्मयति, तत्वदीपनकार अखण्डानन्द, चित्सुखाचार्य, सर्वज्ञ विष्णुभट्ट (ऋजुविवरणकार) नृसिहाश्रम, आनदपूर्ण विद्यासागर, यज्ञेश्वर दीक्षित, विवरण प्रमेय सग्रहकार विद्यारण्य स्वामी आदि। सुरेश्वराचार्य ने शङ्कराचार्य के बृहदारण्यक भाष्य और तैत्तिरीय भाष्य पर वार्तिक लिखे है जिसके कारण उन्हे 'वार्तिककार' कहा जाता है। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'नैष्कर्म्य सिद्धि' है। वार्तिक प्रस्थान के सस्थापक सुरेश्वराचार्य के आधार ग्रन्थ वृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य वार्तिक पर आनन्दगिरि ने टीका लिखी तथा विद्यारण्य स्वामी का वृहदारण्यवार्तिक सार सक्षेप रूप मे है। सुरेश्वराचार्य के अन्य ग्रन्थो मे पचीकरण वार्तिक, मानसोल्लास– जो शकराचार्य कृत दक्षिणा मूर्ति स्तोत्र पर वार्तिक है। सुरेश्वराचार्य के नाम से स्वराजसिद्धि और काशीमृतिमोक्ष विचार नामक ग्रन्थ भी हस्त लिखित ग्रन्थो की सूची मे दिये गये है। किन्तु जो स्वराज्यसिद्धि प्रकाशित है उसके प्रणेता गगाधरेन्द्र सरस्वती (१६वी शती) है। सुरेश्वराचार्य नहीं। तैत्तिरीयोपनिषद् भाष्य वार्तिक पर भी आनन्द गिरि की टीका है।

मण्डन मिश्र की जन्म स्थान के विषय मे भी दो मत हैं– कुछ विद्वान मानते है कि बिहार के सहरसा जिल के 'महिषी' ग्राम मे हुआ था। ये मीमासक और कर्मकाण्ड मे आस्था रखते थे। दूसरे मत के अनुसार इनकी जन्मस्थली माहिष्मती नगरी मानी जाती है। जो इन्दौर के पास मान्धाता नाम से भी प्रसिद्ध है। ये प्रसिद्ध मीमासक कुमारिल के शिष्य थे। इनकी पत्नी का नाम उम्बा था जो विदुषी थी। माधवाचार्य ने अपने ग्रन्थ 'शकर दिग्विजय' इनके पिता का नाम हिममित्र लिखा है। सुरेश्वराचार्य का समय ८०० ई० है।

भगवत्पाद शड्कराचार्य के चार शिष्यो मे से अन्यतम् थे। परम्परानुसार ही माना जाता है कि सुरेश्वराचार्य पूर्वाश्रम मे मीमासक शिरोमणि श्री मण्डनमिश्र ही थे जिनकी परिचर्चा पहले भी की जा चुकी है। श्री विद्यारण्य विरचित शड्कर दिग्विजय मे एक कथा दी गयी हे जिसके अनुसार आचार्य मण्डन मिश्र के साथ आचार्य शड्कर का शास्त्रार्थ हुआ था, शास्त्रार्थ मे मध्यस्थता मण्डन मिश्र की पत्नी भारती ने किया था। शास्त्रार्थ के पूर्व प्रतिज्ञा थी कि जो शास्त्रार्थ मे पराजित होगा वह परस्पर शिष्यत्व ग्रहण करेगा। इस शास्त्रार्थ मे मीमासक कर्मकाण्डी मण्डन मिश्र पराजित हुये और आचार्य शकर के शिष्य बन और इसके बाद शकर ने इनका नाम सुरेश्वराचार्य रखा। किन्तु मण्डन मिश्र और सुरेश्वराचार्य भिन्न व्यक्ति है या अभिन्न विद्वानो मे मतभेद है। प्रो० संगमलाल कुप्पूस्वामी भिन्न–भिन्न व्यक्ति मानते है।

इसलिये परम्परा से मण्डन मिश्र और सुरेश्वराचार्य को एक ही व्यक्ति माना जाता है। उनके गृहस्थाश्रम का नाम मण्डन मिश्र है और सन्यास आश्रम का नाम सुरेश्वराचार्य है। इसलिये कारण स्पष्ट है कि मण्डन मिश्र और सुरेश्वराचार्य के ग्रन्थो मे सैद्धान्तिक मतभेद सभव है। क्योकि गृहस्थाश्रम मे लिखे ग्रन्थो के समय वे अद्वैत दीक्षित नही थे और और दीक्षा लेने के बाद ग्रन्थो मे कुछ और सिद्धान्त लिखे गये। सभव है कि यह तर्क कुछ अशो मे सत्य है। सन्यास ग्रहण करने के पूर्व श्री मण्डन मिश्र ने आपस्तम्बीय मण्डन कारिका, भावना विवेक और काशी मोक्ष निर्णयनामक ग्रन्थो की रचना की थी। सन्यास ग्रहण करने के पश्चात तैत्तिरीय श्रुति वार्तिक, नैष्कर्म्य सिद्धि, इष्ट सिद्धि या स्वराज सिद्धि, पचीकरण वार्तिक वृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य वार्तिक, ब्रह्मसूत्र भाष्य वार्तिक, विधि विवेक, मानसोल्लास, लघुवार्तिक, वार्तिक सार और वार्तिक सार सग्रह आदि ग्रन्थ इनके द्वारा लिखे गये थे। शड्कराचार्य का शिष्यत्व

ग्रहण करने के उपरान्त ही गुरु की आज्ञा से कई अद्वैत पोषक ग्रन्थो का प्रणयन किया।

सयोगवश एक दिन सुरेश्वराचार्य ने आचार्य शकर को षाष्टाग प्रणाम करते हुए निवेदन किया– 'हे महान गुरु! मै जिस प्रकार आपकी लक्ष्य प्राप्ति मे सहायक हूँ उसे पूरा करने के लिए सब तरह से तैयार हूँ। आप मुझे नि सकोच आज्ञा प्रदान कीजिये।

सुरेश्वराचार्य की प्रार्थना सुनकर आचार्य शकर बहुत प्रसन्न हुये और बोले– 'वत्स! तुम मेरे शारीरिक भाष्य पर सुन्दर वार्तिक की रचना करो।'

सुरेश्वराचार्य ने कहा प्रभो तर्कयुक्त गभीर वाक्य सम्पन्न आपके भाष्य को समझने की शक्ति तो मुझमे नही है फिर भी आपकी कृपा से मै यथाशक्ति ग्रन्थ रचना करने की पूर्ण चेष्टा करूँगा। आचार्य ने अपनी स्वीकृति दे दी। किन्तु आचार्य के अन्य शिष्यो को जब यह बात मालुम हुयी तो उन्होने इसका विरोध किया। वे आचार्य के पास पहुचकर उनसे निवेदन किया– भगवन! आप सुरेश्वराचार्य से अपने भाष्य पर वार्तिक लिखा रहे है पर इससे आपका अभीष्ट सिद्ध नही होगा। क्या कुछ ही दिन पहले सुरेश्वर प्रबल मीमासक नही थे? उन्होने मण्डन मिश्र के रूप मे मीमासा के कर्मकाण्ड का प्रतिपादन किया। उन्होने इस बात पर बहुत अधिक जोर दिया कि समस्त वेदो का लक्ष्य कर्म के प्रतिपादन मे है। कर्म करने से ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है। कर्म ही फलदाता है। कर्म के अतिरिक्त ईश्वर कोई वस्तु नही। हे प्रभो ऐसे कर्मकाण्डी द्वारा आपके भाष्य पर वार्तिक लिखना आपके अद्वैतपरक भाष्य के सर्वथा प्रतिकूल होगा क्योकि उसमे वैदिक कर्मकाण्ड की प्रधानता रहेगी। अत सुरेश्वराचार्य की वार्तिक रचना आपके अद्वैत सिद्धान्त पर कुठाराघात के समान सिद्ध होगी। हम लोग आपका ध्यान आपके योग्यतम शिष्य पद्मपाद की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। आप इनकी भी पहले परीक्षा ले चुके है आपने प्रसन्न होकर सनन्दन से पद्मपाद नाम

रखा है ये वे ही पद्मपाद है जो आपकी अपूर्व सेवा करके आपकी कृपा से अद्वैत ज्ञान मे पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हुए है। ये जितेन्द्रिय और पूर्ण ब्रह्मज्ञानी है। द्वैतभाव का इनमे लेश भी नही है। पद्मपाद के अभाव मे यह काम त्रोटक को भी सौंपा जा सकता है। जिन पर सरस्वती की अद्भुत कृपा है। अपनी कठिन तपश्चर्या और अलौकिक गुरु भक्ति से आपकी महती अनुकम्पा अर्जित की है। इसके बाद पद्मपाद ने आचार्य से प्रार्थना की–'यह हस्तामलक आपके भाष्य पर वार्तिक लिखने मे सर्वथा समर्थ है।' सभी शास्त्रो का ज्ञान उन्हे 'हस्तामलकवत्' है। उनकी इसी विशिष्टता पर मुग्ध होकर आपने 'हस्तामलक' नाम रखा था।

पद्मपाद का निवेदन सुनकर आचार्य ने कहा वत्स पद्मपाद! तुम्हारी बात हस्तामलक के सम्बन्ध मे यथार्थ है पर इसमे कठिनाई यह है कि वह निरन्तर अर्न्तमुखी रहता है। सासारिक प्रपञ्चो से वह सर्वथा विमुक्त है। उसकी वृत्ति बर्हिमुख नही है। ब्रह्मज्ञान के अद्वैततत्त्व में सदैव प्रतिष्ठित रहता हे उसे सारी वस्तुओ का ज्ञान प्राप्त है फिर भी वह अपनी नितान्त अर्न्तमुखता के कारण वार्तिक लिखने के योग्य नहीं है। पर मुझे आशका है कि सुरेश्वर के बिना वार्तिक रचना की योजना असफल हो जायेगी।

शिष्य की बात सुनकर आचार्य ने कहा– इसमे सन्देह नही है कि पद्मपाद बडा ही योग्य और विद्वान है, ब्रह्मज्ञानी भी है। अत मेरी राय है कि पद्मपाद इस भाष्य पर 'वृत्ति' लिखे और सुरेश्वर वार्तिक। वार्तिक लिखने के लिये सुरेश्वर स्वयं प्रतिज्ञाबद्ध है। इसके बाद आचार्य शङ्कर ने सुरेश्वराचार्य को एकान्त मे बुलाकर कहा– 'वत्स सुरेश्वर! अभी तुम वार्तिक मत लिखो तुम्हारे गुरु भाईयो को सन्देह है कि सुरेश्वराचार्य वार्तिक लिखने मे सक्षम नही है क्योकि सन्यास ग्रहण करने से पूर्व मीमासा शास्त्र के कर्मकाण्ड के प्रति उनका आग्रह बहुत अधिक था। उनका यह आग्रह अभी छूटा नहीं होगा।

शङ्कराचार्य ने कहा कि अतएव तुम वार्तिक रचना के पूर्व एक स्वतत्र अद्वैतपरक ग्रन्थ की रचना करके मुझे दिखाओ इससे अन्य शिष्यो की आशका निर्मूल हो जायेगी।

शिष्यो की मनोभावनानुसार आचार्य का नया आदेश पाकर सुरेश्वराचार्य अद्वैत सिद्धान्त के नये ग्रन्थ के प्रणयन मे जुट गये। थोडे ही समय मे 'नैष्कर्म्यसिद्धि' नामक ग्रन्थ की रचना कर डाली। इस ग्रन्थ मे आत्मा के स्वरूप का स्वतत्र और मौलिक निरूपण किया गया है। इसकी कीर्ति आज तक अक्षुण्ण बनी हुई है। उन्होने इस ग्रन्थ को आचार्य के कर कमलो मे समर्पित किया। इस ग्रन्थ को पढकर आचार्य शङ्कर अति प्रसन्न हुये और उन्हे यह पूर्ण निश्चय हो गया कि सुरेश्वराचार्य की बुद्धि शास्त्रो के यथार्थ और सूक्ष्म भावो को ग्रहण करने मे अप्रतिम है। ऐसा शास्त्र मर्मज्ञ कोई दूसरा नहीं है। आजकल भी बडे–बडे सन्यासी और दार्शनिक नैष्कर्म्य सिद्धि का अध्ययन करते है। और उसकी मुक्त कठ से प्रशसा करते है। इस पर निम्नलिखित टीकाए है– ज्ञानोत्तम की 'चन्द्रिका टीका', चित्सुख की 'भावतत्व प्रकाशिका', ज्ञानामृते की 'विद्यासुरभि' आदि। सुरेश्वराचार्य ने कहा कि यदि कोई भी विद्वान भाष्य (शाङ्कर भाष्य) का वार्तिक लिखेगा तो वह यशस्वी नही होगा और उसकी कृति विद्वान मण्डली मे प्रसिद्ध न हो सकेगी। ऐसा अभिशाप देकर और अपनी रचना शङ्कराचार्य को देकर निवेदन किया– गुरुवर! इस ग्रन्थ की रचना मैंने अपनी ख्याति या लोकसिद्धि के लिए नही किया है गुरु के आदेशानुसार ही इसकी रचना किया है। मैने सन्यास केवल इसलिये नही ग्रहण किया कि शास्त्रार्थ की शर्त थी बल्कि मैने आपके उपदेश से भलीभॉति अनुभव किया कि मोक्ष कामी पुरुष के लिये त्यागवृत्ति ही सब कुछ है। आपकी महती कृपा से मुझे आत्मसाक्षात्कार हो गया और सत् चित् आनन्द ब्रह्म मे मैं पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो गया।

शङ्कराचार्य ने क्षुब्ध होकर सुरेश्वराचार्य से कहा कि मेरी दो कृतिया– बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य और तैत्तिरीयोपनिषद् भाष्य है। तुम जानते हो कि मेरी तैत्तिरीय शाखा है और तुम्हारी काण्व। अत तुम जगत कल्याण के लिये उन दोनो पर वार्तिक रचना करो ये दानो भाष्य मुझ परम प्रिय ह। इन दोनो उपनिषद् भाष्या पर वार्तिक लिखकर तुम सदैव के लिये अमर हो जाओगे। आचार्य शङ्कर की आज्ञा से सुरेश्वराचार्य ने बहुत ही अल्प समय मे अद्वैत मार्ग का बडी ही कुशलता से प्रतिपादन किया गया है तथा साथ ही अद्वैत विरोधी मतो का अकाट्य तर्कों और युक्तियो से खण्डन किया गया है। यतिराज शङ्कर इन वार्तिक ग्रन्थो को देखकर अति प्रसन्न हुये। ये दोनो ग्रन्थ आज भी उपलब्ध है।

दार्शनिक मत

सुरेश्वराचार्य का दार्शनिक दृष्टिकोण अपने गुरु शङ्कराचार्य के सिद्धान्तो का ही समर्थक था किन्तु कही–कही अपनी प्रतिभा शक्ति के द्वारा नवीन उद्‌भावनाए भी की थी। यथा– आभासवाद का सिद्धान्त सुरेश्वराचार्य का प्रमुख सिद्धान्त है। सुरेश्वराचार्य का प्रमुख सिद्धान्त है। सुरेश्वराचार्य जगत को न प्रतिबिम्ब स्वीकार करने के पक्ष मे और न अवच्छेद स्वीकार करने के पक्ष मे प्रतिबिम्बवाद और अच्छेदवाद के विपरीत वे जगत् को आभासमात्र मानते है।[1] इनके मत मे व्यवहारिक सत्यो से पूर्ण जगत् की सत्ता उसी प्रकार आभासमात्र होने के कारण मिथ्या है जिस प्रकार मायिक (ऐन्द्रजालिक) विषय आभासमात्र होने के कारण मिथ्या होते है। दोनो मे अन्तर है कि व्यवहारिक जगत् के सत्य, जगत् मे अविद्या के कारण सत्य दिखाई पडते है और मायिक विषयो का मिथ्यात्व व्यवहारिक जगत मे ही होता है। परन्तु व्यवहारिक सत्यता तभी तक कही जा सकती है जब तक कि सिद्ध अविद्या की निवृत्ति नही होती। इस

---

[1] वृहदारण्यक भाष्य वार्तिक पृ० १२४५

प्रकार आचार्य सुरेश्वर के मत मे जगत की सत्यता आभासमात्र है वास्तविक नही। इस प्रकार परमार्थ सत्य ब्रह्म के अनेक जागतिक रूपो मे आभासन का कारण अविद्या है।

जहा तक प्रतिबिम्बवाद का प्रश्न है, बिम्ब (मूलतत्त्व) एव प्रतिबिम्ब मे अभिन्नत्व है परन्तु इसके विपरीत आभासवाद सिद्धान्त के अनुसार मूलतत्त्व (ब्रम्ह) एव आभास मात्र द्वैतरूप जगत मे अभिन्नत्व नहीं है।[1] प्रतिबिम्बवाद के अनुसार अविद्या मे परमार्थ सत्य रुप ब्रह्म का जो प्रतिबिम्ब दिखाई पडता है वह ब्रह्म से पृथक न होने के कारण सत्य है। परन्तु सुरेश्वराचार्य के आभासवाद के अनुरूप अविद्या के कारण मूल सत्य ब्रह्म मे जिस व्यवहारिक जगत् की प्रतीति होती है वह आभासमात्र होने के कारण सत्य नही है। प्रतिबिम्बवाद के अनुसार प्रतिबिम्ब सर्वदा सत्य होता है। अज्ञान के कारण प्रतिबिम्ब सर्वदा सत्य होता है। अज्ञान के कारण प्रतिबिम्ब असत्य दिखाई पडता है। प्रतिबिम्बवाद की दृष्टि मे अज्ञान बिम्ब एव प्रतिबिम्ब की भेद दृष्टि है। बिम्ब एव प्रतिबिम्ब के भेद दर्शान के कारण ही द्रष्टा को प्रतिबिम्ब मिथ्या प्रतीत होता है, अभेद दर्शन के द्वारा नही।[2]

इस प्रकार अवच्छेदवाद के मत मे सर्वव्यापी एव असीम ब्रह्म ही जीव की अविद्या की अनन्त उपाधियो के कारण अवच्छिन्न एव असीम रूप को प्राप्त होता है। इस प्रकार अवच्छेद के अनुसार अवच्छेद (ब्रह्म का अविच्छिन्न रूप) मानसिक धारणा होने के कारण मिथ्या है परन्तु (ब्रह्म) अवच्छिन्न दिखाई पडता है वह सर्वथा अनवच्छिन्न एव सत्य ही है। इसके विपरीत आभासवाद के अनुसार जगत् की सत्यता का आभास किसी प्रकार भी सत्य नही है। आभासवाद के आधार पर सुरेश्वराचार्य ने व्यवहारिक जगत को आभास मात्र कहकर जगत का निराकरण करके अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया था। सुरेश्वराचार्य का यही आभासवाद है। ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान वादरायण तथा

---

[1] बृहदारण्यक भाष्य वार्तिक पृ० ६६६ विधि विवेक २१२२

[2] Dr Virmani Upadhyaa – Lights on Vedanta – P-43

भगवत्पपद शङ्कराचार्य को भी यही वाद अभिप्रेत है। इसीलिये सभवत बादरायण ने 'आभास एव च' (बृहदारण्य सूत्र ३/२/५०) यह सूत्र कहा और शङ्कर ने ब्रह्मसूत्र भाष्य के आदि मे अध्यास के लक्षण मे–'स्मृतिरूप परत पूर्व दृष्टावभास' तथा शुक्तिका हि 'रजतवदवभासते' कहा। अर्थात जिसका आभास होता है वह वस्तु मिथ्या होती है और उत्तर काल मे बाध हो जाता है। मिथ्या वस्तु कुछ क्षण के लिए अन्य वस्तु की तरह प्रतीत होती है, यही आभास है।

सुरेश्वराचार्य के शिष्य सर्वज्ञात्म मुनि भी प्रतिबिम्बवाद के पक्षधर है और आभासवाद को नही मानते है।

आचार्य पद्मपाद

आचार्य शङ्कर के चार शिष्य (सुरेश्वराचार्य, त्रोटक, हस्तामलक, पद्मपाद) थे। उनमे पद्मपादाचार्य प्रथम एव प्रमुख शिष्य थे। वे आचार्य के अगरक्षक के रूप मे उनके साथ सदा छाया–सदृश रहते थे। तथा उनसे वेदान्त के उपदेशो का श्रवण करते थे। पद्मपाद का गृहस्थ का नाम सनन्दन था। आचार्य शङ्कर ने पद्मपाद नाम रखा।

पदानि तेषु प्राणिधाय युष्मत्सकाशमागाघदय महात्मा।
ततोऽतितुष्टो भगवाश्चकार नाम्ना तमेन किल पद्मपादम्।।

(श्रीशङ्करदिग्विजय १३/१८)

ये शकर के समकालीन थे। शङ्कर का समय ७८८ से ८२ ई० तक माना जाता है।[1] शकराचार्य के ब्रह्मलीन होने के बाद आचार्य पद्मपाद गोवर्धन मठ पुरी के जगद्गुशङ्कराचार्य पद पर अभिषिक्त हुये थे। शङ्कराचार्य के निर्देशानुसार पद्मपाद ने उनके 'शारीरक भाष्य' के ऊपर श्रगेरी मे पञ्चपादिका टीका लिखी। नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि इसमे पादो की व्याख्या होगी किन्तु वर्तमान मे यह पञ्चपादिका

[1] एस एन दास गुप्ता भा० दर्शन का इतिहास खण्ड १ पृ० ४२३

चतु सूत्री ब्रह्मसूत्र तक ही सीमित ह। यह ग्रन्थ अधूरी ही प्रतीत होती है, किन्तु माधवाचार्य ने 'शङ्कर दिग्विजय' मे लिखा है पचपादिका का उत्तरार्द्ध शेष भाग भी है। जिसका नाम 'वृत्ति' था। सम्प्रति 'वृत्ति' नामक वह भाग अनुपलब्ध है।

'शङ्कर दिग्विजय' मे वर्णित एक कथा के अनुसार पद्मपादाचार्य की ब्रह्मसूत्र लिखी टीका का पूर्व नाम 'वेदान्तडिण्डिम' था। अब यह पचपादिका नाम से जानी जाती है– 'यत्पूर्वभाग किल पञ्चपादिका तच्छेषगा वृत्तिरिति प्रथीयसी' (शङ्कर दिग्विजय श्लोक ७०–७१)

पञ्चपादिका शाङ्कर वेदान्त का अतिमहत्वपूर्ण निबन्धग्रन्थ है इस ग्रन्थ मे पद्मपाद ने शाङ्करभाष्य के तात्पर्य का तार्किक और अभूतपूर्व विश्लेषण प्रस्तुत किया है। यह शाङ्करभाष्य का यथार्थ आलक ग्रन्थ है।

शङ्कर दिग्विजय मे चर्तुदश सर्ग मे पद्मपाद की तीर्थयात्रा की इच्छा, तीर्थयात्रा का दोष, तीर्थयात्रा प्रशसा आदि का वर्णन है। यतिराज शङ्कर ने पद्मपाद को शिक्षा देते हुये कहा वत्सपद्मपाद गुरु का सामीप्य ही सबसे बडी तीर्थयात्रा है,[1] गुरु का चरणोदक ही महान तीर्थ का पवित्र जल है। किन्तु शङ्कराचार्य द्वारा तीर्थयात्रा दोष बताने पर भी पद्मपाद अडिग रहे। वार्तिक रचना मे बाधा डालने के कारण पद्मपाद मन ही मन अपने को महान अपराधी समझने लगे थे। भारी पश्चाताप से उनका मन भर गया था अत मन ही मन तीर्थयात्रा करने का सकल्प कर लिया था। पद्मपाद की बाते सुनने के बाद आचार्य शङ्कर ने तीर्थयात्रा करने का आशीर्वाद दिया। पद्मपाद उत्तर भारत की यात्रा करने के अनन्तर दक्षिण भारत की यात्रा किये। दक्षिण भारत मे कालहस्तीश्वर शिवलिग की पूजा किये तथा इसके बाद रामेश्वर की ओर प्रस्थान किये, रास्ते मे मामा का गॉव मिला। मामा–भाजे को देखकर प्रसन्न हुये

[1] शुश्रुषमाणेन गुरे समीपे स्थेय न नेय च ततोऽन्य देशे (शकर दिग्वि० १४ / 3) पद्मग्रहोऽस्ति तव तीर्थ निषेवणाया विघ्नोमयाऽत्र न खलु क्रियते पुमर्थे ।। शङकर दिग्विजय ११४ / २०

१ पञ्चपादिका दर्पण	स्वामी अमलानन्द
२ पञ्चपादिका–टीका	आनन्दपूर्ण विद्यासागर
३ वेदान्तरत्नकोष	नृसिहाश्रम
४ प्रबोधपरिशोधनी	आत्मस्वरुप
५ तात्पर्य द्योतिनी	विज्ञानात्मा

दार्शनिक सिद्धान्त

जहा तक पद्मपादाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्त का प्रश्न है अद्वैतवेदान्त के क्षेत्र मे उन्होने एक नई दृष्टि दी थी। पञ्चपादिकाकार पद्मपादाचार्य एव विवरणकार प्रकाशात्मायति के नाम से जो दार्शनिक विवेचन मिलता है वह विवरण सम्प्रदाय के नाम से मिलता हे। पद्मपादाचार्य ब्रह्म एव अविद्या मे आश्रयाश्रयिभाव एव विषय–विषयि भाव सम्बन्ध स्थापित करते है।[1]

एन के देवराज भारतीय दर्शन मे लिखते है कि– "पद्मपाद ने माया या अविद्या को अनिर्वचनीय तथा जडात्मक अविद्या शक्ति कहा है। तात्पर्य यह है कि माया या अज्ञान अनादि और भावरूप है, सत् और असत् से विलक्षण है और ज्ञान से विनाश्य है। माया को भावरूप कहने का अर्थ सिर्फ इतना है कि वह अभावरूप नही है (अभाव विलक्षणत्व मात्र विवक्षितम्)

आच्छाद्य विक्षिपति सस्फुरदात्मरूपम्
जीवेश्वरत्व जगदाकृतिभिर्मृषैव
अज्ञानमावरण विभ्रमशक्ति योगात्
आत्मत्त्व मात्र विषयाश्रयता बलेन। – स० शारीरक, १/२०

[1] Lights on Vedanta – Page - 105

अर्थात्– आत्मविषयक और आत्माश्रयी अज्ञान आत्मा के ज्योर्तिमयरूप को ढककर अपनी विभ्रम शक्ति से आत्म–तत्व को जीव, ईश्वर और जगत् की आकृतियो मे विक्षिप्त कर देता है। सर्वज्ञ मुनि के गुरु सुरेश्वराचार्य भी अज्ञान शब्द का प्रयोग करना पसन्द करते है।"[1]

जगतमिथ्यात्त्व के सम्बन्ध मे पद्मपादाचार्य का मत है कि मिथ्यात्व को सत्य एव असत्य के अत्यन्ता भाव का अनाधिकरण कहा है–सत्त्वासत्त्वात्यन्ताभावानधिकरणत्त्वम'।[2] अर्थात् इस मत के अनुसार मिथ्या एव अनिर्वचनीय जगत को न पूर्णतया सत्य कहा जा सकता हे और न ही पूर्णतया असत्य ही कहा जा सकता है।[3] पद्मपादाचार्य का मत हे कि मिथ्याज्ञान की निवृत्ति केवल जीव एव ब्रह्मकत्व विज्ञानाद्भवति न क्रियात'।[4]

पद्मपादाचार्य ने 'मिथ्या' शब्द के दो अर्थ बताये है– एक तो अपहव या निषेध और दूसरा अनिर्वचनीय या सद्सद्विलक्षण। अविद्या या माया के लिये मिथ्या शब्द का प्रयोग सद्सदनिर्वचनीय के अर्थ मे किया जाता है 'मिथ्याशब्दोऽत्र अनिर्वचनीयता वचन'।[5] अविद्या के लिए कुछ असभव नही है– असभव को भी सभव के रुप मे भासित करती है।

वस्तुत पद्मपाद ही विवरण प्रस्थान के जनक है। इस प्रस्थान को टीका प्रस्थान भी कहा जाता है। क्योकि पचपादिका शारीरक भाष्य की एक टीका है।

वाचस्पति मिश्र (८४० ई०)– यह आचार्य शङ्कर के बाद के अद्वैतवेदान्त के दार्शनिक है। इनका समय कुछ लोग ८४० ई० मानते है।[6] किन्तु न्यायसूची, उनका पहला निबन्ध ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल उन्होने सवत् ८९८ अर्थात् ९७६ ई० बताया हे।

---

[1] एन के देवराज – भारतीय दर्शन – पृ० ५२८
[2] पञ्चपादिका – पृ० १०
[3] पञ्चपादिका पृ० १०
[4] पञ्चपादिका पृ० ६०
[5] पञ्चपादिका पृ० ४
[6] आशुतोष शास्त्री– वेदान्त दर्शन अद्वैतवाद (बगला सस्करण)

न्याससूची निबन्धोऽस्मावकारि सुधिया मुदे।

श्री वाचस्पति मिश्रेण वस्वडकवसुवत्सरे।।

इस प्रकार उनका समय निश्चित है वे दसवी शताब्दी के एक श्रेष्ठ सर्वतन्त्र स्वतत्र दार्शनिक है।[1]

ये भामती प्रस्थान के सस्थापक आचार्य है। इनकी प्रसिद्ध कृति 'भामती' शड्कराचार्य के शारीरक भाष्य की विशद और मौलिक टीका है। ये मण्डन मिश्र से भी प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त उन्होने मण्डन मिश्र की 'ब्रह्मसिद्धि' पर 'ब्रह्मतत्व समीक्षा' नामक एक टीका लिखी थी जो अब अनुपलब्ध है। इसका उल्लेख वाचस्पति मिश्र ने भामती मे कई स्थानो पर किया हे– यथा भाष्यभामती मे (ब्रह्मसूत्र के ३/३१/५४) कहते है कि– 'न च विषय भेद ग्राहि प्रमाणमस्तीति चोपपादित ब्रह्मतत्त्व समीक्षाया अस्माभि।' वेदान्त के अतिरिक्त अन्य शास्त्रो पर भी इनकी कृतिया है– जैसे– न्याय शास्त्र पर न्यायसूची निबन्ध, न्यायवार्तिक तात्पर्य, पतञ्जलियोगसूत्र पर व्यासभाष्य की टीका– तत्ववैशारदी, पूर्वमीमासा का एक प्रकरण ग्रन्थ तत्व बिन्दु और मण्डन मिश्र के विधिविवेक पर न्यायकणिका नामक टीका उनके ग्रन्थ है। ग्रन्थो को देखकर लगता है कि ये अपनी दर्शन यात्रा न्याय दर्शन से आरभ कर साख्य योग दर्शन तक पहुचे थे और पुन वहा से पूर्वमीमासा का मार्ग पकडकर वेदान्त तक पहुँचे थे। भामती श्री मिश्र की अन्तिम रचना प्रतीत होती है। क्योकि वे इसके अन्त मे कहते है कि– 'जो पुण्य मैने न्यायकणिका, ब्रह्मतत्त्व समीक्षा, तत्व बिन्दु, तत्वकौमुदी (साख्य निबन्ध) तत्त्व वैशारदी (योग निबन्ध) और भामती (वेदान्त निबन्ध) लिखकर प्राप्त किया है उसके फल को परमेश्वर को चढाता हूँ। परमेश्वर मुझसे प्रसन्न हो"।

---

[1] सस्कृत वाड्गमय का वृहद इतिहास– दशम खण्ड वेदान्त प० बल्देव उपाध्याय– पृ० ८५

भामती की टीकाएँ

भामती पर अमलानन्द सरस्वती ने 'वेदान्त कल्पतरु' नामक एक टीका लिखी है। इन्होने भामती को शारीरक भाष्य का वार्तिक कहा है।[1] भामती पर ओर भी अन्य टीकाए हे– जैसे बल्लाल सूरिकृत भामती तिलक, अखण्डानुभूति यतिकृत ऋजुप्रकाशित, अच्युतकृष्णतीर्थ कृत भामती भाव दीपिका, अज्ञात कर्तृक भामती युक्तार्थ सग्रह आदि है।

दार्शनिक विचार

वाचस्पति मिश्र का सबसे प्रसिद्ध सिद्धान्त अवच्छेद वाद है। शङ्कर अद्वैतवाद के अनुसार जीव–जगत्–ईश्वर–परमात्मा आदि मे कोई वास्तविक भेद नही माना जाता है बल्कि भेदप्रतीति औपाधिक है। इस औपाधिक भेद की व्याख्या के लिये तीन मत प्रसिद्ध है– (१) प्रतिबिम्बवाद– श्री पदमपादाचार्य का (८०० ई० मे) (२) आभासवाद सुरेश्वराचार्य का है ८२५ मे स्थापना हुई। (३) अवच्छेदवाद (८५० ई० में) श्री वाचस्पति मिश्र का सिद्धान्त है। अवच्छेदवाद के अनुसार ब्रह्म निरस्तोपाधि जीव है और जीव अविद्योपाधि ब्रह्म है। मिश्र का कथन है कि जीव की अविद्योपाधि के कारण अनवच्छिन्न एव असीम ब्रह्म अवच्छिन्नता एव ससीमता को प्राप्त होता है। जिस प्रकार आकाश एक और अविभज्य है किन्तु सासारिक लोग घटाकाश मठाकाश कहकर अभिहित करते है उसी प्रकार एक ही असीम ब्रम्ह जीव की अविद्योपाधि के कारण ससीमता एव अवच्छिन्नता को प्राप्त होता है। जैसे घट–मठ रूपी उपाधियो के नष्ट होने पर घटाकाश–मठाकाश आदि भेद नष्ट हो जाते है उसी प्रकार अविद्योपादि के नष्ट हो जाने पर जगत के समस्त भेद नष्ट हो जाते है और ब्रह्मात्मा ही शेष रह जाता है।[2]

---

[1] 'ननु टीकाया दुरुक्त चिन्ता न युक्ता वार्तिके हि सा भवति तर्हि वार्तिकत्वमस्तु न हि वार्तिकस्य शृगमस्ति' (कल्पतरु २/४/१६)

[2] उपाध्यवच्छिन्नश्च जीव (भामती–न्याय निर्णय रत्नप्रभा मे भामती पृ० २१०

कल्पतरुकार का कथन है कि वेदान्त दर्शन जीव एव ब्रह्म के ऐक्य का बोध कराने मे समर्थ है।[1]

जीव और अविद्या के बीच श्री मिश्र जी आश्रयाश्रयीभाव मानते है और इसके विपरीत ईश्वर और अविद्या मे विषयविषयीभाव को स्वीकार करते है।

श्री वाचस्पति मिश्र के अनुसार परमार्थत ईश्वर भी अतात्विक है किन्तु नाम और रूप की अपेक्षा से सत्य कहा जाता है। ईश्वर और जीव दोनो कार्य–प्रपञ्च के अगभूत है दोनो मे अशी और अंश का समष्टि और व्यष्टि का सम्बन्ध है। कारणोपाधि ईश्वर और कार्योपाधि जीव है। उनके यह उपाधिभेद ही अवच्छेदक भेद है। इस प्रकार अवच्छेदवाद द्वारा जहां ब्रह्म की निरपेक्षता सिद्ध होती है वही जीव का जीवत्व भी आपेक्षिक सत्य माना जाता है। ब्रह्म का जीवभाव काल्पनिक नही अपितु भाविक है।[2]

कर्मसमुच्चित ज्ञान

शाङ्कर मत मे केवल ज्ञान से ही ब्रह्मसाक्षात्कार माना गया है किन्तु कुछ आचार्यो ने जैसे ब्रह्मदत्त तथा मण्डन मिश्र ने कर्मसमुच्चित ज्ञान को ब्रह्मसाक्षात्कार का कारण माना है इसको ये अभ्यास तथा प्रसख्यान कहते है। वाचस्पति मिश्र भी उक्त मत का समर्थन करते है। मण्डन मिश्र ने 'ब्रह्मसिद्धि' मे इसका वर्णन किया है। निदिध्यासन को बारबार आवृत्ति करने की आवश्यकता को 'प्रसंख्यान' शब्द दिया है। अमलानन्द मानते है कि वाचस्पति मिश्र भी मण्डन मिश्र के प्रसख्यान से ही ब्रह्मसाक्षात्कार को स्वीकार करते है।[3]

शङ्कर और वाचस्पति

वाचस्पति मिश्र ने शङ्कराचार्य को विशुद्ध विज्ञान तथा करुणाकार कहा है।

---

[1] ब्रह्मात्मैकत्व बोधित्वाद वेदान्तिनाम्– वेदान्तकल्पतरु, पृ० २५ (प्रथम भाग)

[2] भामती – वही – पृ० ३७५

[3] वेदान्त कलपतरु पृ० ५६

वाचस्पति का मत है कि शारीरक भाष्य रूपी गगा से मिल जाने के कारण उनकी कृति भामती भी पवित्र हो गयी है।[1] भामती ने निसन्देह शारीरक भाष्य की रक्षा की है। विशेषतया उन दर्शनो से जिसका खण्डन स्वय शङ्कराचार्य ने तर्कपाद मे किया है। वाचस्पति मिश्र के समय मे बौद्ध, जैन, साख्य, वैशेषिक, पाशुपत, पाचरात्र दर्शनो के आचार्यो ने शङ्कर के खण्डनो का प्रतिवाद किया था। वाचस्पति मिश्र ने इस प्रतिवाद का निराकरण किया है। शारीरक भाष्य के तर्कपाद को जितना भामती मे प्रामाणिक, तथ्यसगत और युक्तियुक्त बनाया है उतना किसी अन्य टीका ने नही किया।

वाचस्पति मिश्र ने पद्मपाद की पचपादिका (विवरण प्रस्थान) का कही–कही खण्डन किया है। अमलानन्द सरस्वती ने इसका और खण्डन किया।

वस्तुत प्रकाशात्मा ने विवरण मे भामती का भी प्रबल खण्डन किया है।

सर्वज्ञात्म मुनि– (९०० ई०)

सर्वज्ञात्म मुनि वार्तिक प्रस्थान के दार्शनिक है। इनका समय ९०० ई० माना गया है।[2] सर्वज्ञात्ममुनि का दूसरा नाम नित्यबोधाचार्य था। ये श्रृगेरीमत के नवम मठाधीश थे। सर्वज्ञात्ममुनि की प्रख्यात रचना 'सक्षेप शारीरक' है। सर्वज्ञात्ममुनि ने अपने गुरु का नाम देवेश्वराचार्य लिखा है– 'जयन्तिदेवेश्वरपादरेणव। (स० शारी० १/८) रामतीर्थ ने देवेश्वर से सुरेश्वराचार्य का ही अर्थ लगाया है। सर्वज्ञात्मा आचार्य सुरेश्वर के शिष्य थे। सक्षेप शारीरक को शारीरक भाष्य का भी वार्तिक कहा जाता है। यह पद्य मे है। सर्वज्ञात्ममुनि के दो और ग्रन्थ है– पचप्रक्रिया और प्रमाण लक्षण। सक्षेप शारीरक पर अन्य टीकाए है जो निम्न है–

१ मधुसूदनसरस्वती कृत सक्षेप शारीरक सग्रह

---

[1] भामती का मगलाचरण

[2] (१) डा० दास गुप्त– ए हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी भाग–२ पृ० ११२
(२) सक्षेपशारीरक १/८ पर रामतीर्थ की टीका

२ नृसिहाश्रम कृत तत्वबोधिनी

३ रामतीर्थ कृत अन्वयार्थ प्रकाशिका

४ राघवानन्द कृत विद्यामृतवर्षिणी

५ विश्ववेद कृत सिद्धान्तदीप आदि टीकाए है।

शङ्करोत्तर अद्वैतवादियों मे जगतकारणता के सम्बन्ध मे तीन मत प्रतिबिम्बवाद, आभासवाद, अवच्छेदवाद प्रचलित है। सर्वज्ञात्ममुनि का जगत कारणता सम्बन्धी मत विवरणकार के मत से भिन्न है– विवरणकार का मत है कि शुद्ध चित् तत्व ही ईश्वर और जीव रूप मे दिखाई पडता है और साक्षी के रूप मे कार्य करता है। और वहीं जगत का उपादान कारण है। सक्षेपशारीरक सर्वज्ञात्ममुनि का कथन है कि अविद्या मे शुद्ध चित्त का प्रतिबिम्ब ईश्वर है और अन्त करण मे शुद्ध चित् का प्रतिबिम्ब जीव है। अत शुद्ध चित् ही जो अविद्यागत प्रतिबिम्ब का मूल है, साक्षी एव जगत् का उपादान कारण है।

किन्तु वाचस्पति मिश्र ने जीव को ही जगत् का उपादानकारण माना है क्योकि अविद्या के कारण जीव ही ब्रह्म साक्षात्कार न करके प्रपञ्च रूप जगत् की सृष्टि करता है।[1]

अद्वैतानन्द बोधेन्द्र (११४६ ई०)

यह अद्वैत वेदान्त के मुख्य दार्शनिक थे इनका (अद्वैतानन्द बोधेन्द्र) का काल बारहवी शती के पूर्वार्ध का अन्त है। यह काची के शारदामठ (कामकोटिपीठ) के पीठाधीश थे और भूमानन्द सरस्वती या चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती के शिष्य थे रामानन्द सरस्वती से वेदान्त विद्या का गूढ अध्ययन किया था। चिद् विलास या आनन्दबोध नाम

[1] अद्वैतसिद्धि पर ब्रह्मानन्दी टीका पृ०– ४८३ (बम्बई प्रकाशन) तथा सिद्धान्त बिन्दु पृ० २२५–२२७

से भी ये जाने जाते थे। इनकी प्रसिद्ध रचनाएं ब्रह्मविद्याभरण, शान्तिविवरण, और गुरुप्रदीप है।[1]

आनन्दबोध भट्टारकाचार्य (१२वी शताब्दी)

अद्वैत वेदान्त के समीक्षक आचार्य आनन्द बोध भट्टारक बारहवी शती के पूर्वार्द्ध में थे। आनन्दबोध इष्टसिद्धिकार विमुक्तात्मा के शिष्य थे। इनके तीन ग्रन्थ उपलब्ध है– न्याय मकरन्द, प्रमाण माला और न्याय दीपावली। 'न्याय–मकरन्द' सग्रहात्मक ग्रन्थ है, इसमे इन्होने नैयायिको का खण्डन किया है। अनुभूतिस्वरूप ने इन तीनो ग्रन्थों पर टीकाए लिखी है। न्यायमकरन्द तथा प्राणमाला पर चित्सुख की भी टीकाए प्राप्त होती है।

न्यायवैशेषिक दर्शन का खण्डन करके अद्वैतवाद की स्थापना करने के कारण आनन्दबोध बाद प्रस्थान के प्रमुख दार्शनिक दार्शनिको मे से है। उन्होने न्यायमकरन्द मे ख्यातिवाद के विभिन्न मतो की अच्छी समालोचना की है और अनिर्वचनीय ख्यातिवाद को प्रतिपादित किये। न्यायमकरन्दकार का मत पद्मपादाचार्य और प्रकाशात्मा के मतो से भिन्न है। मिथ्यात्व एवं अनिर्वाच्यता को स्पष्ट करते हुए आनन्दबोधाचार्य कहते है कि अविद्या के कार्यो एव परिणामो सहित अविद्या की निवृत्ति को बाध कहते है और बाध का ज्ञान होना ही अनिर्वात्यता है।[2]

आनन्दबोधाचार्य सद्सद्विलक्षण अविद्या को ही जगत का कारण मानते है।[3] सत् पदार्थ और असत् पदार्थ दोनो ही जगत की उत्पत्ति का कारण नही है अतः सत् और असत् से विलक्षण अविद्या ही है। आनन्दबोधाचार्य आत्मा को आनन्दरूप नही मानते है अपितु संविद्रूप मानते है। वे अविद्या निवृत्ति को सत्, असत्, सदसत् और अनिर्वचनीय

---

[1] Tripathi Introduction to Anandajrana`s Tarkasangraha

[2] 'सविलासाविद्यानिवृत्तिरेव बाधस्तदगोचर तैवानिर्वाच्यता। (न्यायमकरन्द पृ० १२५ चोखम्बा सस्करण बनारस १६०७)

[3] न्यायमकरन्द पृ० १२२, १२३

से भिन्न पचम प्रकार की मानते है। इसी कारण से अद्वैतवेदान्त के इतिहास मे वे अपना अप्रतिम स्थान रखते है।

प्रकाशात्मयति (१२वीं शताब्दी)

प्रकाशात्मा ने पद्मपाद की 'पञ्चपादिका' पर 'पञ्चपादिका विवरण टीका' लिखकर विवरण प्रस्थान को जन्म दिया। यह विवरण टीका परवर्ती काल मे शाकर सम्प्रदाय मे इतनी प्रसिद्ध हुई कि इस पर अनेक उपटीकाए लिखी गयी जैसे– सर्वज्ञविष्णु भट्ट की ऋजुविवरण, अखण्डानन्द की तत्वदीपन, चित्सुखाचार्य की तात्पर्यदीपिका, नृसिहाश्रम की भावप्रकाशिका, आनन्द पूर्व विद्यासागर की पञ्चपादिका विवरण व्याख्या आदि उपटीकाए है। माधवाचार्य (विद्यारण्य १३५० ई०) द्वारा रचित 'विवरण प्रमेय सग्रह' और रामानन्द सरस्वती लिखित 'विवरणोपन्यास' प्रकरण ग्रन्थ है। विवरणकार प्रकाशात्मायति अति विलक्षण के प्रतिभा के धनी थे। उनकी विवरण टीका व्याख्या ग्रन्थ होने पर भी एक स्वतत्र और मौलिक ग्रन्थ है। प्रकाशात्मायति वास्तव मे शाङ्करभाष्य की पचपादिका के प्रकाशस्तम्भ है इसमे सन्देह नही है। प्रकाशात्मा का जीवन परिचय उपलब्ध नही है किन्तु राधाकृष्णन ने उनका जन्म समय १२०० ईस्वी स्वीकार किया है।[3] ये सन्यासी थे अैर अनुभवाचार्य के शिष्य थे इस प्रकार का उल्लेख विवरण के प्रारम्भ मे मिलता है– "अर्थतोऽपि न नाम्नैव योऽनन्यानुभवोगुरु"। प्रकाशात्मयति विद्यारण्य के पूर्ववर्ती थे क्योकि विद्यारण्य ने विवरण पर 'विवरण प्रमेय सग्रह' की रचना की है विद्यारण्य का समय १४वीं शताब्दी है अत प्रकाशात्मा का समय द्वादश शताब्दी के आस–पास सिद्ध होता है। प्रकाशत्मा ने अद्वैत तत्त्व के विश्लेषण मे ब्रह्म एव अविद्या के बीच आश्रयाश्रयिभाव एव विषय–विषयि भाव सम्बन्ध माना है। पद्मपादाचार्य इस मत को मानते है जबकि वाचस्पति का मत इससे भिन्न है। किन्तु

[3] सर्वपल्ली राधाकृष्णन– भारतीय दर्शन भाग २ हिन्दी अनुवाद दिल्ली १९७२ पृ० ४४५

मिथ्यात्त्व के विश्लेषण मे प्रकाशात्मायति पद्मपाद से भिन्न मत मानते है। पद्मपादाचार्य शुक्ति आदि मे रजतादि के सार्वत्रिक एव त्रैकालिक मिथ्यात्व को नही मानते है। इसके विपरीत प्रकाशात्मा शुक्ति आदि मे रजतादि के सार्वत्रिक एव त्रैकालिक मिथ्यात्व का प्रतिपादन करते है।[१] विवरणकार ने मिथ्यात्व को अनिर्वचनीयता का ही समर्थक माना है। [२]

ब्रह्म साक्षात्कार के साधन को लेकर यह ब्रह्मदत्त से अलग मत रखते है ब्रह्मदत्त मनन को मुख्य साधक न मानकर श्रवण को ही ब्रह्मसाक्षात्कार का साधन माना है।[३]

विमुक्तात्मा (१२००ई०)

विमुक्तात्मा किसी प्रस्थान विशेष से सम्बन्धित नही है। इनकी प्रमुख कृति 'इष्ट सिद्धि' है जो अद्वैत वेदान्त की एक मौलिक कृति है। विमुक्ता की तिथि विवाद ग्रस्त है। किन्तु उपलब्ध साक्ष्यो के आधार पर सिद्ध होता है कि यह १२वीं शती के बाद के नही हो सकते क्योकि रामानुज ने अपने ग्रन्थ मे 'इष्टसिद्धि' का उद्धरण दिया है और यामुनाचार्य (११००ई०) है।वे भी इष्ट सिद्दि की महत्ता को स्वीकार किया है। अत इनका समय १०५० ई० के पहले होना चाहिये। आनन्दबोध विमुक्तात्मा के शिष्य थे। प्रो० सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त विमुक्तात्मा की तिथि १२०० ई० मानते है।

इष्टसिद्धि अद्वैतवेदान्त का एक प्रकरण ग्रन्थ हैं। उस पर ज्ञानोत्तम ने विवरण नाम की टीका लिखी है। इष्टसिद्धि मे आठ अध्याय है। इन अध्यायो के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि विमुक्तात्मा का इष्ट माया का विवेचन करना है। प्रतिपाद्य माया

---

[१] प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिकनिषेध प्रतियोगित्वम्। स्वनिष्ठ निरवच्छिन्न प्रकारता निरुपित निशेष्यता समानाधिकरणात्यन्ता भाव प्रतियोगित्वम् मिथ्यात्वम्।
– Lights on Vedanta P- 181 से उद्धत प्रकाशात्मा का मत।
[२] पञ्चपादिका विवरण पृ० १५६ (Govt Oriental Manuscripts Library Madras 1958)
[३] पञ्चपादिका विवरण पृ० १०४–१०५

की सिद्धि के लिए विविध भ्रम सिद्धान्तो का खण्डन करके अनिर्वचनीय ख्याति की स्थापना करते है। इसकी सिद्धि मे विमुक्तात्मा ने लिखा है– 'सत्वे न भ्रान्तिबाधौ स्ता नासत्त्वे ख्यातिबाधकौ। सद्सदभ्याम् निर्वाच्या विद्या वेद्यैस्सह भ्रमा ।।'[४] उन्होने लिखा है कि रज्जु सर्प अथवा शुक्ति–रजत मे सर्प अथवा रजत सत नही हो क्योकि उसका ज्ञान से बाध हो जाता है असत् भी नही है क्योंकि उसकी (सर्प, रजत) प्रतीति होती है। अत सद्सद् से भिन्न अर्थात् अनिर्वाच्य है। अनिवर्चनीय ख्यातिवाद मे भ्रम के आवरण तथा विक्षेप दोनो पक्षो की व्याख्या हे। इसी कारण अविद्या निवृत्ति को पचम प्रकार मानते है। विमुक्तात्मा अपने ग्रन्थ के अन्त मे वर्ण्यविषय का उपसहार इस प्रकार करते है–

सर्वेष्ट परमानन्दो वेदान्तात्म प्रमाणक ।
इत्येषोऽर्थो विशेषेण मयेष्टो वेदमिन्वत ।। २७ ।।
अर्थश्चायम् निर्वाच्या यद्विद्या प्रसिध्यति।
व्ययचीरम विद्या तामत् इष्टार्थ सिद्धये।। २८ ।।

इस प्रकार मधुसूदन सरस्वती ने 'अद्वैतसिद्धि' मे इष्टसिद्धि का उल्लेख किया है।

श्री हर्ष (१२वी शताब्दी)

श्री हर्ष एक युगान्तकारी कवि एव दार्शनिक दोनो ही थे। इनका नाम अद्वैतवाद के इतिहास मे मील के पत्थर की तरह है। अद्वैतवेदान्त मे उन्होने एक क्रान्ति की है जिसके दो पहलू इतिहास प्रसिद्ध है–

१ उन्होने अद्वैतवेदान्त मे एक नये प्रस्थान की स्थापना की, जिसे बाध प्रस्थान कहा जाता है। उनका ग्रन्थ 'खण्डन–खण्ड खाद्य' इस प्रस्थान की बाइबिल है। इसके

[४] इष्टसिद्धि १/६

अन्य दार्शनिक चित्सुख और मधुसूदन सरस्वती है। जिनके ग्रन्थ क्रमश· तत्वप्रदीपिका (चित्सुखी) और अद्वैत सिद्धि है। खण्डनखण्डखाद्य चित्सुखी और अद्वैतसिद्धि बाध प्रस्थान के मूल ग्रन्थ है। इनमे से प्रत्येक के ऊपर टीकाए लिखी गयी है। इन सभी टीकाकारो को बाध प्रस्थान के अर्न्तगत रखा जाता है। इस प्रकार बाध प्रस्थान के दार्शनिको की सख्या अधिक है।

बाध प्रस्थान का मुख्य प्रयोजन है तर्कबुद्धि द्वारा अद्वैतवेदान्त की प्रतिरक्षा करना तथा उन सभी आपत्तियो का निराकरण करना जो अद्वैत विरोधी दार्शनिको ने समय–समय पर अद्वैतवाद पर लगाई थी।

२ श्री हर्ष का उद्देश्य 'खण्डन–खण्ड–खाद्य' मे वेदान्त के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना था। इसके प्रबल प्रतिपक्षी नैय्यायिक ही थे। उदयनाचार्य न्याय के अवतार माने जाते है। अत श्री हर्ष ने मुख्य रूप से इन्ही के मत का निराकरण किया और भारतीय दर्शन मे अद्वैत वेदान्त और न्यायदर्शन के बीच सघर्ष का सूत्रपात किया। स्वामी विद्यारण्य ने पञ्चदशो मे श्री हर्ष के कृतित्त्व का मूल्याकन करते हुए लिखा है–

निरुक्तावभिमान ये दधते तार्किकादय ।

हर्षमिश्रादिभिस्ते तु खण्डनादौ सुशिक्षिता।।

अर्थात् जो तार्किक (नैय्यायिक) वैशेषिक और मीमासक निरुक्त पर अभिमान करते है अथवा जो नैय्यायिकगण पदार्थो के लक्षण और व्याख्यान पर बल देते है, उनको श्री हर्ष इत्यादि दार्शनिको ने खण्डन खण्ड खाद्य मे अच्छी तरह से शिक्षित कर दिया है। अर्थात् उनके गर्व को चूर्ण कर दिया है।

इस प्रकार श्री हर्ष के दार्शनिक महत्व का सहजता से अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसे महान दार्शनिक का अवतरण कब, कहा हुआ तथा किन किन ग्रन्थो की रचना की, इसका प्रामाणिक विवेचन अपेक्षित है।

समय– श्री हर्ष के विषय में जानकारी हमे इनके ग्रन्थो से मिलती है। दार्शनिक शिरोमणि महाकवि श्री हर्ष की माता का नाम मामल्ल देवी तथा पिता का नाम महाकवि हीर था। इनको कुछ विद्वानो ने बगाल का, कुछ ने मिथिला का, तथा कुछ ने यू० पी० का बतलाया है परन्तु इनकी अपनी उक्ति से मालूम पडता है कि ये कन्नौज के थे। क्योकि श्री हर्ष के समय निर्धारण मे अन्त साक्ष्य तथा वाह्य साक्ष्यो से सहायता मिलती है। अन्त साक्ष्य मे श्री हर्ष की दो रचनाएं है– 'खण्डन खण्ड खाद्य' और 'नैषध चरितम्।' जिसमे उन्होने स्वयं थोडा परिचय दिया है। इन्होने लिखा है कि ये कन्नौज के राजा जयचन्द्र से विशेष आसन एव विशेष पानादि प्राप्त कर सम्मान प्राप्त किये थे।[१]

श्री हर्ष के 'विजय प्रशस्ति' नामक ग्रन्थ से पता चलता है, जो कन्नौज के महाराज विजयचन्द्र की प्रशसा मे लिखा गया था। अत श्री हर्ष महाराज विजयचन्द्र के समकालीन थे। महाराज विजयचन्द्र के लडके का नाम जयचन्द्र था जिनका राज्यकाल ११६६ ई० से ११९३ ई० तक माना गया है। श्री जयचन्द्र का ११८६ ई० का एक दानपत्र भी मिलता है जिससे उनका समय स्पष्ट निर्णीत हो जाता है।[२] अत श्री हर्ष का समय भी १२वी शताब्दी रहा होगा।

श्री हर्ष ने 'खण्डन खण्ड खाध' नामक अपने ग्रन्थ मे उदयन की 'लक्षणावली' मे दी गयी न्याय दर्शन की परिभाषाओ का खण्डन किया है। लक्षणावली की रचना १०वीं शताब्दी के अन्त मे हुयी थी जैसा कि उसकी पुष्पिका से ज्ञात होता है।[३] श्री हर्ष ने लक्षणावली के लक्षणो का खण्डन खण्ड खाद्य' मे प्रधान रूप से खण्डन किया है। इसके अनुसार श्री हर्ष उदयनाचार्य के परवर्ती सिद्ध होते है।

---

[१] ताम्बूलद्वयमासन च लभते य कान्यकुब्जेश्वरात। (खण्डन खण्ड खाद्य पृ० ७५४)
[२] देखिए– खण्ड पृ० ३ अच्युत।
[३] न्याय वार्तिक ता० के उपर उदयनाचार्य ने 'परिशुद्धि' नामक टीका लिखी है इन्होने अपने लक्षणावली ग्रन्थ का रचनाकाल इस प्रकार बताया है– तर्काम्बराङ्क प्रमितेष्वतीतेषु शकान्तत । वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधा लक्षणावलीम्।।

वाह्य साक्ष्या म गगशोपाध्याय न तत्वचिन्तामणि मे 'खण्डन खण्ड खाध' से कारिका का उद्धरण देकर कहा है– 'एतेन खण्डनकारमतमप्यपास्तम्' अर्थात् इससे खण्डनकार (श्री हर्ष) का मत भी खण्डित हो गया। इनका समय १३०० ईस्वी माना जाता है। अत श्री हर्ष को इनसे पूर्ववर्ती ही मानना पडेगा। अतेव श्री हर्ष का १२वी शताब्दी का समय ठीक सिद्ध होता है।

श्री बूलर ने श्री हर्ष क समय ११६६ से ११६३ ईस्वी तक का माना है। श्री के० टी० तैलग डा० बुलर के मत को नही मानते है, वे श्री हर्ष को ६वी या १०वी शताब्दी का मानते है।

सांयण माधव ने "शङ्करदिग्विजय" मे श्री हर्ष को श्री शङ्कराचार्य के समकालीन (७८८–८२० ई०) बताया है।

वाह्य तथा अन्त साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि हर्ष का समय ११५० ई० से ११६० ई० के बीच होना उचित प्रतीत होता है।

कृतियॉ– श्री हर्ष रचित ग्रन्थ अब तक दो प्राप्य है– खण्डनखण्डखाद्य तथा नैषधीय चरितम्। इन दोनो ग्रन्थो मे इनके अन्य रचनाओ का भी उल्लेख पाया जाता है। 'खण्डन खण्ड खाद्य' मे 'ईश्वराभि सन्धि' का उल्लेख कई स्थानो पर मिलता है।[1] शेष कई ग्रन्थो का उल्लेख नैषध मे पाया जाता है।[2] श्री हर्ष के कुछ ग्रन्थ मुख्य रूप से है–

१ नैषधचरितम् २ अर्णववर्णनम ३ शिवशक्ति सिद्धि ४ साहसाङ्कचम्पू ५ छन्द प्रशस्ति ६ विजय प्रशस्ति ७ ईश्वराभिसन्धि ८ खण्डन खण्ड खाद्यम् आदि।

इसमे 'खण्डन खण्ड खाद्यम्' और नैषध' अनुपम ग्रन्थ है। खण्डनकार 'खण्डन' में नैषधचरित का और 'नैषध' मे खण्डन का उल्लेख करते है। इससे सिद्ध होता है कि

---

[1] खण्डन अच्युत पृ० ३६ ५० ८५ आदि।

[2] नैषध पृ० ६/१६० 18/149 22/149 17/122 5/138, 7/110

दोनो ग्रन्थो की रचना एक ही समय मे हुई है। जिस प्रकार श्री हर्ष की काव्य मे लोकोत्तर प्रतिभा है उसी प्रकार दर्शन मे भी है। इनके विषयपद लालित्य को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। इसके सम्बन्ध मे– "उदिते नैषधे काव्ये क्व माघ क्व च भारवि ।" यह उक्ति अक्षरश सत्य है।

खण्डनखण्डखाद्य

'खण्डनखण्डखाद्य' के खण्डनखण्ड, खण्डखाद्य, खाद्यखण्डन तथा खण्डन आदि नाम प्रचलित है। इसका एक नाम 'अनिर्वचनीयता सर्वस्व' भी है। खण्डन खण्ड खाद्य का अर्थ है–

(अ) पदार्थादि खण्डनस्य खण्डया खाडसार अर्थात् जिस ग्रन्थ के अध्ययन एव अध्यापन करने वाले को पदार्थादि खण्डन रूप खाड के समान माधुर्य रस का अनुभव हो वह 'खण्डन खण्ड खाद्य' है।

(ब) 'खण्डन रूप यत्खण्डखाद्य तत्खण्डन खण्डखाद्य नाम ग्रन्थ' इस व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ है वैद्यकशास्त्र मे 'खण्डखाद्य' पाक विशेष का नाम है। जिस प्रकार रोगो को दूर करके रोगी मे बल एव पुष्ट्यादि का हेतु बनता है, उसी प्रकार यह 'खण्डन' ग्रन्थवादियो के मतो का अक्षरश खण्डन करने मे समर्थ होने की योग्यता उत्पन्न करता है। इस ग्रन्थ का यही अर्थ उचित प्रतीत होता है। खण्डनखण्डखाद्य ग्रन्थ मे चार परिच्छेद है। इसमे शून्यवाद तथा अद्वैतवाद का विवेचन कर दोनो मे परस्पर भेद का निरूपण किया है। फिर अद्वैत का साधन और भेद का खण्डन किया है। श्री हर्ष के ग्रन्थ निर्माण का प्रयोजन तत्व निर्णय और विजय बतलाते हुए बाद, जल्प और वितण्डा शास्त्रार्थ के तीनो प्रकारो तथा शून्यवाद अद्वैतवाद व भेदभाव सभी मे खण्डनोक्त युक्तियों का एक सा उपयोग है, भूमिका को समाप्त करते हुए बतलाया है।

खण्डन की टीकाए

१३वी शदी से लेकर १६वीं शदी तक 'खण्डनखण्डखाद्य' पर अनेक टीकाए लिखी गयी है। उनमे से निम्न लिखित टीकाए उल्लेख योग्य है–

टीका का नाम	लेखक का नाम
खण्डन खण्डनम्	परमानन्द
खण्डन मण्डनम्	भवनाथ द्वितीय
खण्डन दीक्षित	रघुनाथ शिरोमणि
खण्डन प्रकाश	वर्धमान
विद्याभरणी	विद्याभरण
विद्यासागरी	आनन्दपूर्ण विद्यासागर
खण्डन टीका	बलभद्र मिश्र पुत्र पद्मनाभ पण्डित
आनन्दवर्धनी (शङ्करी)	शङ्कर मिश्र
खण्डन दर्पण	शुभ शङ्करमिश्र
खण्डन महातर्क	चरित्र सिह
खण्डन खण्डनम्	प्रगल्भ मिश्र–खण्डन दर्पण
शिष्य हितैषिणी	पद्मनाभ
भाव दीपिका	चित्सुखकृत
खण्डन कुठार	गोकुलनाथ उपाध्याय
खण्डन साद्योद्धार	वाचस्पति मिश्र द्वितीय
खण्डनगर्त प्रदर्शनी	साधु मोहन लाल

इन व्याख्याओ मे शङ्करी अत्यन्त प्रसिद्ध है। किन्तु यह केवल तात्पर्य मात्र का प्रकाशन करती है, पूरी व्याख्या प्रस्तुत नही करती है, जिससे पूरा–पूरा लाभ पाठक को

नही हो पाता है। उसके बारे मे स्वय टीकाकार शड्कर मिश्र कहते है कि इसमे खण्डन खण्ड खाद्य की कठिन गुत्थियॉ खोली गयी है—

"ग्रन्थग्रथिविमोचनाय रचना वाचामिमं शाड्करी"

इन टीकाकारो मे गोकुल नाथ उपाध्याय तथा अभिनव वाचस्पति ने श्री हर्ष का स्पष्ट खण्डन किया और न्याय दर्शन को उनके खण्डन से मुक्त किया है। शड्कर मिश्र ने भी कही—कही खण्डन खण्ड खाद्य का खण्डन किया है अभेदवाद का तिरस्कार किया है और भेदसिद्धि की है। भेदरत्न प्रकाश नाम से उन्होने एक स्वतत्र ग्रन्थ भी लिखा है जिसमे भेदवाद को सिद्ध किया गया है। सर्वप्रथम उन्होने ही खण्डन खण्ड खाद्य के खण्डन सूत्रपात किया।

उपर्युक्त खण्डन खण्ड खाद्य के टीकाकारो को तीन कोटियो मे बाटा जा सकता है। पहली कोटि मे शड्कर मिश्र, गोकुल नाथ उपाध्याय तथा अभिनव वाचस्पति मिश्र आते है जिन्होने खण्डन खण्ड खाद्य का खण्डन करके न्यायदर्शन का पक्ष प्रस्थापित किये है। दूसरी कोटि मे चित्सुख, आनन्दपूर्ण, चिद्यासागर और साधु मोहनलाल जैसे अद्वैतवेदान्ती आते है। जिन्होने खण्डनखण्डखाद्य का समर्थन किया है। तीसरी कोटि मे नैरयायिक आते है जैसे भवनाथ, रघुनाथ भट्टाचार्य, रघुनाथ शिरोमणि, सूर्य नारायण शुक्ल, प्रगल्भ मिश्र आदि जिन्होने न्याय दर्शन का विकास अद्वैत वेदान्त की तरफ किया है और इसका आधार खण्डनखण्डखाद्य को बनाया है।

इस पुस्तक मे 'खण्डन' का प्रयोजन मुमुक्षुओ के लिए तत्व ज्ञान मे साधनभूत मनन बतलाकर ग्रन्थकर ने विजिगीषु रागी पुरुषो के लिए दिग्विजयरुप फल बतलाया है।

इस ग्रन्थ मे खण्डन मे 'प्रमाण प्रमेय सशय प्रयोजन' इत्यादि प्रथम न्याय सूत्र का ही खण्डन किया है इसमे वादी मुख्य रूप से नैय्यायिक है इसमे प्रतिवादी

खाण्डनिक (वैतण्डिक) है। ये प्रमाणादि की सत्ता नही मानते है। इनका अपना कोई पक्ष नही होता है। खण्डन मात्र करने के लिए ये कथा मे प्रवृत्त होते है। खण्डनकार की खण्डन मे 'प्रवृत्ति' प्रपञ्चशङ्कर मे अनिर्वचनीयता को सिद्ध करती है। यह तब तक नही हो सकता था जब तक कि प्रपञ्च को सत्य मानने वाले प्रबल द्वैती नैय्यायिको द्वारा प्रमाण—प्रमेय की की गई व्याख्या का खण्डन न हो। इसलिये खण्डन को 'अनिर्वचनीयता सर्वस्व' भी कहते है। 'अनिर्वचनीयतावाद' वेदान्त का मुख्य सिद्धान्त है इसके बिना वेदान्त प्रतिपाद्य अद्वैतब्रह्म की सिद्धि गगनकुसुम के समान है किन्तु यह भी नही है कि यह प्रपत्र्च को शशविषाणादि के समान अलीक मानता है। हा इसे वह मिथ्या अवश्य मानता है। तुच्छ और मिथ्या मे अन्तर है तुच्छ तो वह है जिसकी प्रतीति कहीं न हो रही हो जैसे गगन कुसुम, शशविषाण, वन्ध्यासुत आदि। प्रपञ्च ऐसा नही है इसकी प्रतीति होती है। कालान्तर मे जब बाध होता है तब मिथ्यात्त्व की प्रतीति होती है। अन्तर इतना है कि रज्जूसर्प मे भ्रम का ससार दशा मे ही बाध होता है और ससार रूपी भ्रम का श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा आत्मसाक्षात्कार के बाद। अत· संसार दशा मे प्रपञ्च की सत्ता मानी जाती है। इस प्रकार प्रत्येक लक्षण को गलत सिद्ध करके श्री हर्ष ने वास्तव मे यह प्रतिपादित किया है कि जो सत् है उसका लक्षण या निर्वचन नही हो सकता है। उन्होने अनिर्वचनीयतासार सर्वस्ववाद की स्थापना की है जो अद्वैतवाद का मुख्य प्रतिपाद्य है।

चित्सुखाचार्य (१२२० ई०)

चित्सुखाचार्य का अवतरण दर्शन मे ऐसे समय मे हुआ था जब दो प्रबल धाराए अद्वैत मत को हानि पहुंचा रही थी। एक ओर गगेश आदि नैयायिक न्यामत को सर्वोच्चता की ओर ले जा रहे थे तथा दूसरी ओर वैष्णव आचार्य खुलकर अद्वैतमत का खण्डन कर रहे थे। ऐसे समय मे अद्वैतमतावलम्बी चित्सुखाचार्य ने न्याय दर्शन का

खण्डन करते हुए अद्वैत मत का समर्थन किया। अद्वैत मत का विश्लेषण अपने तीन ग्रन्थो तत्वप्रदीपिका, न्याय मकरन्द टीका, और खण्डनखण्डखाद्य की टीका मे किया हे। तत्वप्रदीपिका का ही दूसरा नाम चित्सुखी है।

आचार्य चित्सुख का समय श्री हर्ष के बाद का है क्योकि उन्होंने खण्डन खण्ड खाद्य पर भावदीपिका नामक टीका लिखी है। माध्ववेदान्ती जयतीर्थ (१३६५–१३८८) ने इनका उल्लेख किया है। आनन्दबोध भट्टारक जिनका समय १२०० ई० है चित्सुख के पूर्ववर्ती थे क्योकि चित्सुख ने उनके दो ग्रन्थो पर टीकाए लिखीं है। इससे सिद्ध होता है कि चित्सुख का समय १२२० से १२२४ ई० है। वे कल्पतरुकार अमलानन्द के समकालीन प्रतीत होते है। चित्सुख के प्रधान शिष्य सुखप्रकाश थे जो अमलानन्द के गुरु थे।

शङ्कर परवर्ती अद्वैत वेदान्तियों मे साक्षी को लेकर भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण था। आचार्य चित्सुख साक्षी एव प्रमाता मे भेद मानते है। वे साक्षी को स्वतत्र एव द्रष्टा नात्र मानते है। इसके विपरीत प्रमाता, आचार्य चित्सुख के अनुसार ज्ञाता है तथा ज्ञान के साधनो के कार्य के अधीन है।[1]

आचार्य चित्सुख दुःख को सुख का विरोधी मानते है। इसलिये मानते है कि दुःख का विनाश स्वत. पुरुषार्थ न होकर केवल सुख ही स्वत पुरुषार्थ है। चित्सुखाचार्य मानते हे कि दुखाभाव स्वतत्र रूप से पुरुषार्थ नहीं है, प्रत्युत् सुखाभिव्यक्ति का अग मात्र है। क्योकि सुख को यदि दुःखाभाव का अग मान लिया जाय तो उसे दुःखाभाव का उत्पादक नही माना जा सकता और न तो उसका अभिव्यजक ही माना जा सकता है।[2]

---

[1] तत्वप्रदीपिका (चतुर्थ परिच्छेद) पृ० ३८१–३८२ इस पर देखिये नयन प्रसादिनी टीका (निर्णयसागर बम्बई १६३१)

[2] नात्र दुःखाभाव स्वतत्रताया पुरुषार्थ सुखाभिव्यक्ति शेषत्वात्। न च विपरीत वृत्ति प्रसगा विकल्पा सहत्वात्। कि सुख दुःखा भावस्योत्पाद मुताभिव्यजकम् नोम यथापि। (तत्व प्रदीपिका चतुर्थ परिच्छेद)

अमलानन्द (१३वी शताब्दी)

अमलानन्द भामती प्रस्थान के मुख्य दार्शनिक है। आचार्य अमलानन्द अद्वैतवेदान्त के पूर्ण समर्थक तथा सूक्ष्मपर्यपेक्षी है। इनके गुरु का नाम अनुभवानन्द था। इनके तीन ग्रन्थ प्राप्त होते है– वेदान्तकल्पतरु, शास्त्रदर्पण, पञ्चपादिका दर्पण जिसने अद्वैत वेदान्त के विकास मे अतिमहत्वपूर्ण योगदान दिया है।

भामती पर अमलानन्द या व्यासाश्रम (१२५० ई०) ने 'कल्पतरु' नाम की टीका लिखी। इस टीका पर अप्पयदीक्षित (१५२०–१५६३) ने 'कल्पतरुपरिमल' तथा वैद्यनाथ ने 'कल्पतरुमञ्जरी' की रचना की।

अमलानन्द दृष्टिसृष्टिवाद सिद्धान्त के पोषक थे। इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त प्रपत्र्च शून्य ब्रह्म की अवगति के उपाय के रूप मे ही श्रुतियो मे सृष्टि और प्रलय का विवेचन स्वीकार किया गया है। यद्यपि श्रुतियो मे सृष्टि की परमार्थिकता स्वीकृत नही है। यदि आरोप न्याय से प्रतिपादन हुआ है तो अपवाद न्याय से खण्डन भी हुआ है। अमलानन्द के मत मे सृष्टि प्रतिपादक श्रुतियो का तात्पर्य वस्तुत ब्रह्मात्मैक्य मे होने से सृष्टि के प्रतिपादन मे उसका अभिप्राय कदापि नहीं है।[1] दृष्टिसृष्टिवादी के मत मे सृष्टि तात्विक न होकर दृष्टिकालिक ही है– 'दृष्टि सम–समया विश्वसृष्टिरिति दृष्टिसृष्टिवाद ।

ब्रह्मदत्त एव मण्डन मिश्र प्रभृति प्रसख्यान को ब्रह्मसाक्षात्कार का कारण मानते है। अमलानन्द मानते है कि वेदान्त वाक्यो से जन्य ज्ञान तथा इसके अभ्यास से होने वाली अपरोक्ष बुद्धि तथा उससे होने वाली प्रभा की दृढता से (अविप्रतिपन्न प्रामाण्य होने के कारण) भ्रम नही होता है। इसलिये परत प्रामाण्य भी प्रसक्त नही होता है। क्योकि

---

[1] श्रुतीना सृष्टि तात्पर्य स्वीकृत्ये दमिहेरितम्।
ब्रह्मात्मैक्यपरत्वात्तु तासा तन्नैव विद्यते।। (शास्त्रदर्पण– १/४/४) पृ० ८७ (वाणी विलास प्रेस श्रीरगम् १६१३)

अपवाद के निरास के लिये मूलप्रमाण की शुद्धि की अपेक्षा की गई है।[1] इसलिये अमलानन्द परिसख्यान जन्य ब्रह्म साक्षात्कार को प्रभा रूप स्वीकार करते थे। शकराचार्य एवं वाचस्पति मिश्र जीव की ईश्वर भावापत्ति को मानते है।[2] वही अमलानन्द माया प्रतिबिम्बित ईश्वर की मुक्तो द्वारा प्राप्यता नही स्वीकार करते।[3] इस प्रकार अमलानन्द अद्वैतवेदान्त सूक्ष्म पर्यवेक्षी दार्शनिक है।

विद्यारण्य (१३५० ई०)

विद्यारण्य विवरण प्रस्थान के मुख्य अद्वैतवादी दार्शनिकों मे एक है विद्यारण्य का पूर्वाश्रम अथवा गृहस्थाश्रम का नाम माधवार्च था। इनके नाम को लेकर विद्वानो मे मतैक्य नहीं है क्योंकि कुछ विद्वान इनका दूसरा नाम भारती तीर्थ भी मानते है।[4] डा० वीरमणि प्रसाद उपाध्याय ने भारतीतीर्थ को पचदशी का लेखक कहा है।[5] डा० टी० एम० पी० महादेवन मानते है। कि स्वामी विद्यारण्य और भारती तीर्थ दो व्यक्ति नही, किन्तु एक ही व्यक्ति है।

किन्तु उल्लेखनीय है कि माधवाचार्य ने अपने ग्रन्थ 'जैमिनीय न्यायमाला' की टीका मे अपने गुरु का नाम भारती तीर्थ उद्धत किया है अत पृथक मानना समुचित होगा।[6] रामकृष्ण, जिन्होने पचदशी पर व्याख्या लिखी है, वे विद्यारण्य के शिष्य थे। स्वामी विद्यारण्य शृगेरीमठ के शङ्कराचार्य थे ये वेदभाष्य प्रणेता सायण के बडे भाई थे। माधव के नाम से उन्होने 'सर्वदर्शन सग्रह' लिखा है जिसमे क्रमश १ चार्वाक दर्शन

---

[1] वेदान्तवाक्य जज्ञानभावनाजा परोक्षधी ।
मूलप्रमाण दाढ्र्येन नभ्रमत्व प्रपद्यते।।
न च प्रामाण्य परतेस्त्वापात्तिरस्तु प्ररुच्यते।
अपवाद निरासाय मूल शुद्धलनुरोधनाद्।।– सि० लेश सग्रह पृ० ४७० से उद्धत कल्पतरु

[2] ब्र०सू० शा० भा० एव भामती ४/४/३ ४/४/६ ४/४/७ तथा देखिये सि० ले० सग्रह पृ० ५५३

[3] सिद्धान्तलेश सग्रह पृ० ५५३

[4] कल्याण – वेदान्ताक पृ० ६५२

[5] Lights of Vedanta P- 111, 116

[6] कल्याण – वेदान्ताक, पृ० ६५२

लेश सग्रह' मे माना है कि 'ध्यानदीप' प्रकरण भारतीतीर्थ कृत है। किन्तु निश्चलदास ने वृत्तिप्रभाकर मे कहा है कि विद्यारण्य प्रारम्भ के दश प्रकरणो के लेखक है। और अन्तिम पॉच प्रकरणो के लेखक भारतीतीर्थ है। सम्प्रति साधारण जनो द्वारा सम्पूर्ण पञ्चदशी के लेखक स्वामी विद्यारण्य ही माने जाते है परन्तु यह मत भ्रामक है।

सिद्धान्त

ईश्वर–जीव सम्बन्ध– अद्वैत वेदान्त के अन्तर्गत ईश्वर और जीव के सम्बन्ध मे सुरेश्वराचार्य का आभासवाद, पद्मपादाचार्य एव प्रकाशात्मा का प्रतिबिम्बवाद एव वाचस्पति मिश्र का अवच्छेदवाद मुख्य सिद्धान्त है। विद्यारण्य उक्त सिद्धान्तो मे से प्रतिबिम्बवाद के अनुयायी प्रतीत होते है।[१]

विद्यारण्य मानते है कि माया मे प्रतिबिम्बित चेतन को ईश्वर एव अविद्या मे प्रतिबिम्बित चेतन को जीव कहते है। माया शुद्ध सत्वमयी है अविद्या मालिन सत्वमयी तृप्तिदीप मे कहा गया है कि जीवत्व की उपाधि अन्त करण है। साहित्य है और ब्रह्म की उपाधि अन्त करण साहित्य है।

माया

माया का त्रिविध वर्णन पञ्चदशी मे बडे सुन्दर ढग से किया गया है। प्रत्यक्षत वह वास्तवी है। अर्थात् वह अनिर्वचनीय है और श्रौतबोध से तुच्छ या अलीक है।

तुच्छानिर्वचनीय च वास्तवी चेत्यसौ त्रिधा।
ज्ञेया माया त्रिभिर्वोधे श्रौतयौक्तिकलौकिकै ।। चित्रदीप १३० ।।

आत्मा

पञ्चदशी मे भी वेदान्त के समान अध्यारोप और अपवाद का प्रयोग किया गया है। और इसके पूरक के रुप मे अन्वय–व्यतिरेक प्रणाली को भी प्रयुक्त किया गया है।

---

[१] T M P Mahadevan- The Philosophy of Advaita, P- 219 (Ganesh & Co Madras, 1957)

यथा– आत्मा पञ्चकोशव्यतिरिक्त ह, इस अध्याराप–अपवाद द्वारा सिद्ध किया गया है। तत्व विवेक नामक प्रथम प्रकरण मे आत्मा को अन्वय–व्यतिरेक के माध्यम से सिद्ध किया गया है–

अन्वयव्यतिरेकाभ्या पञ्चकोशविवेकत ।
स्वात्मान तत् उद्धृत्य पर ब्रह्म प्रपद्यते।। तत्वविवेक ३७)

साक्षी

विद्यारण्य ने पञ्चदशी के कूटस्थ दीप, नाटकदीप एव चित्रदीप प्रकरण के अन्तर्गत साक्षी का वर्णन किया गया है। कूटस्थदीप प्रकरण के अन्तर्गत साक्षी की व्याख्या इस प्रकार है– स्थूल और सूक्ष्म शरीर का अधिष्ठान भूत कूटस्थ चैतन्य अपने अवच्छेदक उक्त दोनो शरीरो का साक्षात् दृष्टा कर्तृत्व आदि विकारो से शून्य होने के कारण साक्षी है।[१]

नाटक दीप प्रकरण के अन्तर्गत साक्षी का विवेचन नृत्यशाला मे स्थित दीपक के दृष्टान्त के आधार पर किया गया है। जिस प्रकर दीपक स्वम्यादि के अभाव मे भी सभी को समान रूप से प्रकाशित करता है उसी प्रकार साक्षी भी अहकार, बुद्धि तथा विषयो को प्रकाशित करता है और अहकारादि के अभाव मे भी सुषुप्ति अवस्था मे पूर्ववत् साक्षी को भी प्रकाशित करता रहता है। [२]

चित्रदीप प्रकरण मे साक्षी का विवेचन आकाश के दृष्टान्त के आधार पर दिया गया है।[3] ब्रह्म–जीव–ईश्वर के सम्बन्ध को बताते हुये चित्रदीप मे कहा गया है–

कूटस्थो ब्रह्म जीवेशावित्येव चिच्चतुर्विधा।
घटाकाश महाकाशौ जलाकाशाभ्रखे यथा।।

---

[१] सिद्धान्तलेश सग्रह, पृ० १८०
[२] पञ्चदशी– १०/११ १२
[3] पञ्चदशी– ६/१८ २२

कूटस्थ दीप मे कूटस्थ चैतन्य को ही साक्षी कहा गया है–

अन्त करण तद्‌वृत्तिसाक्षीत्यादावने कथा।

कूटस्थ एव सर्वत्र पूर्वाचार्योर्विनिश्चत ।।

निर्गुण उपासना का भी वर्णन ध्यान दीप मे किया गया है।[1] निर्गुण ब्रह्म की उपासना सवादी भ्रम है और सगुण ब्रह्म की उपासना विसवादी भ्रम है।

वास्तव मे पञ्चदशी की भाषा सरल, सुबोध और प्राञ्जल है। यह अद्वैतवेदान्त का प्रवेशद्वार रूपी ग्रन्थ ही नहीं वरन् आप्ततायुक्त ग्रन्थ भी है।

---

[1] आनन्दाभिस्थूलादिभिश्चात्मा च लक्षित । आनन्दैकरस सोऽहमस्मीत्येव मुपासते ।। (ध्यानदीप– ७३)

शङ्करानन्द (१४वीं शताब्दी)

प्रसिद्ध पचदशी के लेखक स्वामी विद्यारण्य है, और शड्करानन्द विद्यारण्य के पूज्य गुरु थे। शड्करानन्द द्वारा ब्रह्मसूत्र पर ब्रह्मसूत्र दीपिका नामक टीका लिखी गयी हैं। उन्होने आत्मपुराण नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की भी रचना की थी। इसके साथ ही लगभग १०८ उपनिषदो की टीका लिखकर अद्वैत वेदान्त का विश्लेषण किया है।

आनन्दगिरि (१५वी शताब्दी)

आनन्दगिरि अद्वैतवाद के समर्थक रहे है तथा शड्करोत्तर अद्वैतवादियो मे मुख्य दार्शनिक आचार्य है। इनका दूसरा नाम आनन्द ज्ञान भी है। आनन्दगिरि ने शड्कराचार्य के भाष्यग्रन्थो पर टीकाए लिखकर अद्वैतवाद के विभिन्न सिद्धान्तो का विवेचन करते हुये शाड्कर मत का ही समर्थन किया है। आनन्द गिरि द्वारा वेदान्तसूत्र भाष्य पर 'न्याय निर्णय' नामक प्रसिद्ध टीका लिखी गयी है। इनके द्वारा ही 'शड्करदिग्विजय' नामक ग्रन्थ की रचना की गयी है। जिसके द्वारा शड्कराचार्य के जीवन एव दार्शनिक सिद्धान्तो को जानने मे सहायता मिलती है।

अखण्डानन्द (१५वी शताब्दी)

१५वी शताब्दी मे ये अद्वैतवाद के मुख्य आचार्य थे। ये अखण्डानुभूति के शिष्य थे। १२वी शताब्दी मे प्रकाशात्मयति रचित पञ्चपादिका पर इन्होने तत्वदीपन नामक एक प्रामाणिक टीका की रचना किये। इस ग्रन्थ मे अद्वैत वेदान्त का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। इन्होने वाचस्पति मिश्र की 'भामती' नामक ग्रन्थ पर 'ऋजुप्रकाशिका' नामक टीका की रचना किये है।

श्री अप्पय दीक्षित (१५५० ई० १६२२ ई०)

श्री अप्पय दीक्षित सुविख्यात मनीषियो मे से एक है। सुप्रामाणिक साक्ष्यो के अनुसार उन्होने ऐसी व्युत्पन्न वश परम्परा मे जन्म लिया जिसमे ज्ञानगरिमा का स्रोत अनवरत् प्रवाहित हो रहा था। उनके पितामह 'न्याय चिन्तामणि' के प्रणेता श्रीमद् आचार्य दीक्षित थे। जिन्हे वक्षस्थलाचार्य दीक्षित भी कहा जाता है। आचार्य दीक्षित की दो पत्नियों मे 'तौतारम्भा' नामक पत्नी से चार पुत्र हुये जिनमे से ज्येष्ठ रगराजध्वरि थे। रगराजध्वरि के दो पुत्रो मे हमारे अप्पय दीक्षित है। इनका सकेत अप्पय दीक्षित ने 'न्यायरक्षामणि' के पद्यो मे किया है–

आसेतु बन्धततमा च तुषार शैला इति प्रथिताभिधानम्।

अद्वैतचित्सुख महाम्बुधिमग्नभाव अस्मत्पितामहम् शेष गुरु प्रपद्ये।।

इतिहासविदों ने अप्पय दीक्षित का समय १५२० से १५६३ ई० तक निश्चित किया है। प० अप्पय दीक्षित का जन्म कान्ची के समीप 'अडपप्पल गाव' मे हुआ था। अभी तक उस गांव मे इनके कुछ वशज विद्यमान है। रगराजध्वरि जो अप्पय दीक्षित के पिता थे वे बहुत बडे विद्वान थे। 'सिद्धान्त कौमुदी' के विख्यात रचयिता भट्टोजीदीक्षित ने भी 'सिद्धान्त कौमुदी' की रचना के बाद दक्षिण मे जाकर अप्पय दीक्षित से पढा था। इसके बाद उन्होने "तत्त्वकौस्तुभ" नामक ग्रन्थ लिखा है। जिसमे अपने गुरु अप्पय दीक्षित को ही प्रणाम किया है। अप्पय दीक्षित ने अपने जीवन काल मे १०० से भी अधिक ग्रन्थो की रचना किये थे। ऐसा प्रमाण मिलता है। क्योकि राम के आगे "चतुरधिकशतप्रबन्ध निर्वाहकाचार्य" अर्थात् एक सौ चार ग्रन्थ के निर्माण करने वाले आचार्य, यह उपाधि लगी हुई कही–कही मिलती है। दीक्षित जी का सब शास्त्रों मे अप्रतिहत पाडित्य था और उनकी प्रतिपादन शैली विलक्षण थी। ये परम आस्तिक थे। इनका गोत्र भारद्वाज था। ये ७२ वर्ष की आयु तक ही जीवित रहे।

"सिद्धान्त लेख सग्रह" वेदान्त दर्शन का एक बडा उपयोगी ग्रन्थ है। इसमे चार परिच्छेद है यह गद्य मे है अद्वैत वेदान्तियो मे जो मतभेद है उसका वर्णन है वेदान्त के सम्प्रदाय को समझने में सहायता मिलती है क्योकि इसके यथावत् अध्ययन करने पर अद्वैत वेदान्त शास्त्र का ऐसा कोई भी मत अज्ञात नही रह जाता है जो इसमे न आया हो।

यद्यपि अप्पय दीक्षित के सभी ग्रन्थो के नाम ज्ञात नहीं हो सके है गुरुपरम्परा एव अन्याय ग्रन्थो से जितने नाम हमे उपलब्ध हो सके है उनका निम्नलिखित प्रकार से उल्लेख किया है यथा–

कुवलयानन्द, चित्रमीमासा, वृत्तिवार्तिक, नामसग्रहमाला, नक्षत्रवादावली, प्राकृतचन्द्रिका, चित्रपुट, विधिरसायन, सुखोपयोजिनी, उपक्रम पराक्रम, परिमल, न्यायरक्षामणि, सिद्धान्त लेख सग्रह, न्याय मुक्तावली, न्यायमञ्जरी, मणिदीपिका, मणिमलिका, रत्नत्रय परीक्षा, शिखरिणी माला, शिवतत्त्व विवेक, ब्रह्मतर्कस्तव, शिवकर्णामृत, रामायण तात्पर्य सग्रह, भारत तात्पर्य सग्रह, शिवाद्वैत निर्णय, शिवार्चन चन्द्रिका, बालचन्द्रिका, शिवध्यान पद्धति, आदित्यस्तव रत्न, मध्यतन्त्र, मुखदर्शन और मध्यमत विध्वसन आदि।

अप्पय दीक्षित यद्यपि 'परिमल' के कारण भानती प्रस्थान के दार्शनिक है किन्तु नव्य वेदान्त की स्थापना मे भी अधिक योगदान किया। श्री बलदेव उपाध्याय ने "सस्कृत वाड्गमय का बृहद इतिहास"[1] मे अप्पय दीक्षित के योगदान का वर्णन किया है।

---

[1] प० बलदेव उपाध्याय– सस्कृत वाङगमय का वृहद इतिहास (दशमखण्ड) वेदान्त– पृ० १३६

(१) सर्वप्रथम उन्होने शैवमत और वैष्णव मत को एक करने का प्रयास किया अथवा कम से कम श्रीकण्ठ भाष्य पर "शिवाकर्मणिका" नामक टीका लिखकर तमिलनाडु के शैवमत को अद्वैतमत के सन्निकट लाने का प्रयत्न किया।

(२) उन्होने रामानुज के मतो का खण्डन करने वाले ग्रन्थ रामानुजशृगभग लिखकर बाध प्रस्थान को महत्व दिया।

(३) अन्त मे उन्होने 'मध्वतन्त्र मुखमर्दन' लिखकर मध्व वेदान्त का खण्डन किया और बाध प्रस्थान की जो धारा माध्व वेदान्त के खण्डन मे लगी थी उसको परिपुष्ट किया। इन कारणो से उनको बाध प्रस्थान और नव्य वेदान्त के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

'मध्वतन्त्र मुखमर्दन' मे कुल ६६ श्लोक है इस पर ग्रन्थ पर अप्पय दीक्षित ने 'मध्वमतविध्वसनम्' टीका गद्य मे लिखी है। इस ग्रन्थ मे अप्पय दीक्षित ने यह दिखलाया है कि माध्वमत के लोग वैदिक मर्यादा का अपमान किये है।[1]

अप्पय दीक्षित ने अपने इस ग्रन्थ मे मध्व के ब्रह्म सूत्र भाष्य के प्रथम पाच अधिकरणो का खण्डन है। अपने खण्डन का निष्कर्ष उन्होने ६३वे श्लोक मे दिया है जो इस प्रकार है–

आद्रियध्वमिदमध्वदर्शन व्यध्वन त्यजत् मध्वदर्शनम्।

शाङ्कर अजत शाश्वत मत साधव स इह साक्ष्युमाध्व ।।

इससे तात्पर्य है कि अभेद श्रुतियो का प्राबल्य भेद श्रुतियो से अधिक होता है। माध्व वेदान्त का मन्तव्य है कि स्वय विष्णु अन्य अर्थ के बावजूद अनन्य कहे जाते है अर्थात् समस्त भेदो को मानते हुये भी माध्व वेदान्ती एकेश्वरवादी है।[2]

---

[1] तथाप्यानन्द तीर्थीय मतमग्राह्यमेव न । यत्र वैदिक मर्यादा भूयस्था कुलता गता।। (मध्वतत्र मुखमर्दन–२)

[2] अनन्योऽप्यन्य शब्देन तथैको बहुरूपवान्। प्रोच्यते भगवान विष्णुरैश्वर्यात्पुरुषोत्तम ।। (माध्वमत विध्वसन पृ० ६०)

इसी न्याय के अनुसार अप्पय दीक्षित अद्वैतवाद को सिद्ध करते है वे कहते है कि भेद रहने पर भी भगवान् अपनी शक्ति के कारण एक है और उसके अभेद मे कोई दोष नही है।

प्राबल्य भवतोऽयभेद वचसा भेदश्रुतिभ्यो मतम्।
नो चेदन्नमयादयो वद कथ भिन्न भवेयुर्न ते।।
भेदे सत्यपि युज्यते हि भगवच्छक्त्यैव निर्दोषता।
शक्त कि न स एक एव बहुधा भिन्नोहरि कीडितुम्।।

(मध्वतत्र मुखमर्दन, श्लोक ६०)

सिद्धान्त लेशसग्रह के प्रणेता अप्पय दीक्षित का नव्य वेदान्त मे एक अद्वितीय महान योगदान है। सिद्धान्त लेश सग्रह अद्वैतवेदान्त का एक प्रकार का इतिहास है। शङ्करोत्तर अद्वैतवेदान्त को समझने के लिये बहुत लाभदायक है।

अप्पय दीक्षित श्रेष्ठ विद्वान होने के साथ एक लेखक तथा महान अद्वैत वेदान्ती थे। अलकारशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, पूर्वमीमासा, पूर्वोत्तरमीमाशा, काव्य, शैवमत, वेदान्त, शाङ्करमत, रामानुजमत और माध्वमत आदि पर उनकी अन्य रचनाए भी है जिसमे से लगभग ४५ रचनाओ का उल्लेख 'मध्वतत्र मुखमर्दन' की प्रस्तावना मे किया गया है।

श्री मधुसूदन सरस्वती ने अद्वैत सिद्धि मे अप्पय दीक्षित को सर्वतन्त्र स्वतत्र कहकर सम्मान दिया है 'सर्वतत्र स्वतन्त्रैर्भामतीकार कल्प तरुकार परिमलकारै।' सिद्धान्तलेश सग्रह की रचना १५४७ के बाद हुई थी और कनकाभिषेक १५८२ मे हुआ था। ये काशी मे भी कुछ दिन तक रहे थे वैसे इनका अधिकाश समय दक्षिण भारत मे चिदम्बर मे बीता। ये नृसिहाश्रम से बहुत प्रभावित थे। काशी मे प० जगन्नाथ अप्पय दीक्षित के विरोधी थे क्योकि 'सिद्धान्त कौमुदी' और मनोरमा के रचनाकर भट्टोजी

दीक्षित अप्पय दीक्षित के शिष्य थे और पडित राज के अपना ग्रन्थ 'मनोरमाकुचमर्दन' लिखकर भट्टोजी दीक्षित का विरोध किया।

कुप्पूस्वामी शास्त्री के अनुसार अप्पय दीक्षित का जन्म १५५३ ई० मे और देहान्त १६२६ मैं हुआ था।

मधुसूदन सरस्वती (१६०० ई०)

मधुसूदन सरस्वती कौत्तर काल के अद्वैत सम्प्रदाय के मुख्य आचार्यो मे से एक है। इनमे पूर्वज पडित श्रीराम मिश्र ईसा की १२वी शताब्दी मे सभवत बगाल के नवदीप मे आकर बस गये। इनके कुल मे उन्पन्न श्री पुरोदन पुरदराचार्य के चार पुत्र हुये– (१) श्री राम या श्री नाथ चूडामणि (२) कमलनयन या मधुसूदन गोस्वामी (३) यादव (४) वागीश गोस्वामी।

श्री रामाज्ञा पाण्डेय ने अपने वेदान्त 'कल्पलातिका' के अपने सस्करण मे मधुसूदन को जन्म से बगाली होना बताया है। श्री मधुसूदन को उनके पिता ने काव्य साहित्य एव व्याकरण पढाया। उन्होने श्रीराम तर्क वागीश से न्यायशास्त्र का गहन अध्ययन किया। उनके सहपाठी प्रत्यक्ष चिन्तामणि के टीकाकार नव्य नैरयायिक गदाधर भट्टाचार्य थे जब मधुसूदन सरस्वती नव्यदीप पहुंचे तब गदाधर भट्टाचार्य काप गये थे–

नवदीप समायते मधुसूदन वाक्यतौ।
चकम्पे तर्कवागीश कातरोऽभूद गदाधर ।।

मीमासा तथा वेदान्त के अध्ययन हेतु वे वाराणसी आकर रहे थे। काशी मे श्री रामतीर्थ जी से अद्वैतवेदान्त तथा श्री माधवसरस्वती से उन्होने मीमासाशास्त्र का अध्ययन किया।

'गीता शड्कर भाष्य' पर 'गीता निबन्ध' नामक ग्रन्थ लिखकर दिखाने पर श्री विश्वेश्वर सरस्वती ने उन्हे सन्यास की दीक्षा दिया। सन्यास के पश्चात वे मधुसूदन

सरस्वती कहलाये और काशी के चौसठी घाट पर अपने गुरु के साथ निवास करने लगें। यद्यपि सन्यास मार्ग मे जाने के पश्चात् उन्होने वेदान्त मत को अतिपुष्ट किया, तथापि वे कृष्ण भक्त थे और भक्ति को ही परम पुरूषार्थ मानते थे। उन्होने 'भगवद्भवितर सायन' ग्रन्थ मे भक्ति का अत्यन्त प्रौढ शास्त्रीय विवेचन किया है।

स्थितिकालः

श्री मधुसूदन सरस्वती का समय सोलहवी शती का पूर्वार्द्ध है। प० गोपीनाथ कविराज ने उनके समय के बारे मे तीन मत दिये है–

१ कुछ लोगो का मन्तव्य है कि इनका समय १५४० से १६२३ ई० के बीच है।

२ किन्तु कुछ अन्य लोग कहते है कि उनका समय १५५५ ई० से १६१५ई० तक थे।

३ अन्त मे कुछ लोग कहते है कि उनका समय १५७० से १६४० ई० के मध्य का है। वे गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। रामचरित मानस के बारे मे उनका यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है–

> आनन्दकानने काश्या तुलसी जङ्गमस्तरु।
> कविता कामिनी यस्य रामभ्रमर भूषिता।।

सम्राट अकबर का अर्थ सचिव टोडरमल मधुसूदन सरस्वती का मित्र था। उन्होने मधुसूदन सरस्वती का सम्मान अकबर के दरबार मे करवाय था। वहा उपस्थित सभी पण्डितो ने एकमत से स्वीकारा–

> वेत्ति पार सरस्वत्या मधुसूदन सरस्वती।
> मधुसूदन सरस्वत्या पार वेत्ति सरस्वती।।

अकबर का शासन काल १५५६ से १६०५ ई० तक है अत· मधुसूदन सरस्वती का समय सोलहवी शदी का उत्तरार्द्ध ज्ञात होता है।

व्यासतीर्थ के न्यायमृत ग्रन्थ का खण्डन उन्होने 'अद्वैतसिद्धि' ग्रन्थ मे किया है। अतः मधुसूदन सरस्वती का स्थितिकाल १६वी शदी का उत्तरार्ध और सत्रहवी का पूर्वार्ध माना जाता है। क्योकि उन्होने 'अद्वैतसिद्धि' मे श्री दीक्षित का उल्लेख 'परिमलकार' के रूप मे किया है।

शिष्यगण– १ श्री बलभद्र भट्टाचार्य। २ शेषकृष्ण पडित प्रसिद्ध वैयाकरण भट्टोजी दीक्षित के गुरु तथा शकराचार्य के सर्वसिद्धान्त सग्रह के टीकाकार तथा। ३ श्री पुरूषोत्तम सरस्वती उनके तीन विद्वान शिष्य हुये है।

रचनाएः– १ सक्षेप सार सग्रह– सर्वज्ञात्ममुनि के सक्षेपशारीरक की टीका २. वेदान्त कल्प लातिका– इसमे अद्वैतवेदान्त के अनुसार मोक्ष का वर्णन है ३ सिद्धान्त बिन्दु ४ अद्वैतसिद्धि ५ अद्वैतरत्नरक्षणम् ६ आत्मबोध टीका ७ महिम्नस्त्रोत ८ भक्तिरसायन ९ आनन्द मन्दाकिनी १०. गूढार्थदीपिका ११ ईश्वर प्रतिपत्ति प्रकाशिका १२. कृष्ण कुतूहल (नाटक) १३ हरिलीला व्याख्या

उपर्युक्त ग्रन्थो से स्पष्ट होता है कि मधुसूदन सरस्वती ने वाध प्रस्थान के अन्तर्गत अद्वैतसिद्धि और अद्वैतरत्न रक्षण नामक दो ग्रन्थ लिखे। इसमे से 'अद्वैतसिद्धि' एक महान ग्रन्थ है जिसके खण्डन–मण्डन मे अनेको ग्रन्थ लिखने मे विद्वानों ने दिलचस्पी दिखायी। उनके अन्य ग्रन्थो मे भक्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। उन्होने ही अद्वैतवेदान्त मे सर्वप्रथम श्रीकृष्ण का अभेद परब्रह्म से किया है। इस सन्दर्भ मे उनका यह श्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध है–

वशीविभूषित करान्नव नीरदाभात् पीताम्बरादरुण बिम्ब फलाधरोष्ठात्।
पूर्वेन्दु सुन्दर मुखादरबिन्द नेत्रात् कृष्णात्परं किमपि तत्वमह न जाने।।

(गूढार्थदीपिका के अन्त मे प्रथम श्लोक)

मधुसूदन सरस्वती ने अद्वैतसिद्धि मे व्यासतीर्थ के ग्रन्थ न्यायामृत का खण्डन किया है। व्यासतीर्थ ने न्यायामृत मे आनन्दबोध तथा तथा प्रकाशात्मा की युक्तियो का खण्डन किया[1] जिसका निराकरण मधुसूदन सरस्वती ने अद्वैत सिद्धि मे किया।

<u>निश्चित रूप से अद्वैतवेदान्त मे मधुसूदन सरस्वती की देन दो प्रकार से है– पहली देन है– बाध प्रस्थान को चरम बिन्दु तक पहुचा देना और अद्वैत वेदान्त को तर्कत· स्थापित करना</u>। दूसरी मुख्य देन है अद्वैतवेदान्त मे भक्ति और भागवत पुराण का प्रवेश करना मधुसूदन सरस्वती की यह महती उपलब्धि है कि इन्होने कर्म, भक्ति और ज्ञान के सह समुच्चय का प्रचार किया तथा अपने समय मे प्रचलित भक्ति आन्दोलन को अद्वैतवेदान्त की तरफ उन्मुख किया।

जहा श्री हर्ष और चित्सुख का उद्देश्य न्याय वैशेषिक का खण्डन करके अद्वैतवाद की स्थापना करना था वहा मधुसूदन सरस्वती का लक्ष्य द्वैत वेदान्त का खण्डन करके अदैत वेदान्त की स्थापना करना था। इसके पीछे कारण यह था कि उनके समय मे नव्य न्याय का झुकाव अद्वैतवेदान्त की दिशा मे हो रहा था और माध्व वेदान्ती अद्वैतवेदान्त के कट्टर आलोचक थे। इसलिये मधुसूदन जी ने पूर्वपक्षी की आलोचनाओ की प्रत्यालोचना करके अद्वैतवाद की युगीन सेवा प्रारम्भ की।

अद्वैतसिद्धि के सिद्धान्तो मे 'मिथ्यात्व' की विशेष चर्चा है। व्यासतीर्थ ने मिथ्यात्व के पाच लक्षण लिये और सभी मे दोष स्पष्ट किये किन्तु मधुसूदन सरस्वती ने इन पाच लक्षणो को निर्दोष सिद्ध किया। जो विवादित बिन्दु है सक्षेप मे इस प्रकार है–

क क्या सत्त्वासत्त्वधिकरण सत्वविशिष्ट– असत्त्वाभाव है?

अथवा

ख सत्त्वात्यन्त्वाभाव और असत्त्वात्यन्ता भाव दोनो का आधार है?

---

[1] विक्षिप्त सग्रहात क्वापि क्वाप्युक्तस्योपपादनात। अनुक्तकथनातक्वापि सफलोऽय श्रमो मम।। 'न्यायमृत १/८)

अथवा

ग सत्त्वात्त्यन्ताभाव– विशिष्ट असत्त्वात्यन्ताभाव रूप धर्म का आधार है? तीनो विकल्प सदोष है। प्रथम पक्ष मे सिद्धसाधना, द्वितीय मे विरोध, और तृतीय मे व्याघात है। क्योकि सत्ववात्यन्ताभाव विशिष्ट असत्त्वात्यन्ताभाव स्ववचन विरोध है। यहा मधुसूदन सरस्वती ने प्रथम विकल्प को छोडकर द्वितीय और तृतीय विकल्प को तर्को और युक्तियो से निर्दोष सिद्ध किया है।

घ व्यास तीर्थ ने दूसरा आक्षेप किया कि मिथ्यात्व का लक्षण–त्रैकालिक निषेध प्रतियोगित्व मिथ्यात्व है। प्रकाशात्मा के विवरण मे भी यह लक्षण दिया गया है। यहा भी व्यासतीर्थ ने तीन विकल्प उठाये है–(१) त्रैकालिक निषेध यदि तात्विक है तो अद्वैतहनि है (२) त्रैकालिक निषेध प्रतिभासिक मानने पर सिद्धसाधन दोष है (३) त्रैकालिक निषेध को व्यवहारिक मानने पर उसे बाधित मानना पडेगा और अर्थान्तर दोष प्रशक्त होगा। इसका उत्तर देते हुए मधुसूदन जी कहते है कि यद्यपि त्रैकालिक निषेध तात्त्विक है फिर भी अद्वैतहानि नही होती है क्योकि प्रपत्र्च का निषेध तात्विक होने पर भी ब्रह्म रूप ही है, वह ब्रह्म से भिन्न नही है। अत अद्वैत हानि नही है।

ङ मिथ्यात्व का तीसरा लक्षण है ज्ञान–निवर्त्यत्व। यह लक्षण भी विवरणकार ने दिया है। व्यासतीर्थ मानते है कि घटादि मे यह लक्षण अव्याप्त है क्योकि यह विनाशशील है तथा दूसरे पक्ष मे सस्कारो मे अतिव्याप्ति है क्योकि वे स्मृतिरूप ज्ञान मे व्याप्त ज्ञानत्व से निवृत्त होते है। इसके उत्तर मे मधुसूदन सरस्वती कहते है कि अधिष्ठान की प्रतीति होना भी ज्ञानकोटि मे ही आता है अतएव शुक्ति–रजत आदि मे भी भ्रम की निवृत्ति ज्ञान से ही होती है। इस प्रकार प्रपत्र्च से सर्वत्र ज्ञान निवर्त्यत्व सिद्ध है।

च मिथ्यात्व का चतुर्थ लक्षण है– स्वाश्रयनिष्ठ– अत्यन्ताभाव– प्रतियोगित्व मिथ्यात्व है। चित्सुख द्वारा दिया गया लक्षण है। इस पर व्यासतीर्थ ने आक्षेप लगाया कि अत्यन्ताभाव को तात्विक मानने पर द्वैतावन्ति अर्थात् अद्वैतहानि होगी। इसपर मधुसूदन सरस्वती पूर्वोक्त प्रकार से ही स्पष्ट करते है कि प्रपञ्च के अत्यन्ताभाव से अद्वैतहानि नही होती है।

प्रपञ्च का पॉचवा लक्षण पूर्वपक्षी द्वारा दिया गया है 'सद्विविक्तत्व मिथ्यात्व'। अर्थात् जो सद् से भिन्न है वह मिथ्या है। इस लक्षण को आनन्दबोध ने दिया और व्यासतीर्थ ने तीन विकल्प उठाये– (१) सत्ता का अर्थ १ सत् जाति है या (२) अबाध्य वस्तु (३) या ब्रह्म प्रथम विकल्प मे प्रपञ्च मे सिद्ध साधन दोष है। मधुसूदन सरस्वती द्वारा सत् की परिभाषा– 'सत्त्व च प्रमाणसिद्धत्वम्' दी गयी है अर्थात् जो प्रमाण सिद्ध हे वह सत् है। इस लक्षण के द्वारा व्यासतीर्थ के तीनो विकल्पो को अप्रासगिक बना दिया है। जगत की सत्ता प्रमाणत सिद्ध नही है। प्रमाणसिद्ध ब्रह्म की सत्ता है अतएव जगत सत् से भिन्न है। इस प्रकार मिथ्यात्व के पाचो लक्षणो को मधुसूदन सरस्वती ने निर्दोष सिद्ध किया। अविद्या, प्रतिबिम्बवाद तथा अभेद पर भी व्यासतीर्थ और मधुसूदन मे गभीर विवाद है। मधुसूदन सरस्वती ने इन मतो की स्थापना व्यासतीर्थ की युक्तियो का खण्डन करके ही की है। उनकी यह स्थापना परवर्ती अद्वैत वेदान्तियो तथा द्वैतवादियो के लिए बहुत प्रेरक सिद्ध हुई है।

एकजीववाद

मधुसूदन सरस्वती एकजीववाद के समर्थक है– 'स च दृष्टैक एव तन्नानात्वे मानाऽभावात्'[1] एकजीववाद के सम्बन्ध मे यह शका उठती है कि जब "मै सुखी हूँ", "मै ससारी हूँ" और "मै सोया" आदि भिन्न–भिन्न अनुभव होते है तो एक जीववाद को फिर

[1] अद्वैतसिद्धि – पृ० ५३६

कैसे स्वीकार किया जाय? इसके उत्तर मे मधुसूदन सरस्वती कहते है कि अविद्या के कारण एक ब्रह्म ही जीवरूप को प्राप्त करता है उस जीव की ही प्रत्येक शरीर मे 'अह बुद्धि' होती है इस प्रकार जीव अनन्त न होकर एक ही है।

भेद–अभेद के विषय मे जो विवाद है उसकी अभिव्यक्ति भेदवादी नव्यनैयायिक शङ्कर मिश्र के ग्रन्थ भेदरत्न प्रकाश मे और अभेदवादी मधुसूदन सरस्वती के ग्रन्थ अद्वैतरत्नरक्षण मे विशेष रूप से हुई है। शङ्कर मिश्र ने भेदसिद्धि इसलिये की है कि अद्वैत वेदान्ती भेद खण्डन न कर सके–

भेदरत्न परित्राणे तार्किका एव यामिका।
अतो वेदान्तिन स्तेनान्निरस्यत्येष शंङ्कर ।।

इसका प्रत्युत्तर मधुसूदन सरस्वती ने 'अद्वैत रत्नरक्षण' मे इस प्रकार व्यक्त किये है–

'अद्वैतरत्न रक्षाया तत्त्विका एव यामिका।
अतो न्यायविद स्तेनान्निरस्यामः स्वयुक्तिभि ।।

भेद के चार प्रभेद का खण्डन मधुसूदन सरस्वती के पूर्व श्री हर्ष ने 'खण्डन खण्ड खाद्य' नामक अपने ग्रन्थ मे किया है–

एक ब्रह्मास्त्रमादाय नान्यं गणयतः क्वचित्।
आस्ते न धीरवीरस्य भग सगरकेलिषु।।

इस विवाद मे खण्डनकार का पक्ष लेते हुये मधुसूदन सरस्वती शङ्कर मिश्र को परामर्श देते है–

मोक्षाय स्पृहयालव श्रुतिगिरा श्रद्धालवोऽथेऽनृजौ
वेदान्तार्थ विभावनासु सुतरा व्याजेन निद्रालव।
भेदे खण्डन खण्डितेऽपि शतधा तन्द्रालवस्टाार्किका
कैवल्यात्प्रटलायव श्रृणुत सदयुक्ति दयालोर्मया।।

अर्थात् हे नैयायिक! खण्डन खण्ड खाद्य मे शतधा भेद का खण्डन किये जाने पर भी आप सोते न रहे, कैवल्य से आपका पतन न हो, अतएव मेरी सदयुक्तियो को सुनकर अभेदवाद को स्वीकार करो और मोक्ष के लिए प्रयत्न करो। भेद को लेकर विवाद इस बिन्दु पर है कि भेद औपाधिक है या परमार्थिक। नैयायिक, माध्व वेदान्ती भेद को परमार्थिक मानते है जब कि अद्वैत वेदान्ती औपाधिक मानते है। क्योकि इनके मत मे एक मात्र ब्रह्म को ही सत् माना जा सकता है।

नृसिहाश्रम (१६वीं शताब्दी) नृसिहाश्रम मुनि एक महान अद्वैतवेदान्ती थे। इनका समय १६वी शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है।[1]

नृसिहाश्रम मुनि गीर्वाणेन्द्र सरस्वती और जगन्नाथ आश्रम के शिष्य थे। उनके शिष्य नारायण आश्रम तथा धर्मराज अध्वरीन्द्र थे। धर्मराज ने वेदान्त परिभाषा से सम्बन्धित ज्ञानमीमासीय ग्रन्थ की रचना की है।

नृसिहाश्रम उद्भव दार्शनिक एव प्रौढ पण्डित थे। इन्होने भावप्रकाशिका (विवरण की टीका), तत्व विवेक, भेद धिक्कार, अद्वैत दीपिका, वैदिक सिद्धान्त सग्रह एव तत्वबोधिनी की रचना की थी। इसके अतिरिक्त अद्वैत पञ्चरत्न, अद्वैतबोध दीपिका, अद्वैतवाद, वाचारम्भण, वेदान्ततत्व विवेक आदि ग्रन्थो की रचना करके नृसिहाश्रम ने निश्चय ही दर्शनशास्त्र के लिए एक विलक्षण योगदान दिया है। नृसिहाश्रम ने सक्षेपशारीरक पर तत्वबोधिनी तथा पचपादिका विवरण पर पचपादिका विवरण नामक व्याख्याए लिखी है।

अद्वैत दीपिका पर नृसिहाश्रम के शिष्य नारायण आश्रम ने अद्वैतदीपिका विवरण नामक टीका लिखी, इसमे दो परिच्छेद है– प्रथम परिच्छेद का नाम साक्षिविवेक है और दूसरा परिच्छेद विभाग प्रक्रिया है। यह ग्रन्थ अद्वैत वेदान्त का एक मानक ग्रन्थ हे।

---

[1] नृसिहाश्रम का यह समय वेदान्ता कल्याण के आधार पर किया ग्या ह

साक्षि के विषय मे कहा गया है कि साक्षित्व अविद्या दशा मे ही रहता है– 'साक्षित्वम् अविद्यादशायामेव दृश्यापेक्षत्वात्'।[1] वही नृसिहाश्रम कहते है– अतएव द्रष्टत्वघटित साक्षित्व न स्वरूपम् अपितु उदासीन बोधात्मकमेव साक्षिरूपम्। तस्य निष्प्रतियोगिस्वरुपत्वात्।[2]

अद्वैत दीपिका मे भामती प्रस्थान तथा विवरण प्रस्थान के सवाद को उत्कृष्ट रूप मे दर्शाया है।

निःसंदेह नृसिहाश्रम नव्य अद्वैतवाद के पुराकर्ता थे। इनके प्रभाव से ही भट्टोजी दीक्षित अप्पय दीक्षित आदि अद्वैत वेदान्त मे दीक्षित हुये थे। 'भेदधिक्कार' के कारण उन्हे सहज रुप से बाधप्रस्थान का भी पुराकर्ता माना जाता है। भेद धिक्कार पर निम्नलिखित टीकाए है–

१ नारायण आश्रमकृत सत्क्रिया।

२ अज्ञातकर्तृक भेदधिक्कार टिप्पणी।

३ पूर्णधारानन्द सरस्वतीकृत भेद धिक्कार सत्क्रियोज्जबल।

४ अज्ञातकर्त्तृक भेदाधिकारोपन्यास

पुनश्च माध्व वेदान्ती नृसिह देव ने भेदधिक्कार का खण्डन 'भेदधिक्कार न्यक्कार' मे किया है।

नृसिहाश्रम का मत है कि ईश्वर–जीव तथा जड के भेद मे कोई प्रमाण नही है क्योकि जो भी प्रमाण दिये जाते है वे सभी सदोष है। यथा–

माना भावाद युर्क्तश्च न भिदेश्वर जीवयो।

जीवानाम चिता चैवनात्मनो परस्परम्।। भेदधिक्कार पृ० ८ ।।

---

[1] अद्वैतदीपिका विवरण पृ० ४४१

[2] अद्वैतदीपिका पृ० ४४१

नृसिहाश्रम के मत मे परमार्थिक भेद का निराकरण श्रुति बारम्बार करती है। युक्ति और तर्क से भी भेद की पारमार्थिकता सिद्ध नहीं होती है। क्योकि जो भी युक्ति दी जाती है वह निर्दोष नही रहती है। वास्तव मे नृसिहाश्रम ने भेदखण्डन और अभेदसिद्धि मे श्रुति प्रामाण्य का सहारा नही लिया है। उन्होने भेद खण्डन के द्वारा अद्वैतसिद्धि की है।[1]

अद्वैतदीपिका मे भी द्वैतवेदान्त का खण्डन प्रधान विषय है। अतएव उसे भी बाध–प्रस्थान के अन्तर्गत रखा जा सकता है। अद्वैतदीपिका के मगलाचरण मे नृसिहाश्रमत कहते है–

श्रीमद गुरुपदद्वन्द्व ध्याननिर्धूत कल्मष ।
कुर्वे तदाज्ञया द्वैतदीपिका भेदमेदिनीम्।।

अर्थात् गुरु की आज्ञा से अद्वैतदीपिका की रचना की गयी है जिसका मुख्य उद्देश्य भेदवाद का भेदन करना है इससे मध्व वेदान्ती टीकाचार्य जयतीर्थ के मत का भी खण्डन है। जयतीर्थ 'आनन्दमय' को ही ब्रह्म स्वीकार करते है परन्तु इसका खण्डन करते हुए नृसिहाश्रम कहते है कि आनन्दमय ब्रह्म नही है, यह अन्नमयादि की तरह विषय और विकार है, तथा जो पचकोश से परे हो वह ब्रह्म है। ऐसा नृसिहाश्रम शारीरक भाष्य मे युक्तियो और तर्को से खण्डन करके सिद्ध करते है।

नृसिहाश्रम और उनके टीकाकारो के अतिरिक्त भी अद्वैतवेदान्ती है जिन्होने भेद के खण्डन मे रुचि ली हे। इनमे १६वी शती के मल्लनाराध्य मुख्य है जिन्होने अद्वैतरत्न नामक एक ग्रन्थ की रचना की है।

नारायणाश्रम (१६वी शताब्दी)

नारायणाश्रम उद्भुत दार्शनिक थे। इनका सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है। ये नृसिहाश्रम के शिष्य थे। नृसिहाश्रम के भेदधिक्कार एव अद्वैत दीपिका नामक अनुपम

---

[1] आस्तामन्य प्रमाणत्वम भेदे सर्ववस्तुन ।
भेदप्रमाणमेवैत दद्वैत साधयत्यलम ।। (भेदधिक्कार पृ० ११८)

ग्रन्थो की रचना किये थे। नारायणाश्रम ने अपने गुरु द्वारा रचित उपर्युक्त दोनो ग्रन्थो पर टीका ग्रन्थो की रचना किया। भेदधिक्कार पर इनका टीका ग्रन्थ भेदधिक्कार सत्क्रिया अत्यन्त प्रसिद्ध है इन्होने अपने इस ग्रन्थ मे द्वैत का निराकरण करके अद्वैत की प्रामाणिकता का समर्थन किये है। इसके अतिरिक्त 'भेदधिक्कार सत्क्रियोज्जवला' नामक टीका भी इनके नाम से प्राप्त होती है।

रगराजध्वरि (१६वी शताब्दी)

रगराजध्वनि वेदान्त के प्रसिद्ध विद्वान अप्पय दीक्षित के पिता थे। इनकी महत्वपूर्ण रचनाओ मे अद्वैत विद्यामुकुर एव विवरण दर्पण है। इन ग्रन्थो मे रगराजध्वरि ने न्याय वैशेषिक एव साख्य आदि मतो का खण्डन करके अद्वैत मत की स्थापना की है।

सदाशिव ब्रम्हेन्द्र (१६वीं शताब्दी)

सदाशिव ब्रम्हेन्द्र का समय १६वी शताब्दी है। यह भी शाकर वेदान्त के पूर्ण समर्थक आचार्य रहे है। विरोधी अन्य मतो का निराकरण कर अद्वैतवाद का समर्थन किया है। इनकी मुख्य कृतियॉ अद्वैतविद्या विलास, बोधार्थात्मनिर्वेद, गुणरत्न मालिका और ब्रह्मकीर्तन तरगिणी आदि है। जिसमे अद्वैतवाद को ही प्रतिपाद्य विषय बनाया गया है। १६वीं शताब्दी मे ही नीलकण्ठ सूरि नामक आचार्य हुये जो अद्वैत वेदान्त के ही मुख्य रूप से थे। इन्होने महाभारत पर 'भारत भावदीप' नामक टीका ग्रन्थ की रचना किये। गीता की व्याख्या करते समय यद्यपि कही–कही शाकर सिद्धान्त का विरोध भी किया है किन्तु ग्रन्थो को देखने पर स्पष्ट होता है कि इनका प्रमुख सिद्धान्त शाकर अद्वैत ही था।

सदानन्द योगीन्द्र सरस्वती (१६वी शताब्दी)

सदानन्द ने अद्वैत वेदान्त के अत्यन्त महत्वपूर्ण एव प्रसिद्ध ग्रन्थ वेदान्त सार की रचना

की है।

सदानन्नद का 'वेदान्तसार' अद्वैत वेदान्त का प्रथम एव प्रामाणिक सार ग्रन्थ है। सदानन्द के पूर्व भी अद्वैत वेदान्त मे आचार्य 'पद्मपाद' ने एक वेदान्तसार लिखा था जो शकराचार्य रचित आत्मबोध की एक टीका है। किन्तु इसमे अद्वैत वेदान्त का पूर्ण विवेचन नही था। इस दृष्टि से सदानन्द का वेदान्तसार अतिमहत्वपूर्ण है जिसमे अद्वैत वेदान्त के सभी विषय वर्णित है। वेदान्तसार की रचना १५२५ ई० मे हुई थी। उनके शिष्य कृष्णानन्द थे और कृष्णानन्द के शिष्य नृसिह सरस्वती थे जिन्होने शकसवत् १५१० मे अर्थात् १५८८ ई मे वेदान्तसार के ऊपर 'सुबोधिनी' नामक एक टीका लिखी। उन्होने सुबोधिनी का रचनाकाल स्वय बताया है–

जाते पञ्चशताधिके दशशते सवत्सराणा पुन
सञ्जाते दशवत्सरे प्रभुवर श्रीशालिवाहे शके।
प्राप्ते दुर्मुखवत्सरे शुभशचौमासेऽनुमित्या तिथौ
प्राप्त भार्गववासरे नरहरिप्टीका चकारोज्जवलाम्।।

सुबोधिनीकार नृसिह सरस्वती नृसिहाश्रम से भिन्न व्यक्ति है। सुबोधिनी के अतिरिक्त वेदान्तसार पर सस्कृत मे दो और टीकाए है। रामतीर्थ की विद्वनमनोरजनी जिसकी रचना १६५०ई० के आस–पास हुई थी। और आपदेव द्वितीय की बालबोधिनी जिसकी रचना १७वी शती के उत्तरार्द्ध मे हुई थी। इन तीन टीकाओ मे विद्वनमनोरजनी सर्वोत्तम है।

वेदान्तसार शड्कराचार्य के शारीरक भाष्य का सक्षेप है। इस सक्षेप मे सर्वज्ञात्ममुनि के सक्षेपशारीरक को प्रमुख महत्व दिया गया है।

रामतीर्थ (१७वीं शताब्दी)

रामतीर्थ का समय १७वी शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना गया है। रामतीर्थ ने

सक्षेपशारीरक पर अन्वयार्थ प्रकाशिका, शङ्कराचार्य की उपदेश साहस्री पर पदयोजनिका और वेदान्तसार पर विद्वनमनोरञ्जनी नामक टीका ग्रन्थो मे रामतीर्थ ने विशेषतया अद्वैतवाद का ही प्रतिपादन किया है।

इसी समय आपदेव नाम मीमासक भी थे जिन्होने वेदान्तसार पर बोलबोधिनी नामक टीका की रचना करके अद्वैत मत का ही पूर्ण रूप से समर्थन किया है। मुख्य बात यह है कि यह मीमासक होते हुये भी अद्वैत मत के समर्थक थे।

१७वीं शताब्दी मे गोविन्दानन्द ने ब्रह्मसूत्र भाष्य की टीका– रत्नप्रभा शाङ्कर भाष्य की टीका है। इन्होने भी अद्वैत वेदान्त का बडी सरलता से अपने ग्रन्थ मे निरूपण किया है।

रामानन्द सरस्वती (१७वी शताब्दी)

रामानन्द सरस्वती शकरोत्तर वेदान्तियो मे प्रमुख थे जिन्होने अद्वैतवाद के विकास मे पूर्ण रूप से प्रयास किया। ये गोविन्दानन्द के शिष्य थे इन्होने ब्रह्मसूत्र पर शाकर भाष्य सम्मत 'ब्रह्मामृतवर्षिणी' नामक टीका की रचना की है। इसके अतिरिक्त 'विवरणोपन्यास' नामक ग्रन्थ भी अत्यधिक प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ पचपादिका टीका का विस्तृत रूप है।

काश्मीरक सदानन्द यति (१७वी शताब्दी)

काश्मीरक सदानन्द यति ने काश्मीरक अद्वैत ब्रह्मसिद्धि नामक एक प्रामाणिक ग्रन्थ की रचना किये। वामनशास्त्री ने इसका सपादन किया है।[१] इनके अन्य ग्रन्थ जैसे– अद्वैतसिद्धि सिद्धान्त सार, प्रत्यक्तत्त्व चिन्तामणि (प्रभासहित) ईश्वरवा, स्वरूप निर्णय, स्वरूपप्रकाश, गीताभाव प्रकाश (पद्य), तत्त्वविवेक टीका और शङ्कर दिग्विजयसार आदि। ये मधुसूदन सरस्वती के सिद्धान्तबिन्दु के टीकाकार ब्रह्मानन्द

यह परिमल प्रकाशन दिल्ली से १९८१ मे छपी है।

सरस्वती और नारायण तीर्थ के शिष्य थे और काशी मे रहकर आचार्य बल्देव उपाध्याय ने 'सस्कृत वाड्गमय का वृहद इतिहास– दशमखण्ड वेदान्त मे लिखा है कि– "वामन शास्त्री भूमिका मे लिखते है कि अद्वैत ब्रह्म सिद्धि मे छ आस्तिक और छ नास्तिक दर्शनो का उपन्यासपूर्वक खण्डन तथा अद्वैतवेदान्त का अबाधित प्रतिपादन है। यह सर्वदर्शन सग्रह जैसा ग्रन्थ है।[1] अन्त्य यह हे कि सर्वदर्शन सग्रह मे किसी भी मत का खण्डन नही किया गया है जबकि इसमे किया गया है। तात्पर्य यह है कि अद्वैतब्रह्मसिद्धि आधेपान्त आलोचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक है। मधुसूदन सरस्वती की अद्वैतसिद्धि मे खण्डन की प्रधानता है तथा अद्वैत सिद्धान्त गौण हो गया। भट्टोजी दीक्षित का तत्वकौस्तुभ, अप्पय दीक्षित का सिद्धान्त लेश सग्रह, नृसिहाश्रम का भेदधिक्कार ये सब एकदेश ग्रन्थ है। इसमे अद्वैतवेदान्त के प्रतिपादन की आवश्यकता थी। इसको सदानन्दयति ने अद्वैतब्रह्मसिद्धि लिखकर पूरा किया।

रगनाथ (१७वी शताब्दी)

रगनाथ ने शाड्कर अद्वैत का ही प्रतिपादन किया है। रगनाथ ने ब्रह्मसूत्र की शाकर भाष्यानुसारिणी वृत्ति लिखी है। भामतीकार ने इसे भाष्य के अर्न्तगत माना है। किन्तु वैयासिक न्यायमालाकार भारतीतीर्थ ने इसे पृथक सूत्र माना है।

१७वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे अच्युत कृष्णानन्द तीर्थ नामक आचार्य भी अद्वैत वेदान्त के समर्थक रहे है। इन्होने अप्पय दीक्षित के सिद्धान्त लेश पर टीका लिखी है। सिद्धान्तलेश की यह टीका कृष्णालकार अत्यन्त सुबोध एव सरल है। इन्होने तैत्तिरीयोपनिषद शाकर भाप्य के ऊपर वनमाला नामक टीका लिखी है।

इसके बाद १८वी शताब्दी मे सदाशिवेन्द्र सरस्वती ने अद्वैत वेदान्त को आगे बढाने मे प्रसास किया। इनका अन्य नाम सदाशिवेन्द्र ब्राम्हण था। इन्होने ब्रह्मसूत्र पर

---

[1] बलदेव उपाध्याय– सस्कृत वाडगमय का वृहद इतिहास– दशम खण्ड वदान्त पृ० १

'ब्रह्मतत्व प्रकाशिका' नामक टीका लिखी है। यह टीका शाकर सिद्धान्तो पर आधारित है। इसके अतिरिक्त और भी तीन ग्रन्थ है– आत्म विद्धाविलास, कविताकल्पवल्ली और अद्वैतरसमञ्जरी।

आयन्न दीक्षित ने १८वी शताब्दी मे ही सदाशिवेन्द्र के बाद अद्वैत वेदान्त को आगे बढाने मे आयन्न दीक्षित ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसके द्वारा रचित व्यास तात्पर्य निर्णय नामक एक ग्रन्थ ही उपलब्ध होता है। इन्होने अद्वैतमत के प्रतिपादक के लिये उस समय साख्य, मीमासा, पातञ्जल, न्याय वैशेषिक, पाशुपत एव वैष्णव मतो का निराकरण किया और शाकर मत का समर्थन किया।

प्राय बहुत से दार्शनिको का विचार है कि १८वी शताब्दी मे ही अद्वैतवेदान्त मे चिन्तन की मौलिकता मे कमी की स्थिति परिलक्षित होती है किन्तु कुछ भी हो इतना तो स्पष्ट है कि अद्वैत चिन्तन की मौलिकता का ह्रास असभव है जो आज भी मुख्य रूप से प्रचलित है और वेदान्त के (अनुयायियों) प्रर्वतको की सख्या मे बढोत्तरी हो रही है।

स्वामी करपात्री (२०वी शताब्दी)

स्वामी करपात्री २०वी शती के उत्तर भारत के एक मूर्धन्य अद्वैत वेदान्ती थे। उनके अनुयायी उन्हे अभिनव शड्कर मानते है। उनका सन्यास का नाम हरिहरानन्द सरस्वती था उन्होने जगद्गुरु शड्कराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती से सन्यास दीक्षा ली थी। इनका जन्म १९०७ मे प्रतापगढ जिले के भटनी मे पैदा हुये थे। बाध प्रस्थान के ये मुख्य दार्शनिक है। इनके पिता का नाम श्री राम निधि ओझा था। गृहस्थाश्रम का नाम हरनारायण ओझा था। १७ वर्ष की आयु मे वैराग्य वृत्ति अपनायी। करपात्री ने प० जीवनदत्त से व्याकरण आदि का और स्वामी विश्वेश्वराश्रम से दर्शनशास्त्र और वेदान्त का अध्ययन किया। १९३१ मे जगद्गुरु शड्कराचार्य ब्रह्मानन्द सरस्वती से दण्ड ग्रहण

किया। १६४० मे धर्मसघ की स्थापना हरिद्वार मे माध्ववेदान्ती स्वामी विद्यामान्य तीर्थ से गीता १६/८ पर शास्त्रार्थ हुआ। १६५१ मे रामराज परिषद की स्थापना की और सभी सनातन हिन्दुओ को एक राजनीतिक मच पर लाने का प्रयास किया और नव्यवेदान्त का पर्याप्त उन्नयन किया। इनकी कृति भक्तिरसार्णव, श्री विद्यारत्नार्णव वेदस्वरूपविमर्श, वेदार्थ पारिजातम् आदि है।

मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति दर्शन का विरोध अद्वैत वेदान्त से नही माना था वैसे करपात्री ने भी नही माना, यथा–

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अष्युपक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्थ भूतगुणो हरि ।।

स्वामी करपात्री मानते है कि जीवनमुक्त भी अहैतुकी भक्ति करता है। त्रिपुरारहस्य का प्रामाण्य देते हुये वे कहते है– पारमार्थिकमद्वैत द्वैत भजन हेतवे। तादृशी यदि भक्ति स्यात् सा तु मुक्तिशताधिका।।

और–

भक्त्यर्थ भावित द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम। (भक्तिरसार्णव– पृ० २२१)

स्वामी करपात्री अपनी कृति भक्तिरसार्णव मे विशिष्टताद्वैत, शुद्धाद्वैत, अचिन्त्य भेदभेदवादी आदि के मतो का खण्डन करके इनके मतो को भक्तिविरोधी सिद्ध करते है। करपात्री ने रामानुज के श्रीभाष्य का खण्डन किया।

अपने ग्रन्थ 'वेदस्वरूप विमर्श', और 'वेदार्थ पारिजातम्' मै मैक्समूलर, ग्रिफिथ, मार्क्स आदि पाश्चात्य विचारको का खण्डन किया और खण्डन प्रणाली का विकास करते हुये बाध प्रस्थान को एक नई दिशा प्रदान की।

इस प्रकार आज भी शङ्कर अद्वैत वेदान्त को मानने वाले अनुयायी सख्या मे ज्यादा है।

षष्ठ–अध्याय

मुख्य सिद्वान्तों का तुलनात्मक अध्ययन

शङ्कराचार्य द्वारा प्रतिपादित मुख्य सिद्धान्त अद्वैत वेदान्त है अर्थात् अद्वैत से तात्पर्य है जिसमे किसी प्रकार का द्वैत न हो। आचार्य शङ्कर का पूरा दर्शन संक्षिप्त रूप से इस श्लोक से स्पष्ट हो जाता है–

श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि युदुक्तं ग्रन्थकोटिभि.।

ब्रह्मसत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नाऽपर ।।[1]

अर्थात् शङ्कर ने कहा ब्रह्म ही एकमात्र सत् है जगत् मिथ्या है जीव और ब्रह्म भिन्न नही, एक ही है। 'नेह नानास्ति किञ्चन जगत्' अर्थात् इस प्रकार नानाविध जगत् की व्यवहारिक सत्ता है यह परमार्थिक दृष्टि से असत् है। परमार्थिक दृष्टि से एकमात्र ब्रह्म ही परम् सत् है और कुछ नही।

इस अद्वैतवाद के मुख्य प्रतिपाद्य विषय को शङ्कराचार्योत्तर अद्वैत वेदान्त के आचार्यो ने भी अपने–अपने दृष्टिकोण से स्वीकार किया और इसका विश्लेषण कर इस सिद्धान्त को आगे बढाया।

शङ्कराचार्य के चार शिष्य थे। सुरेश्वराचार्य पद्मपाद, हस्तामलक, त्रोटक। इसमे से सुरेश्वराचार्य और पद्मपाद विशेष रूप से प्रसिद्ध है। आचार्य शंकर द्वारा प्रतिपादित अद्वैत के विकास मे उनके शिष्यो–प्रशिष्यो मे सुरेश्वराचार्य, पद्मपाद प्रकाशात्मायति, सर्वज्ञात्ममुनि, और वाचस्पति मिश्र का महत्वपूर्ण योगदान है। इन आचार्यो का आविर्भाव ८वी ९वी ई० मे हुआ था जिसके कारण आठवीं नवी शती का काल यदि अद्वैतवेदान्त का स्वर्ण काल कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। इन दार्शनिको ने शाङ्कर भाष्य मे प्रतिपादित अध्यास, मिथ्यात्व, अविद्या का भावरूपत्व,

---

[1] इस श्लोक की दूसरी पक्ति ब्रह्मज्ञानावली माला के श्लोक २० की प्रथम पक्ति है।

जीव ब्रह्म सम्बन्ध, जीव स्वरूप अविद्यानिवृत्ति आदि विषयों पर अद्वैत विरोधी मतो का युक्तियुक्त प्रत्याख्यान करके स्वसिद्धान्तो की स्पष्ट व्याख्या की है।

शड्करोत्तर अद्वैतवेदान्त के इन आचार्यो ने अपनी तर्कपूर्ण पैनी युक्तियो से एक ओर बौद्ध और न्याय के दार्शनिको द्वारा लगाये गये आक्षेपो तथा आपत्तियो का प्रत्युत्तर प्रस्तुत किया तो दूसरी ओर विशिष्टाद्वैती रामानुज मध्वादि वैष्णव दार्शनिको के द्वैतवाद से युक्त युक्तियो का भी तर्कत निराकरण किया।

आचार्य शड्कर के बाद अद्वैत वेदान्त मे कई प्रस्थानो का आविर्भाव हुआ जैसे– विवरण प्रस्थान, भामती प्रस्थान, वार्तिक प्रस्थान आदि इन प्रस्थानो के अतिरिक्त बाध प्रस्थान का विकास हुआ जो नव्य अद्वैत वेदान्त को सुदृढ कर रहा है। इसके अतिरिक्त प्रारम्भिक प्रस्थान के ग्रन्थो एव साहित्यो का भी अद्वैत वेदान्त के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान है।

शड्करोत्तर प्रमुख आचार्यो मे शड्कर के शारीरक भाष्य पर वाचस्पति मिश्र की प्रसिद्ध 'भामती टीका' के नाम से 'भामती प्रस्थान' प्रचलित हुआ और पद्मपाद की 'पचपादिका' पर प्रकाशात्मयति का 'पचपादिका विवरण–टीका' के नाम से 'विवरण प्रस्थान' ये दो प्रस्थान अद्वैत वेदान्त के प्रामाणिक सम्प्रदाय के रुप मे प्रसिद्ध है। इसी प्रकार ब्रह्मसिद्धि की परम्परा से मण्डन–प्रस्थान के तृतीय प्रस्थान 'वार्तिक प्रस्थान' का भी कम महत्व नही है। वार्तिक प्रस्थान का एक प्रधान ग्रन्थ सर्वाज्ञात्म मुनि रचित 'सक्षेप शारीरक' है। सर्वाज्ञात्म मुनि सुरेश्वराचार्य के प्रधान शिष्य थे।

विवरण–टीका का गाम्भीर्य एव महत्व सभी परवर्ती अद्वैतवादी स्वीकार करते है। इसको परवर्ती अद्वैताचार्यो ने अपनी व्याख्या के लिये मूलाधार के रूप मे माना है। यहा तक कि परवर्ती आचार्यो के टीकाग्रन्थो मे भी विवरण का उल्लेख किसी न किसी प्रकार से रहता ही है। इसमे सन्देह नही कि विवरण का गाम्भीर्य एव उसकी

युक्ति–युक्त तर्को की सगति को देखकर विवरणोत्तर प्राय सभी अद्वैताचार्य इससे अत्यन्त प्रभावित है। विवरण सम्प्रदाय के अग्रणी आचार्यो के नाम इस प्रकार है– तत्वदीपनकार अखण्डानन्द, आनदपूर्ण विद्यासागर, भावप्रकाशिकाकार नृसिहाश्रम ऋजुविवरणकार सर्वज्ञ विष्णुभट्ट, तात्पर्य दीपिकाकार चित्सुखाचार्य यज्ञेश्वरदीक्षित, विवरण प्रमेय सग्रहकार विद्यारण्यस्वामी आदि। किन्तु इसमे सन्देह भी नही कि इनका अपना–अपना मत और अपना वैशिष्ट्य भी है।

विवरण सम्प्रदाय की एक और महत्वपूर्ण विशेषता है कि विवरण सम्प्रदाय मे आचार्य शंकर से लेकर आज तक जितने भी लेखक और टीकाकार जुडे वे सभी प्राय गृहत्यागी–सन्यासी थे। सभवत यही कारण है कि आज भी, जहा भी वेदान्त का अध्ययन–अध्यापन–लेखन होता है वे सभी स्थान अधिकाशत आश्रम या मठ है। साधु–सन्यासियो ने अपने वेदान्त अध्ययन मे विवरण को ही अनुकरणीय मानते है। विवरण सम्प्रदाय मे ब्रह्मसूत्र शारीरक भाष्य, पंचपादिका पर गभीर अध्ययन होता है। विवरण दण्डी सन्यासियो की आध्यात्मिक पिपासा को शान्त करता है यह अद्वैत सिद्धान्त का प्रमुख दर्पण है। प्रकाशात्मयति, अखण्डानन्द, विद्यारण्य आदि सभी सन्यासी थे इसके विपरीत भामती प्रस्थान के प्रणेता स्वयं वाचस्पति मिश्र गृहस्थ थे और इसलिये उनके अनुयायी भी अधिकाशत गृहस्थ थे किन्तु अमलानन्द भामती प्रस्थान मे एक सन्यासी है जो कि इस प्रस्थान के अपवाद है।

मण्डन मिश्र के दार्शनिक विचारो का अध्ययन करने पर तथा विवरण प्रस्थान का सूक्ष्म अवलोकन करने पर दोनो प्रस्थानों मे निम्न अन्तर परिलक्षित होता है–

१ जैसा कि स्पष्ट है कि विवरण प्रस्थान के आचार्य शब्दापरोक्षवादी है क्योकि वे वेदान्त जन्य ज्ञान से ही ब्रह्मसाक्षात्कार मानते है जैसा कि शङ्कराचार्य ने भी माना था। किन्तु इसके विपरीत मण्डनमिश्र एव उनके अनुयायी वाचस्पति शब्द जन्य ज्ञान

को परोक्ष ज्ञान मानते है और उनके अनुसार ब्रह्म साक्षात्कार के लिये उपासनादि भी प्रमुख साधन है।

२ ख्यातिवाद के सिद्धान्त मे भी विवरणकार शाङ्कर मत का अनुसरण करते है और भ्रमस्थल मे अनिर्वचनीय ख्याति को स्वीकार करते है। परन्तु मण्डन प्रस्थान भ्रम स्थलीय ज्ञान की व्याख्या के लिये विपरीत ख्याति को स्वीकार करता है।

३ अविद्या को भी लेकर दोनो प्रस्थानो मे मतभेद है– विवरण प्रस्थान जहा अविद्या को एक मानता है वहां मण्डन मिश्र के अनुसार अविद्या दो प्रकार की होती है– १ अग्रहण अविद्या २ अन्यथाग्रहण अविद्या।

विवरण प्रस्थान अविद्या का आश्रय और विषय (दोनो ही) ब्रह्म को मानता है किन्तु मण्डन मिश्र एव भामती प्रस्थान के अनुसार अविद्या का आश्रय जीव है और विषय ब्रह्म है।

४. विवरण प्रस्थान और भामती प्रस्थान ब्रह्माद्वैतवादी है। मण्डन प्रस्थान भावाद्वैतवादी है। जिसके अनुसार अविद्या निवृत्ति ब्रह्मातिरिक्त है अर्थात् अभावतत्त्व के होने से भावाद्वैत के अद्वैततत्त्व की हानि नही होती है, क्योकि ब्रह्म ही एकमात्र और अद्वितीय भाव–तत्त्व (सत्) है।

५ मण्डन मिश्र शब्द ब्रह्मवाद और स्फोटवाद दोनो स्वीकार करते है किन्तु विवरण प्रस्थान और भामती प्रस्थान दोनो ही इसका खण्डन करते है।

६ मण्डन मिश्र जीवनमुक्ति को नही मानते है किन्तु विवरण प्रस्थान जीवन मुक्ति के साथ विदेह मुक्ति भी स्वीकार करते है। स्वामी विद्यारण्य ने तो 'जीवनमुक्ति विवेक' नामक ग्रन्थ लिखकर जीवनमुक्ति के स्वरुप, साधन, कारण तथा प्रयोजन का मुमुक्षु उपयोगी विवेचन किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विवरण–प्रस्थान के मूल सस्थापक पद्मपाद का मुख्य लक्ष्य शाङ्कर अद्वैत वेदान्त को मण्डन मिश्र के अद्वैतवाद से भिन्न करना था तथा इसमे उनको और अनुवायियो को पर्याप्त सफलता भी मिली।

वाचस्पति मिश्र ने पद्मपाद की पञ्चपादिका का कही–कही खण्डन किया है। अमलानन्द सरस्वती ने इस खण्डन को और उजागर किया है और वे एक स्थान पर कहते है–

पञ्चपादीकृतस्तु वाजसनेयिवक्यस्यापि आत्मोपक्रमत्वलाभे
कि शास्त्रानतरालोचनयेति पश्यन्त· पुरुषनूद्य वैश्वानरत्व
विधेयमिति व्याचक्षते, तद् दूषयति। (कल्पतरु १२२६)

वस्तुत प्रकाशात्मा ने विवरण मे भामती का प्रबल खण्डन किया है विवरण प्रस्थान के अनुवायी अनुभूति स्वरूप ने प्रकटार्थ–विवरण मे वाचस्पति के ऊपर अनेको आक्षेप लगाये। यथा– विवरण प्रस्थान का आक्षेप है कि वाचस्पति मण्डन पृष्ठ सेवी है और सूत्र तथा भाष्य के अर्थ से अनभिज्ञ है। वाचस्पति मिश्र अन्यथाख्याति को मानते है जब कि अद्वैतवेदान्त मे अनिर्वचनीय ख्यातिवाद को माना जाता है।

शङ्कर और वाचस्पति

वाचस्पति मिश्र की 'भामती' ने निसन्देह शङ्कर के शारीरक भाष्य की रक्षा की है विशेषत उन दर्शनो से जिसका खण्डन स्वय शङ्कराचार्य ने तर्कपाद मे किया था। भामती ने अन्य विरोधी दर्शनो द्वारा लगाये गये प्रतिवादो का निराकरण किया। फिर भी दोनो के दर्शनो का अध्ययन करने पर शङ्कर और वाचस्पति के मतो मे कुछ अन्तर अवश्य दिखाई देता है। इस अन्तर को सर्वप्रथम अमलानन्द ने इस प्रकार प्रकट किया है–

स्वशक्त्या नटवद् ब्रह्मकारण शङ्करोऽब्रवीत।

जीवभ्रान्तिनिर्मित तद् वभासे भामती पति।।

अज्ञात नटवद् ब्रह्म कारण शङ्करोऽब्रवीत्।

जीवाज्ञान जगद्बीज जगौवाचस्पतिस्तथा।। (कल्पतरु पृ० ४७१)

शङ्कराचार्य ने माना कि स्वशक्ति से ब्रह्म जगत् का 'अभिन्ननिमित्तोपादान' कारण है। किन्तु वाचस्पति मिश्र ने माना कि जो ब्रह्म जगत् का कारण है वह जीव के भ्रम का विषय है। शकराचार्य ने शाकर भाष्य मे स्वीकार किया कि जगत् का कारण रूप ब्रह्म जीवो को अज्ञात है। जबकि वाचस्पति मिश्र ने माना कि जीव का अज्ञान ही जगत् का कारण है। यहॉ यथार्थत यदि देखा जाय तो शङ्कर–मत और वाचस्पति मत मे कोई स्पष्ट अन्तर नहीं दिखाई देता। यह स्पष्ट होता है कि वाचस्पति मिश्र ने केवल शङ्कर के मत का अधिक स्पष्टीकरण कर दिया है। शङ्कर और वाचस्पति दोनो ही मायोपाधिक ब्रह्म को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण मानते है। यथार्थत शुद्ध ब्रह्म कारण–कार्य से परे है।[1]

वाचस्पति के मत मे जीवाश्रित अविद्या से विषयीकृत ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है तथा माया सहकारिणी कारण है। जीवाश्रिता विद्या विषयीकृत ब्रह्म ही जगद्–आकार मे विर्वतमान होता है। इस प्रकार माया अकारण होते हुये भी जगत का सहकारी कारण है। परन्तु भामती मे कई स्थलो पर वाचस्पति मिश्र ने शङ्कराचार्य की आलोचना भी की है। उदाहरणार्थ– ब्रह्मसूत्र १/१/३१ के भाष्य मे शकराचार्य ने त्रिविध ब्रह्मोपासना का वर्णन किया है– प्राणधर्मेण, प्रज्ञाधर्मेण और स्वधर्मेण इसमे वाचस्पति ने कहा– प्राणोपासना विधेय है विधेय के भेद से विधि मे वाक्यभेद स्फुट है।

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' सूत्र मे भाष्यकार ने 'अथ्' का अर्थ 'आनन्तर्य' किया है किन्तु वाचस्पति मिश्र ऐसा नही मानते है वे कहते है– <u>'न वयम् आनन्तर्यार्थता</u>

---

[1] गगाधरेन्द्र सरस्वती ने वेदान्त सूक्त मजरी मे वाचस्पति मिश्र के मत को इस प्रकार व्यक्त किया ह–
ब्रह्मैवजीवाश्रितयाऽविद्यया विषयीकृतम। वाचस्पतिमते हेतुर्माया तु सहकारिणी

व्यसनितया रचयामह, किन्तु ब्रह्म जिज्ञासा हेतु भूतपूर्व प्रकृत सिद्धय। न तावत् यस्य कस्याचिद् अत्र आनन्तर्यमिति वक्तव्य, तस्य अभिधानमन्त रेणाऽपि प्राप्तत्वात्।' अर्थात् ब्रह्मजिज्ञासा जिसके अनन्तर उत्पन्न होने वाली कही जाती है उसके बिना भी सभव है उसका कोई नियतपूर्ववर्ती हेतु नही है, ऐसा वाचस्पति मानते है। परन्तु भाष्यकार उसके नियत पूर्ववर्ती हेतुओ को स्वाध्याय तथा साधनचतुष्टय के रूप मे बताते है। इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि वाचस्पति ने शङ्कराचार्य के मतो की समालोचना निष्पक्षता पूर्वक की है। वे अपनी आलोचनाओ के द्वारा ही अद्वैतवेदान्त का विकास करने मे सफल हुये है। निसन्देह वे एक महान् समीक्षक थे उनकी समीक्षा पद्धति अनुसन्धेय है।

भामती प्रस्थान और विवरण प्रस्थान का तुलनात्मक अध्ययन

भामती प्रस्थान और विवरण प्रस्थान कुछ बिन्दुओ को लेकर अपने अलग–अलग दृष्टिकोण रखते है। इन प्रस्थानो मे, प्राय तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर मुख्य भेद दिखाई देते है– जो निम्न है–[1]

भामती प्रस्थान	विवरण प्रस्थान
१ श्रवण मे कोई विधि नही है।	१ श्रवण मे नियम विधि है।
२. जीवाश्रित अविद्या का विषय ब्रह्म जगत् का कारण है।	२ ईश्वर जगत् का कारण है।
३. जीव ब्रह्म का अवच्छेद है।	३ जीव ईश्वर का प्रतिबिम्ब है।
४ अविद्या का आश्रय जीव तथा विषय ब्रह्म है।	४ अविद्या का आश्रय और विषय दोनो ब्रह्म है।
५. मन एक इन्द्रिय है।	५ मन इन्द्रिय नही है।
६ श्रवण–मनन और निदिध्यासन से	६ महावाक्य से आत्मसाक्षात्कार होता

[1] प० बल्देव उपाध्याय– सस्कृत वाङ्गमय का वृहद इतिहास दशमखण्ड वेदान्त– पृ० ६३

सस्कृत मन से आत्मसाक्षात्कार होता है। शब्द से केवल परोक्ष ज्ञान होता है।	है शब्द से अपरोक्ष ज्ञान होता है। यह मत शब्द परोक्षवाद है।
७ अविद्या अनेक है वह प्रतिजीव भिन्न है।	७ अविद्या एक है।
८ जीव अनेक है। नाना जीववाद है।	८ जीव एक है। एक जीववाद है।
६ ईश्वर अनेक है।	६ ईश्वर एक है। वह बिम्बभूत है।
१० ईश्वर कल्पित है 'मायिन तु महेश्वरम्' (श्वेताश्वतर)	१० ईश्वर परम सत् है।
११ याग आदि कर्म विविदिषा के साधन है ज्ञान नही।	११ याग आदि कर्म ज्ञान के साधन है,
१२ सन्यास मे ज्ञान की अगता अदृष्ट के द्वारा है।	१२ सन्यास मे ज्ञान की अगता दृष्ट द्वारा है।
१३ सभी श्रुतिया प्रत्यक्ष से बलवान नही है किन्तु तात्पर्यवती श्रुति प्रत्यक्ष से बलवान् है जो अन्य श्रुतिया है वे अर्थवाद मात्र है।	१३ तात्पर्यवती श्रुतियॉ भी प्रत्यक्ष से बलवान नही है उनका अर्थ लक्षणा द्वारा ही किया जाता है।
१४ दृष्टि– सृष्टिवाद द्वारा जगत की व्याख्या की जाती है।	१४ सृष्टिदृष्टिवाद द्वारा जगत् की व्याख्या की जाती है।
१५ निवृत्तकरण प्रक्रिया मान्य है इससे स्पष्ट है कि पञ्चीकरण नामक ग्रन्थ वाचस्पति के विवरण मत से आचार्य शड्कर कृत नही है।	१५ पचीकरण प्रक्रिया मान्य है इस मत को वार्तिक प्रस्थान की भॉति विवरण प्रस्थान भी मानता है।

अविद्या या माया

माया, अविद्या, अज्ञान, अध्यास, आरोप, विवर्त, भ्रान्ति, भ्रम, सदसदनिर्वचनीयता

आदि शब्दो का प्रयोग वेदान्त मे प्राय पर्यायो के रुप मे किया जाता है।

भाष्यकार ने माया शक्ति को ''अविद्यात्मिका" कहकर माया और अविद्या मे अभेद बतलाया है। इसी अविद्या सिद्धान्त के आधार पर ही अद्वैताचार्य जगत्सृष्टि की व्याख्या प्रस्तुत करते है।

किन्तु शड्करोत्तर अद्वैतवेदान्त दर्शन मे माया और अविद्या को लेकर दृष्टिकोण भिन्न–भिन्न है। मण्डन मिश्र जीव को अविद्या का आश्रय और ब्रह्म को अविद्या का विषय मानते है। वे दृष्टि–सृष्टिवाद के पोषक हैं। विशुद्ध विज्ञान स्वरूप ब्रह्म अविद्या का आश्रय नही हो सकता है जीव ही अविद्या का आश्रय है, यद्यपि जीव स्वय अविद्या का कार्य है। अविद्या स्वय सद्सद्निर्वचनीय अत उसका जीव से सम्बन्ध भी अनिर्वचनीय है। अविद्या का स्वभाव स्वय विरोधात्मक है। यदि उसमे विरोध न हो तो वह सत् वस्तु बन जायेगी। अविद्या और जीव को बीज और अड्कुर के समान अन्योन्याश्रित और अनादिचक्रवत् माना गया है। जीवो मे अविद्या नैसर्गिक और विद्या आगन्तुक है।[1] अविद्या के आवरण और विक्षेप दो शक्तियो को मण्डन मिश्र दो रूप मानते है।

वाचस्पति मिश्र भी ब्रह्म को <u>'अविद्या द्वितय सचिव'</u> कहते है।[2] इसका अर्थ है– मूला अविद्या और तूला अविद्या। अविद्या का एक रूप मानसिक मानते है जिसे टीकाकार अमलानन्द ने 'पूर्वापूर्व भ्रमसस्कार' बताया है। जीव का कारण भ्रमसस्कार है और इस भ्रम सस्कार का कारण है <u>पूर्वापूर्वभ्रमसस्कार</u>। इस प्रकार पूर्वापूर्व भ्रम सस्कार की अनादि परम्परा मानसिक अविद्या है। अविद्या का दूसरा रूप वैषयिक मानते है– जो जीव तथा जगत का उपादान कारण है। यह अविद्या, भावरूप, अनादि और सदसद्

---

[1] ब्रह्मसिद्धि– पृ० ६–१२

[2] भामती– मगलाचरण।

विलक्षण है। अविद्या का विषय ब्रह्म है क्योकि वह ब्रह्म को आरोपित करके उस पर प्रपञ्च का आरोप करती है। अविद्याद्वितय कहकर वाचस्पति मिश्र ने यह सिद्ध किया है कि अविद्या एक रूप नही है क्योकि एकरूप केवल ब्रह्म है और अविद्या ब्रह्म से भिन्न है।

मण्डन मिश्र और वाचस्पति मिश्र के इस उपरोक्त कथन से सुरेश्वराचार्य और पद्मपादाचार्य सहमत नही है कि अविद्या का आश्रय जीव है या कि अविद्या मानसिक भ्रान्ति है।

सुरेश्वराचार्य और पद्मपादाचार्य का मन्तव्य है कि ब्रह्म ही अविद्या का आश्रय और विषय दोनो है। इनके अनुसार अविद्या का आश्रय जीव नही हो सकता क्योकि वह स्वय अविद्या जन्य है। अविद्या मानसिक भ्रम नही हो सकती क्योकि वह जीव और जगत दोनो का उपादान कारण है। इस प्रकार वाचस्पति मिश्र के अविद्या सिद्धान्त को अनेक जीवाश्रित ब्रह्मविषयक–अविद्यावाद कहा जाता है। इस मत मे एक जीव के मुक्त होने पर ससार का उच्छेद नही होता और ससार का उच्छेद न होने से अनिर्मोक्ष प्रसग नही होता है अतएव इनका सिद्धान्त अन्योन्याश्रय दोष से मुक्त है। ये जीव और अविद्या के पारस्परिक सम्बन्ध मे आश्रयाश्रयि भाव मानते है और इसके विपरीत ईश्वर और अविद्या मे वे विषय–विषयि भाव को स्वीकार करते है।

इस प्रकार शङ्करोत्तर भी कुछ अद्वैत वेदान्ती अविद्या और माया को एक ही मानते है तथा आवरण और विक्षेप उसकी दो शक्तिया स्वीकार करते है किन्तु कुछ अद्वैत वेदान्ती आवरण शक्ति को अविद्या और विक्षेप शक्ति को 'माया' मानते है। विमुक्तात्मुनि (१२०० ई०) मानते है कि अविद्या का दुर्घटत्व उसका भूषण है, दूषण नही है क्योकि अविद्या किसी प्रकार विरोध मुक्त हो सके तो उसका अविद्यात्त्व ही दुर्घट हो

जायेगा।[1] विघारण्यस्वामी अविद्या का लक्षण 'असाधारण मानयोगाऽसहिष्णुत्व' को बताया है।[2]

चित्सुखाचार्य अज्ञान को अनादि, भावरूप विज्ञाननिरस्य अज्ञान बताया है। चित्सुखाचार्य यह भी कहते है कि अविद्या भावाभावविलक्षण ही हे किन्तु उसे उपचार वश उसे भावरूप इसलिये कह दिया जाता है कि वह अभावरूप नही है।[3]

अज्ञान के सम्बन्ध मे विमुक्तात्मा ने एक अति महत्वपूर्ण सिद्धान्त को जन्म दिया है। विमुक्तात्मा अज्ञान की अनेकरूपता को मानते हे उनके अनुसार प्रत्येक विषय मे उतने ही अज्ञान हो सकते है जितने रूपो मे उस विषय का प्रत्यक्ष सभव होता है विमुक्तात्मा आगे यह भी कहते है कि किसी वस्तु के विषय मे उत्पन्न हुआ अज्ञान यदि नष्ट हो जाता है तो इससे मूल अविद्या का उच्छेद नही होता, अपितु उसके अश का ही उच्छेद होता है। सभवत यही कारण है कि किसी एक वस्तु के विषय मे उससे सम्बद्ध अनेक अज्ञान उत्पन्न होते है। यथा' रस्सी मे किसी को सर्प का भान होता है तो किसी को दण्ड रूप मे या किसी को धारा आदि रूपो मे प्रतीत होती है। इस प्रकार विमुक्तात्मा अज्ञान की अनेकरूपता को मानते है।

दृष्टिसृष्टिवाद

दृष्टि सृष्टिवाद अद्वैतवाद का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है किन्तु इसका विरोधीमत सृष्टि दृष्टिवाद है जिसे विवरण प्रस्थान मानता है। दृष्टि सृष्टिवाद का सम्बन्ध भामती प्रस्थान से है और इसे वाचस्पति मिश्र एक मतवाद का दर्जा प्रदान किया। यद्यपि दृष्टि सृष्टिवाद का बीज गौडपाद के आगमशास्त्र तथा योगवसिष्ठ मे भी मिलता है। मण्डन मिश्र ने ब्रह्मसिद्धि मे जीवाश्रित अविद्या के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया और मण्डन

---

[1] दुर्घटत्वम विद्याया भूषण न तु दूषणम। कथचिद घटमानत्वेऽविद्यात्व दुर्घत भ्वन।। इष्टसिद्धि १/१४०

[2] विवरण पमेय सगह पृ० १७५, विचारासहत्व चाविद्याया भलकार एव।

अनादि भावरूप यद् विज्ञानेन विलीयते। तदज्ञानमिति पाज्ञा लक्षण सपचक्षत तत्वपदीपिका– पृ० ५७

मिश्र से प्रभावित होकर वाचस्पति मिश्र ने दृष्टि सृष्टिवाद का विकास किया। वाचस्पति मिश्र के समय मे ही अनेक जीवाश्रित भिन्नावरण शक्तिक एक अविद्यावाद का प्रचलन हो चुका था जिसके अनुसार जीव अनेक है और वे ही अविद्या के आश्रय हे।

वाचस्पति मिश्र ने इस प्रसग मे अनेक जीवाश्रित अनेक–अविद्यावाद को अग्रसर किया। ये अविद्या के दो रुप मानते है– (१) मूला अविद्या– जो वासनामय है और कारण रूप है और (२) तूला अविद्या जो कार्य प्रपञ्च रुप है। दोनो प्रकार की अविद्या अनेक है अर्थात् प्रतिजीव भिन्न है। परवर्ती अद्वैत वेदान्तियो ने वाचस्पति के इस मत पर न्याय का प्रभाव दिखलाया है क्योकि वेदान्त मे 'सामान्य' को स्वीकार नही किया जाता है।

अमलानन्द (१३वी शताब्दी) भी दृष्टि सृष्टिवाद सिद्धान्त के समर्थक हे। इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त प्रपञ्च शून्य ब्रह्म की अवगति के उपाय के रूप मे ही श्रुतियो मे सृष्टि और प्रलय का विवेचन किया गया हे। किन्तु ध्यातव्य है कि श्रुतिया मे सृष्टि का प्रतिपादन परमार्थिक रूप से नही किया गया है। जहा आरोप न्याय के द्वारा यदि प्रतिपादन हुआ है तो वहा अपवाद न्याय के द्वारा उसका खण्डन भी हुआ है। इस प्रकार दृष्टि सृष्टिवाद सृष्टि को तात्विक न मानकर दृष्टिकालिक ही मानता है।

अन्तत जीवाश्रित अविद्या का सिद्धान्त प्रकाशानन्द के दर्शन मे एक जीवाश्रित एक अविद्यावाद का रूप लिया यह वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली के लेखक है। उन्होंने एकजीववाद और दृष्टि सृष्टिवाद को एक साथ जोड दिया। उनका दृष्टि सृष्टिवाद दृष्टि ही सृष्टि है ऐसा मानता है। इसके पहले के दृष्टिसृष्टिवाद यह मानते थे कि सृष्टि–दृष्टि सम–सामयिक है और दृष्टि ही सृष्टि नही है इस प्रकार वाचस्पति मिश्र एक प्रत्ययवादी दार्शनिक सिद्ध होते है। किन्तु वे बर्कले के "सत्ता ही दृश्यता है" (दृष्टि ही सत्ता है) को नही मानते थे किन्तु प्रकाशानन्द का सिद्धान्त बर्कले के सिद्धान्त के

ही समान है, क्योकि दृष्टि ही सृष्टि है, ऐसा वे मानते है। ब्रह्माश्रित अविद्या के मत को सर्वाज्ञात्मामुनि ने एकचिदाश्रित एक अज्ञानवाद के रूप मे परिणत किया। जो कि प्रकाशानन्द के एकजीववाद एक अविद्यावाद के सदृश है।

इस प्रकार यद्यपि दृष्टि सृष्टिवाद और सृष्टि दृष्टिवाद में तथा नानाजीववाद और एक जीववाद मे परस्पर द्वन्द्व है फिर भी इन दोनो पक्षो की परिणति अन्ततोगत्वा एक ही सिद्धान्त मे हो जाती है दोनो ही एक जीववाद और अजातवाद को (मायावाद को) अक्षरश स्वीकार करते है। अत अद्वैतवेदान्त का मुख्य सिद्धान्त एक जीववाद ही है, नानाजीववाद नही। ऐसा निष्कर्ष अनेक आचार्यो ने अपने–अपने ग्रन्थो मे दिया है।

परिणामवाद और विवर्तवाद

शाङ्कर अद्वैत वेदान्त की यह स्पष्ट विचारधारा है कि यह जगत मिथ्या हे प्रपच मात्र है और यह ब्रह्म का विवर्त है। शाङ्कर मत मे इसे माया का परिणाम भी माना गया है। धर्मराजाध्वरीन्द्र ने– "उपादान विषम सत्ताक कार्यापत्ति" को विवर्त कहा है। अप्पय दीक्षित ने उपादान कारण के समान धर्मो के अन्यथाभाव को परिणाम और उसके विलक्षण अन्यथाभाव को विवर्त कहा है।[1] सीधे अर्थ मे विलक्षण भाव को विवर्त कहा जा सकता है। यथा– रज्जु मे सर्प की प्रतीति विवर्त है। कारण गुणो को लेते हुये परिवर्तन को परिणाम कहा जाता है। यथा दूध से दधि का बनना परिणाम हे। जिसे बाद मे विशिष्टाद्वैतवादी रामानुज ने स्वीकार किया इनके अनुसार सृष्टि ईश्वर का परिणाम है।

शब्दापरोक्षवाद और अविद्यानिवृत्ति

"तत्वमसि" आदि महावाक्यो द्वारा अथवा "सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म" इत्यादि वाक्यो

---

[1] सिद्धान्तलेश सग्रह पृ० ५८–६०

द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है। ऐसा विवरण सम्प्रदाय का मत है। अर्थात् वेदान्तवाक्य जन्य अपरोक्ष ज्ञान से ही अज्ञान के नाश होने पर ही अनर्थो से मुक्ति सभव है।

भामतीप्रस्थान वेदान्त वाक्य जन्यज्ञान को अपरोक्ष ज्ञान नही स्वीकार करता। उनके अनुसार "तत्वमसि" आदि वेदान्तवाक्यजन्य ज्ञान शब्दज्ञान है और शब्दज्ञान परोक्षज्ञान होता है। वेदान्तवाक्य श्रवण के अनन्तर कर्म और उपासना की सहकारिता से अविद्यानिवृत्ति होती है।

विवरण प्रस्थान के अनुसार शब्द से ही अपरोक्ष ज्ञान होता है। वह "दशमस्त्वमसि" वाक्य से खोया हुआ दशम व्यक्ति के अपरोक्ष का उदाहरण प्रस्तुत करते है।

शब्दापरोक्षवाद के पक्ष मे विवरण सम्प्रदायाचार्यो ने अनुमानादि प्रमाण भी प्रस्तुत किये है[1] किन्तु भामती प्रस्थान के आचार्यो ने शब्दापरोक्षवाद का प्रत्याख्यान करते हुये विवरण सम्प्रदाय द्वारा प्रस्तुत अनुमान मे दोषो का प्रदर्शन किया है। परन्तु विवरणपन्थी आचार्य चित्सुख ने अनेक युक्तियो और तर्को से उन दोषो का निराकरण किया है। उनका कहना है कि "दशमस्त्वमसि" कहने पर यहा तक अपरोक्ष ज्ञान होता है कि अन्ध व्यक्ति को भी सुनते ही दशम व्यक्ति के रूप मे अपना साक्षात्कार हो जाता है।

सुरेश्वर का अद्वैतवाद और शङ्कराचार्य का अद्वैतवाद

आचार्य सुरेश्वर का अद्वैत–विषयक सिद्धान्त भगवत्पाद शङ्कर के सिद्धान्तो से भिन्न रहा है। शङ्कर के मत मे आत्मदर्शन के तीन साधन है– श्रवण, मनन, निदिध्यासन। जैसा कि बृहदारण्यकोपनिषद् मे याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी से कहा है– 'आत्मावाऽरे द्रष्टव्य श्रोतब्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि।'

---

[1] विमत शाब्दज्ञानम् अपरोक्षम अपरोक्षविषयात्वात सुखज्ञानवत (चित्सुखी पृ० ३३२)

इन तीनो साधनो के पूर्वापर के सम्बन्ध मे आचार्यो मे मतभेद है। वाचस्पतिमिश्र मानते है कि श्रवण, मनन, निदिध्यासन इसी क्रम से ब्रह्मसाक्षात्कार का हेतु है। विवरण प्रस्थान मानता है कि ब्रह्मसाक्षात्कार का साधन केवल श्रुतिवाक्य का श्रवण है। श्रवण प्रधानकारण है तथा मनन तथा निदिध्यासन गौण कारण है तथा परम्परया हेतु है।

शाङ्करमत मे केवल ज्ञान को ही ब्रह्मसाक्षात्कार का हेतु माना गया है। किन्तु कुछ आचार्यो ने जैसे ब्रह्मदत्त तथा मण्डन मिश्र ने कर्मसमुच्चित ज्ञान को ब्रह्मसाक्षात्कार का कारण माना है। इसको अभ्यास तथा प्रसख्यान कहते है। 'प्रसख्यान' से तात्पर्य है उपासना, आराधना या अभ्यास करना है।

साक्षी या प्रमाता

साक्षी अद्वैत वेदान्त का एक विशिष्ट तत्त्व है जो आत्मा या ब्रह्म, ईश्वर और जीव इन तीनो से भिन्न है। साक्षी परब्रह्म के समान निर्गुण, निर्विशेष और नित्य चेतन्य है जो स्वत सिद्ध और स्वप्रकाश है। विशुद्ध आत्म–तत्त्व के सदृश ही यह साक्षी समस्त ज्ञान और अनुभव का अधिष्ठान है। परब्रह्म या आत्म–तत्त्व निरुपाधिक है, किन्तु साक्षी सोपाधिक है। यद्यपि वह किसी भी प्रकार की उपाधि से लिप्त नही होता है फिर भी वह सोपाधिक है। साक्षी जीव और ईश्वर मे अभिव्यक्त होता है। प्रत्येक जीव मे उसका साक्षी विद्यमान रहता है। साक्षी शुद्ध नित्य चैतन्य और निर्गुण, निर्विकार द्रष्टा हे,[1] जबकि जीव कर्ता और भोक्ता है। जीव और साक्षी का अन्तर मुण्डकोपनिषद् मे बताया गया है कि दो पक्षी साथ–साथ सखा भाव से एक ही वृक्ष पर रहते है उसमे से एक स्वादु फल को चाव से खाता हे किन्तु दूसरा बिना खाये केवल देखता रहता है।[2] वह उपनिषद् वाक्य जीव और साक्षी का अन्तर स्पष्ट करता है।

---

[1] साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च (श्वेता० उप०)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्ष परिषस्वजाते।
तयोरन्य पिप्पल स्वाद्वत्ति अनश्नन्न्योऽभिचाकशीति।। (मुण्डको० ३/१/१)

साक्षी के विषय मे भी शड्करोत्तर अद्वैतियो मे मतभेद है। कुछ विद्वान् प्रति शरीर मे भिन्न साक्षी को मानते है कुछ विद्वान सब शरीरो मे एक ही साक्षी स्वीकार करते है। कुछ विद्वान साक्षी को जीव साक्षी और 'ईश्वर साक्षी' इन द्विविध रूपो मे मानते है।

आचार्य चित्सुख साक्षी एव प्रमाता मे विभेद मानते है वे साक्षी को स्वतत्र एव द्रष्टा मात्र मानते है इसके विपरीत प्रमाता, आचार्य चित्सुख के अनुसार ज्ञाता है तथा ज्ञान के साधनो के कार्य के अधीन है।[1]

यह कहा जा सकता है कि व्यवहारत <u>ब्रह्म, ईश्वर, साक्षी और जीव मे ही भेद दिखाई यह परमार्थत भेद नही है। परमार्थिक दृष्टिकोण से सब 'परब्रह्म' ही है।</u>

ईश्वर और जीव

अद्वैत वेदान्त की मान्यता है कि ईश्वर और जीव दोनो ब्रह्म ही है माया या अविद्या के कारण ब्रह्म की प्रतीति ईश्वर और जीवो के रूप मे होती है और ईश्वर की प्रतीति भी जीव की दृष्टि से ही है। शाड्कर वेदान्त मे ईश्वर और जीव अभिन्न है भेद केवल व्यवहारिक है परमार्थिक नही। <u>परमार्थत – 'जीवो ब्रह्मैव नाऽपर</u> ।' ईश्वर मे माया या अविद्या की आवरण शक्ति या अज्ञान का सर्वथा अभाव है, जीव माया या अविद्या की आवरण और विक्षेप दोनो शक्तियो से सम्बद्ध है। जीव की उपाधि औपचारिक है वह वस्तुत ब्रह्म ही है। जीव का जीवत्व अविद्याजन्य भ्रान्ति है जीव का बन्धन और मोक्ष व्यवहारिक है परमार्थिक नही।

यद्यपि शड्करोत्तर अद्वैतवेदान्तियो मे ईश्वर और जीव के विषय मे मतभेद है जो प्रतिबिम्बवाद, एकबिम्बवाद, अवच्छेदवाद तथा आभासवाद के रूप मे प्रतिपादित हुये है। आभासवाद सिद्धान्त के प्रतिपादक सुरेश्वराचार्य है। वाचस्पति मिश्र ने अद्वैतवाद का

---

[1] तत्व प्रदीपिका (चतुर्थ परिच्छेद) पृ० ३८१–३८२ एव इस पर दखिये नयन्‍ प्रसादिनी टीका (निर्णय सागर बम्बइ १६३१)

प्रतिपादन अवच्छेदवाद के आधार पर किया है तथा प्रतिबिम्बवाद का प्रतिपादन पद्मपाद ने किया। सक्षिप्त रूप मे यह है कि—एक सूर्य या चन्द्र का जलाशयो मे या विविध जल पात्रो मे पडने वाला प्रतिबिम्ब प्रतिबिम्बवाद का उदाहरण है। महाकाश और घटाकाश का उदाहरण अवच्छेदवाद का है जल और तरगे तथा रज्जुसर्प, शुक्तिरजतादि आभासवाद के उदाहरण है। ब्रह्म का माया मे प्रतिबिम्ब ही ईश्वर कहा जाता है और अविद्या का अन्त करण मे प्रतिबिम्ब जीव है। मायावच्छिन्न ब्रह्म ईश्वर है और अविद्या या अन्त करणवच्छिन्न ब्रह्म जीव है।

जीव और ईश्वर के सम्बन्ध मे शङ्कराचार्य का कोई एक निश्चत मत नहीं है उनके मत से दोनो अविद्योपाधिक और काल्पनिक है। उनके मत मे प्रतिबिम्बवाद अवच्छेदवाद और आभासवाद के बीज है जिनका विकास परवर्ती अनुवायियो ने किया।

इन तीनो वादो के मूल ब्रह्मसूत्र— अतएव चोपमा सूर्यादिवत् (ब्र० सू० ३/२/१८) अम्बुग्रहणात्तु न तथात्वम् (वही ३/२/१६) बृद्धिह्रासभाक्त्वमन्तर्भावादुभयसामञ्जस्यदेवम् (वही ३/२/२०) मे तथा उनके शाङ्कर भाष्य मे प्राप्त होते है। प्रकाशादिवन्नैव पर (वही २/३/४६) तथा आभास एव च (वही २/३/५०) इन दोनो सूत्रो मे और इनके शाङ्कर भाष्य मे स्पष्ट रूप से उक्त तीनो वादो का निर्देश है। इन तीनो सूत्रो के शाङ्कर भाष्य मे कहा गया है कि सौर या चन्द्र का प्रकाश जैसे आकाश मे फैलकर विद्यमान है, फिर भी अगुलि आदि का उपाधि के सम्बन्ध मे उस प्रकाश को सीधा तथा टेढा देखा जाता है, अथवा जैसे पानी के पात्र मे प्रतिबिम्बित सूर्य कपते हुये जल के सम्पर्क से कपता हुआ दिखाई पडता है पर वस्तुत सूर्य कापता नही है अथवा जैसे जल मे सूर्य का आभास लक्षित होता है, उसी प्रकार जीव के दु खी होने पर भी ईश्वर मे दु ख का सम्बन्ध नही होता। इन तीनो उदाहरणो मे पहले मे अवच्छेदवाद का सकेत दिया गया है। इन्ही के आधार पर श्री

वाचस्पति मिश्र ने अवच्छेदवाद का श्री पद्मपादाचार्य तथा श्री प्रकाशात्मयति ने प्रतिबिम्बवाद का तथा आचार्य सुरेश्वर ने आभासवाद का समर्थन किया है।

'आभास' शब्द का अर्थ ब्रह्मसूत्र अध्यास भाष्य मे तथा इसकी व्याख्या 'भामती' तथा 'परिमल कल्पतरु' मे स्पष्ट रूप से की गयी है। अध्यास का लक्षण आचार्य शङ्कर ने 'स्मृतिरूप परत्र पूर्व दृष्टावभास' (अध्यास)। इस पर भामतीकार ने कहा– अवसन्नोऽवमतो वा भासोऽवभास' सुरेश्वराचार्य ने 'आभास' को चिदाभास, चिद्बिम्ब और कूटस्थाभास शब्द से भी अभिहित किया है।' प० 'बलदेव उपाध्याय' ने अपने ग्रन्थ "सस्कृत वाङ्गमय का वृहद इतिहास" 'दशम खण्ड वेदान्त" मे इसका विस्तृत वर्णन किया है। जहा तक आभासवाद का प्रश्न है इस सिद्धान्त के अनुसार मूलतत्त्व (ब्रह्म) एव आभासमात्र द्वैतरूप जगत मे अभिन्नत्व नही है। सुरेश्वराचार्य का यह मानना है कि आभासवाद के अनुरूप अविद्या के कारण मूलसत्य ब्रह्म मे जिस व्यवहारिक जगत् की प्रतीति होती है वह आभासमात्र होने के कारण सत्य नही है। जब कि प्रतिबिम्बवाद की दृष्टि से प्रतिबिम्ब सर्वदा सत्य होता है। अज्ञान के कारण केवल असत्य दिखलाई पडता है। आभासवाद के अनुसार व्यवहारिक जगत् की सत्यता भी तभी तक कही जा सकती है जब तक कि अविद्या की निवृत्ति नही हो जाती है।

जिस प्रकार मूर्च्छित अवस्था के व्यक्ति को उस समय की ऐसी वस्तुओ की सत्यता प्रतीत होती है जो उसके सम्मुख नही उपस्थित होती और जब मूर्च्छा हट जाती है तब उसे मूर्च्छाकाल की वस्तुए मिथ्या प्रतीत होने लगती है। उसी प्रकार अज्ञान के कारण व्यक्ति को जगत के समस्त क्रियाकलाप सत्य प्रतीत होते है किन्तु परमार्थ बोध होने पर जगत् के समस्त व्यवहार मिथ्या प्रतीत होते है। इस प्रकार सुरेश्वराचार्य के मत मे जगत की सत्यता भी आभासमात्र है, वास्तविक नही। किन्तु बाद मे सुरेश्वराचार्य के अनुवायियो ने उनके आभासवाद मे व्यवहारिक सत्यता का

मिश्रण करके सुरेश्वराचार्य को प्रतिभासिक, व्यवहारिक एव परमार्थिक सत्ताओ का समर्थक सिद्ध किया था। श्री सुरेश्वराचार्य के साक्षात् शिष्य होकर भी सर्वज्ञात्ममुनि प्रतिबिम्बवाद के पक्ष मे है और आभासवाद को नही स्वीकार करते है। इस प्रकार सुरेश्वराचार्य के वार्तिक प्रस्थान मे छ तत्वो को अनादि माना जाता है– जीव, ईश्वर, शुद्ध चैतन्य, जीवेश्वर भेद, अविद्या और शुद्ध चेतन्य–अविद्या सम्बन्ध।[1]

वाचस्पति मिश्र अवच्छेदवाद के द्वारा ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध की व्याख्या करते है। ब्रह्म निरस्तोपाधि जीव है और जीव अविद्योपाधि ब्रह्म है। अवच्छेदवाद के समर्थको ने "आकाश" के उदाहरण द्वारा इसे अधिक स्पष्ट किया है। जिस प्रकार एक ही आकाश को सासारिक लोग घट एव मठ के सम्बन्ध से घटाकाश एव मठाकाश कहकर पुकारते है उसी प्रकार एक ही ब्रह्म जीव की अविद्योपाधि के कारण ससीमता एव अविच्छिन्नता को प्राप्त होता है। अविद्या प्रत्येक जीवमठ मे आश्रित रहती है। यथा घट एव मठ रूपी उपाधियो के समाप्त हो जाने पर घटाकाश–मठाकाश आदि भेद नष्ट हो जाते है उसी प्रकार अविद्योपाधि के हट जाने पर जगत मे परिलक्षित होने वाले भेद हट जाते है और मात्र ब्रह्म ही शेष रह जाता है।

अवच्छेदवादी के मत मे अन्त करण–अविच्छिन्न चेतन ही जीवात्मा है। इस मत मे जीव घटाकाश के समान तथा ब्रह्म महाकाश के समान है। अपने मत के समर्थन मे अवच्छेदवादी "अशोनाना व्ययदेशात्" (ब्रह्मसूत्र २/३/४३) यह सूत्र प्रस्तुत करता है। जीव की अविद्योपाधि के कारण अनवच्छिन्न एव असीम ब्रह्म अवच्छिन्नता एव ससीमता को प्राप्त होता है। उपनिषदो मे भी यत्र–तत्र जीव को ब्रह्माग्नि के स्फुलिग के रूप मे वर्णन किया गया है। इस प्रकार अवच्छेदवाद मान लेने पर ब्रह्मजीव मे उपास्यउपासक भाव भी बन सकता है।

---

[1] जीव ईशो विशुद्धा चित् तथा जीवेशयोर्भिदा। अविद्या तच्चितोर्योग षडस्यकामनादय ।। (यह श्लोक परम्परा से आचार्य सुरेश्वराकृत माना जाता है)

आचार्य सुरेश्वर के आभासवाद एव वाचस्पति मिश्र के अवच्छेदवाद मे भेद मुख्य रूप से दृष्टव्य है। अवच्छेदवादी मानते है कि सर्वव्यापी एव असीम ब्रह्म ही जीव की अविद्या की अनन्त उपाधियो के कारण अवच्छिन्न एव ससीम रूप को प्राप्त होता है। इस प्रकार अवच्छेदवाद के अनुसार अवच्छेद (ब्रह्म का अवच्छिन्न रूप मे दर्शन) तो मानसिक धारणा मात्र होने के कारण मिथ्या है। परन्तु जो (ब्रह्म) अवच्छिन्न रूप मे प्रतीत होता है वह तो सर्वथा अनवच्छिन्न एव सत्य ही है। इसके विपरीत आभासवाद के अनुसार जगत की सत्यता का आभास किसी प्रकार भी सत्य नही है।

जहा तक प्रतिबिम्बवाद का प्रश्न है इसके अनुसार बिम्ब (मूलतत्त्व) एव प्रतिबिम्ब मे अभिन्नत्व है, परन्तु इसके विपरीत आभासवाद सिद्धान्त के अनुसार मूलतत्व (ब्रह्म) एव आभासवाद द्वैतरूप जगत् मे अभिन्नत्व नही है। किन्तु प्रतिबिम्बवाद यह मानता है कि अविद्या मे परमार्थ सत्य रूप ब्रह्म का जो प्रतिबिम्ब दिखाई पडता है वह ब्रह्म से पृथक न होने के कारण सत्य है, क्योकि प्रतिबिम्ब सर्वथा सत्य होता है यदि प्रतिबिम्ब असत्य दिखलाई पडता है या प्रतीत होता है तो इसका कारण केवल अविद्या है। क्योकि बिम्ब एव प्रतिबिम्ब के भेद दर्शन के कारण ही दृष्टा को प्रतिबिम्ब मिथ्या प्रतीत होता है, अभेद दर्शन के द्वारा नही। प्रतिबिम्बवादी जीव को शुद्ध चेतन का प्रतिबिम्ब मानते है और अपने मत के समर्थन मे 'आभास एव च' (ब्रह्मसूत्र २/३/५०), यह सूत्र प्रस्तुत करते है। इस सूत्र के अनुसार जीव ब्रह्म का आभास है, अर्थात् प्रतिबिम्ब है। ब्रह्म बिम्ब है, जीव प्रतिबिम्ब है। जिस प्रकार सूर्य और जलस्थित सूर्य के प्रतिबिम्ब मे भेद नही होता है उसी प्रकार ब्रह्म और ब्रह्म–प्रतिबिम्ब जीव मे भेद नही होता है। जिस प्रकार प्रतिबिम्ब भाव से सूर्य नाना हो सकता है उसी प्रकार नाना अन्तकरणो मे प्रतिबिम्बवत ब्रह्म भी नाना जीवरूप मे प्रतीत होता है। आचार्य सुरेश्वर बिम्ब और प्रतिबिम्ब को भिन्न न मानकर अभिन्न मानते है। इनके अनुसार प्रतिबिम्ब बिम्ब की

छाया होने के कारण आभास है। छाया सत्य नही होती मिथ्या होती है। इसका कारण ब्रह्म की छाया अर्थात् आभास ब्रह्म से भिन्न है और इस प्रकार प्रतिबिम्ब भी सत्य नही मिथ्या है। प्रतिबिम्बवादी आचार्य आभासवाद को स्वीकार नही करते हे क्योकि इनका मानना है कि जीव की व्याख्या प्रतिबिम्बवाद से ही अधिक सगत हो सकती है। दर्पण मे प्रतिबिम्बत मुख प्रतिबिम्ब वस्तुत मुख से पृथक वस्तु नही हे इस प्रकार बुद्धिदर्पण मे प्रतिबिम्बित चिद्प्रतिबिम्ब चिदात्मा से भिन्न नही है। यदि बिम्ब को प्रतिबिम्ब से अलग मान लिया जाय तो बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव ही नही बन सकता इसलिये बिम्ब को प्रतिबिम्ब से अलग नही मानना चाहिए। यदि मान भी लिया जाय तो "दर्पण मे मुख नही है" ऐसा करके बाध ज्ञान का उदय होता है तो उस समय मुख के साथ दर्पण का ही सम्बन्ध ज्ञात होता है। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि जिस प्रकार दर्पणगत मुख प्रतिबिम्ब ज्ञान–शून्य होता है उसी प्रकार जीव भी ज्ञान–शून्य होगा। प्रतिबिम्ब को चेतन नही मान सकते क्योकि प्रतिबिम्ब को चेतन मानने पर मुख मे चेष्टा हुये बिना ही प्रतिबिम्ब मे चेष्टा होने लगी। परन्तु मुख से चेष्ठा हुए बिना प्रतिबिम्ब मे चेष्ठा नही होगी जीव मे चैतन्य गुण जीव भाव के समय मे भी होता है इसके उत्तर मे कहा जा सकता है कि 'दृष्टान्त सर्वांश मे नही दिया जाता हे'। दर्पण मे स्थित मुख–प्रतिबिम्ब को मुख से भिन्न नही कहा जा सकता है क्योकि ऐसा कहने पर मुख के बिना भी प्रतिबिम्ब की स्थिति की आपत्ति होगी। कुछ अद्वेत वेदान्ती आक्षेप करते है कि प्रतिबिम्ब बोध पूर्णतया भ्रान्ति है। क्योकि जब प्रतिबिम्ब गृहीत होता है तब नेत्र–रश्मि दर्पण से टकराकर वापस आकर पुन बिम्ब–रूप मुख का ही ग्रहण कराती है ग्रहण मुख का ही होता है इसी कारण प्रतिबिम्ब विपरीत रुप से गृहीत होता है। प्रतिबिम्बवादी आचार्य अवच्छेदवाद पर भी आरोप करते है। इनके मत मे जब चैतन्य अन्त करण द्वारा परिच्छिन्न होता है तब वही परिच्छिन्न चैतन्य मृत्यु के पश्चात् नही रह

सकता है। इस प्रकार प्रतिबिम्बवादियो का कहना है कि अवच्छेदवाद मे जिस प्रकार अवच्छेद के गमना–गमन की आपत्ति होती है प्रतिबिम्बवाद मे ऐसा सभव नही होता है। प्रतिबिम्बवाद मे बिम्ब एक है इसलिये भिन्न–भिन्न अन्त करण रूप दर्पणो मे एक ही बिम्बभूत चैतन्य के नाना प्रतिबिम्ब बन सकते है, और नाना प्रतिबिम्ब एक बिम्ब से अभिन्न है। अत वे प्रतिबिम्ब अन्त करण भेद से नाना प्रतीत होने पर भी वस्तुत एक ही है। प्रकाशात्मायति के अनुसार ईश्वर बिम्ब स्थानीय है और जीव उसका प्रतिबिम्ब है। अविद्या मे चैतन्य का आभस ही जीव है। उनके अनुसार जीवेश्वर भेद साधक उपाधि अज्ञान हे। अज्ञान नाश होने पर ही जीव ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। ब्रह्म के प्रतिबिम्ब ग्रहण करने मे अविद्या ही समर्थ है। ईश्वर बिम्ब है तथा जीव उसका प्रतिबिम्ब है। अविद्या मे प्रतिबिम्ब अपने ही रूप–जीवो को देखकर सृष्टिलीला स्वतत्रतापूर्वक करता है।

विवरणानुसारी आचार्य बिम्ब को प्रतिबिम्ब से भिन्न मानने पर यह तर्क देते है कि 'अह ब्रह्मास्मि' एव "तत्वमसि" आदि वेदान्त वाक्यो मे प्रतिपादित जीव–ब्रह्मैक्य की सिद्धि कैसे होगी? इन तर्कवाक्यो मे जीव और ब्रह्म को अभिन्न ही कहा गया है इस प्रकार जीव ब्रह्म होने के कारण नित्य शुद्ध–स्वरूप है। ऐसे मे, यदि जीव को बिम्ब से भिन्न प्रतिबिम्ब मानकर मिथ्या कह देने पर श्रुतिवाक्यो की असगति होगी। इसलिये प्रतिबिम्ब को बिम्बाभिन्न मानना चाहिए तथा उसे सत्य मानना चाहिए।

आचार्यो ने बडी सूक्ष्म दृष्टि से इन तीनो वादो की समीक्षा की है। अवच्छेदवाद की समीक्षा मे उनका मानना है कि यथा अन्त करणावच्छिन्न चैतन्य जीव है उसी प्रकार घटाावच्छिन्न चैतन्य को जीव क्यो नही मानते? क्योकि जैसे आकाश घटावच्छिन्न होकर घटाकाश हो सकता है तो घटावच्छिन्न चैतन्य को जीव क्यो नही कहा जाता है? इसके उत्तर मे यह कहा जाता है कि अन्तकरण के स्वच्छ होने से

अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य ही जीव हो सकता है किन्तु इसमे स्वच्छत्व और अस्वच्छत्व विशेषण लगाने पर हठात् इसको प्रतिबिम्बवाद मानना पडेगा। श्री वाचस्पति मिश्र ने जीव को प्रतिबिम्बकल्प भी कहा है–

'तथापि तत्प्रतिबिम्ब कल्प जीव द्वारेण परस्मिन्नुच्यते।'(ब्र० सू० १/४/६)

इसीप्रकार प्रतिबिम्बवाद की समीक्षा मे भी आक्षेप लगाया गया है कि नीरूप चैतन्य का प्रतिबिम्ब नही पड सकता। इसके उत्तर मे कहा जाता है कि जैसे जल मे नीरूप आकाश का प्रतिबिम्ब पडता है वैसे ही नीरूप चैतन्य का भी प्रतिबिम्ब पड सकता है। इस प्रकार बिम्ब के साथ प्रतिबिम्ब के तादात्म्य या अभेद होने से और प्रतिबिम्ब के सत्य होने से प्रतिबिम्ब रूप जीव को कभी मुक्ति ही नही मिल सकती है। और यदि बिम्ब–प्रतिबिम्ब मे भेद माना जाय तो प्रतिबिम्ब मे चैतन्य नही बन पाता। इसके समाधान मे कहा जाता है कि बिम्ब से प्रतिबिम्ब का भेद प्रतीत होना केवल अध्यास है, प्रतिबिम्ब स्वरुपत सत्य है। इस सिद्धान्त से प्रतिबिम्ब जीव का चैतन्य और बन्ध मोक्ष बन जाते है।

आगे आभासवाद की समीक्षा मे कहा गया है कि यदि आभास मिथ्या है तब तो चिदाभास रूप जीव भी मिथ्या है। इस स्थिति मे न तो जीव का बन्धन बन पायेगा और न ही मोक्ष। वाचस्पति मिश्र ने ब्रह्मसूत्र के रचनानुपत्याधिकरण मे (२/२/६) की भामती मे प्रतिबिम्बवाद और आभासवाद दोनो पर यह आक्षेप किया हे कि इन दोनो वादो के मानने पर वेदान्त मे माध्यमिक मत का प्रवेश हो जायेगा और इस प्रकार के आभासवाद स्वीकार करने पर जीव का सर्वथा नाश हो जायेगा। इसके समाधान मे कहा गया है कि जिस प्रकार विम्ब भूत जीव से प्रतिबिम्बभूत अभिन्न हे या इन दोनो मे तादात्म्य है, उसी प्रकार चिदाभास चित् से अभिन्न नही है, भिन्न भी नही है ओर भिन्नाभिन्न भी नही है अपितु अनिर्वचनीय है। अतव आभास के अनिर्वचनीय होने से

चिदाभास जीव न तो मिथ्या है और न तो सत्य ही है। इस प्रकार बन्ध मोक्ष व्यवहार की उपपत्ति की जाती है विद्यारण्य स्वामी ने अपने ग्रन्थ पञ्चदशी (तृ० प्र० १५) मे और उनके शिष्य श्री रामकृष्ण तथा परम्परया शिष्य श्री अच्युतराम ने अपनी व्याख्या मे अवच्छेदवाद, प्रतिबिम्बवाद एव आभासवाद मे अन्तर न मानकर एक ही माना है। वास्तव मे जितना अन्तर भामती–प्रस्थान और विवरण प्रस्थान मे है उतना अन्तर वार्तिक प्रस्थान तथा विवरण प्रस्थान मे नही है। यही कारण है कि अनेक परवर्ती आचार्य वार्तिक प्रस्थान तथा विवरण प्रस्थान दोनो के अन्तर्गत रखे जा सकते है। तथापि सम्प्रदाय विद् के नाम पर सूत्र भाष्य वार्तिक विद् ही आते है और आभासवाद मुख्यत वार्तिक प्रस्थान का सिद्धान्त है। इस कारण विवरण–प्रस्थान से वार्तिक प्रस्थान को भिन्न माना जाता है।

सप्तम्–अध्याय

उपसहार

पूर्ववर्ती छ अध्यायो मे दर्शन का परिचय, दर्शन की मुख्य विधाओ तथा वेदो, उपनिषदो ब्राह्मण आरण्यक एव गीता आदि मे अद्वैत दर्शन के मूल बीज का वर्णन करने का प्रयास किया गया है। शड्करप्राग अद्वैतवाद मे योगवासिष्ठ का भी अपना महत्त्व है। जिसमे अद्वैतवेदान्त की पूर्व रूप–रेखा मिलती है। शडकराचार्य प्राग षोडश वेदान्ताचार्य तथा उनके सिद्धान्तो का भी वर्णन किया गया है। इन षोडश वेदान्ताचार्यों तथा उनके सिद्धान्तो का वर्णन किया गया। इन षोडश वेदान्ताचार्यो मे सप्त आर्ष वेदान्ताचार्य है यथा–आत्रेय, आश्मरथ्य, औडलोमि, कार्ष्णाजिनि, काशकृत्स्न, जैमिनि, वादरायण इनमे से तीन वेदान्ताचार्य भर्तृहरि, गौडपाद, मण्डनमिश्र, विशेष रूप से प्रसिद्ध है। ये षोडश आचार्य जीव ब्रह्म की एकता मानते है। और अविद्या से ससार तथा ज्ञान से मुक्ति मानते है। किन्तु इन सभी आचार्यो के मतो मे कुछ न कुछ अवान्तर भेद विद्यमान है। इनमे से किसी के मत मे उपनिषद् वाक्यो का समन्वय नही घटित होता है। इसमे किसी–किसी का सिद्धान्त युक्तियुक्त नही प्रतीत होता, और किसी–किसी का श्रुति सम्मत और तर्क सम्मत नही प्रतीत होता है। भगवान शड्कर ने दोषो का निवारण करके परमात्मा से प्राप्त अद्वैत सिद्धान्त को और परिष्कृत किया। भगवान शड्कराचार्य ने अपने सिद्धान्त मे अविद्या, ब्रह्म का निर्गुणत्व और निराकारत्त्व तथा जीव ब्रह्म ऐक्य आदि का नूतन आविष्कार नही किये थे और न तो कही से ले आये थे। यथा– इनमे से आश्मरथ्य और औडुलोमि, भर्तृप्रपञ्च और श्री ब्रह्मदत्त जीव ब्रह्म भेदाभेद मानते थे। इनका मानना था कि ससार दशा मे जीव का ब्रह्म से अभेद्य है इनमे औडुलोमि मुक्तावस्था मे भेद मानते है। और संसारी दशा मे अभेद मानते है किन्तु यह भेद सहिष्णुरभेद है। भगवान शडकर इस भेदाभेद का खण्डन करते हैं और कहते हैं 'यदेकेन विज्ञानेन सर्वविज्ञात भवातीति प्रतिज्ञासिद्ध्यर्थ भेदो निराकरणीय' ।

श्री शड्कराचार्य युक्ति आदि तर्क से अपने शाड्कर भाष्य मे यह स्पष्ट करते है कि यदि जीव और ब्रह्म मे भेद पारमार्थिक है तब तो अभेद किसी प्रकार से नही होगा। इस प्रकार प्रबल प्रमाणो से भेदाभेद का खण्डन करके अद्वैत वादी अभेद पक्ष को प्रतिपादित करते है। श्री भर्तृप्रपञ्च ब्रह्मदत्त, मण्डनमिश्र अविद्या से जीव ब्रह्म भेद मानते है। अर्थात् जीव ब्रह्म भेद पारमार्थिक नही है। केवल भेद अविद्या प्रतीत होता है। इस प्रकार अद्वैतवादी तथा ज्ञान कर्म समुच्चय वादी थे। श्री भर्तृप्रपञ्च और ब्रह्मदत्त जीवन मुक्ति को नही मानते थे। इनके मत मे देह पात के अनन्तर ही मुक्ति होती है। काशकृत्स्न, वादरि, द्रविड, भर्तृहरि, गौडपाद, और मण्डन मिश्र सभी आचार्य ब्रह्मा को निर्गुण और निर्विशेष मानते है। इस प्रकार सभी अद्वैतवादी आचार्यो के सिद्धान्त यथा अद्वैत, विवर्त जीव–ब्रह्म, एकता आदि समान रूप ही है केवल कहीं कुछ भेद है।

शड्कराचार्य के पश्चादवर्ती अद्वैतवादी आचार्यो मे यथा– सुरेश्वराचार्य पद्मपादाचार्य, प्रकाशात्मा, सर्वज्ञात्ममुनि, वाचस्पतिमिश्र आदि ने अद्वैतवाद के विकास मे काफी योगदान दिया। शड्कराचार्यके बाद कई प्रस्थानो का जन्म हुआ यथा भामती–प्रस्थान, वार्तिक प्रस्थान, विवरण–प्रस्थान और बाध प्रस्थान का जन्म हुआ। किन्तु सभी आचार्यो के मत–मतान्तरो मे भले ही थोडी बहुत भिन्नता रही हो किन्तु इसका मूल उद्देश्य वेदान्त का अन्य दर्शनो से अलग विकास कर सर्वोच्च स्थान पर पहुंचाना था। अचार्य शड्कर का दर्शन सभी भारतीय दर्शनो का शिरोमणि कहा जाता है। आचार्य शड्कर के विचार केवल श्रुति सम्मत ही नही अपितु तर्कों द्वारा भी पूर्ण प्रतिष्ठित है। उन्होने अपने तर्क बल के आधार पर ही प्राय अन्य सभी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायो की कटु आलोचना भी की है, उनके विषय मे कहा जाता है कि–

'तावद् गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा।
न गर्जन्ति महाशक्तिर्यावद् वेदान्त केशरी।।

अर्थात् "कानन मे शृगाल रूपी शास्त्रो की आवाज केवल तभी तक सुनाई पडती है जब तक वेदान्त केशरी (आचार्य शड्कर) का सिहनाद नही होता" अर्थात् आचार्य शड्कर के विचारो एव तर्को से अन्य सभी दार्शनिक तथा उनके सिद्धान्तो की दीवाले ढह जाती है। यही कारण है कि अनेक शताब्दियो से विद्वान इस दर्शन (वेदान्त) की ओर आकर्षित होते रहे है, और यह दर्शन अपने विरोधियो के आक्रमणो से अपनी रक्षा करता रहा है।

आज तक जितने हिन्दू दर्शन हुए है। उन सब मे वेदान्त दर्शन का स्थान सर्वोपरि रहा है। इस दर्शन की महत्ता का एक कारण यह भी रहा है कि श्रुतियो पर आधारित होने के कारण यह साधारण जनो को भी सरलता से ग्राह्य था अद्वैत वेदान्त आज भी धर्म या अध्यात्म के रूप मे लोगो द्वारा अनुसरणीय है। अपनी ज्ञानमीमासा और प्रमाण मीमासा की दृष्टि से भी अद्वैतवेदान्त सभी अन्य दर्शनो से अतिविशिष्ट है। दर्शन के रूप मे शाड्कर अद्वैत की एक बडी विशेषता यह है कि वह दो–तीन मौलिक मान्यताओ के आधार पर ज्ञान–मोक्ष आदि प्रत्ययो की बडी सुलझी हुई व्याख्या करता हे। यद्यपि वेदान्त के सभी सम्प्रदाय उपनिषदो पर आधारित होने का दावा करते है। उनका इस प्रकार का दावा करना पूरी तरह से उचित हो या न हो इसमे कोई सदेह नही है कि उनकी सामग्री का काफी बडा अश उपनिषदो से लिया गया है। इसीलिए उपनिषद्, भगवद्गीता और वेदान्तसूत्र को प्रस्थानत्रयी अर्थात् वेदान्त का तीन स्तम्भ माना गया है।

शड्कर ने जिस विशेष प्रकार के एकतत्त्ववाद का प्रतिपादन किया वह बहुत प्राचीन है जो कि श्रुतियो, उपनिषदो आदि मे पूर्व से ही वर्तमान था। किन्तु अद्वैत वेदान्त ने अन्त मे जो रूप धारण किया उसको कहा जा सकता है कि वह स्वय शड्कर के विचारो की ही उपज थी। इनके सैद्धान्तिक पक्ष की प्रमुख विशेषता है कि

यह एक मात्र ब्रह्म की ही परमसत्ता को स्वीकार करते है। जो कि निर्गुण, निराकार, निरवयव है। शड्कर सिद्धान्त की मुख्य विशेषता हे कि इन्होने जगत को मायाकृत प्रपञ्च मात्र माना और जीव तथा ब्रह्म को भिन्न न मानकर अभिन्न रूप मे स्वीकार किया और यह भी मानते थे कि मोक्ष के समय जीव ब्रह्म मे लीन हो जाता है। <u>इनके सिद्धान्त के व्यवहारिक पक्ष पर यदि घ्यान दिया जाय तो स्पष्ट होता है कि यह व्यवहारिक पक्ष मे कर्म सन्यास का प्रतिपादन करते है और एकमात्र ज्ञान को ही मोक्ष का साधनरूप मानते है। इस सिद्धान्त का सबसे प्राचीन प्रतिपादन गौडपाद की कारिका (माण्डूक्य कारिका) मे मिलता है।</u> जिसका प्रकट अभिप्राय तो माण्डूक्य उपनिषद् के उपदेशो को ही सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत करना था किन्तु इसने वस्तुत अद्वैत वेदान्त को प्रशसनीय ढग से प्रस्तुत करके इसके लिए 'अद्वैत वेदान्त' एक बहुत बडा काम किया है।

उपसहार के रूप मे उन तथ्यो का उल्लेख करना अनुचित न होगा जिसके कारण यह दर्शन इतना अधिक लोकप्रिय एव जन समर्थित रहा है।

सर्वप्रथम हम कह सकते है कि वेदान्त दर्शन मे जीवन का जो सर्वोच्च आदर्श प्रस्तुत किया गया है। वह निर्विवाद रुप से सर्वोच्च आदर्श है। पूर्ण सच्चिदानन्द की अखण्ड और शाश्वत उपलब्धि और वह भी इसी जीवन मे सभव बताना इस दर्शन की सबसे बडी बिशेषता है। कोई भी साधक इस लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। सगुण ईश्वर के सानिध्य और साक्षात्कार की तुलना मे ब्रह्म या परम या सत से तादात्म्य प्राप्त करना कही ऊँची बात है। अपने सीमित अह से ऊपर उठाकर सर्वव्यापी अह प्राप्त करना जीवन की बहुत उपलब्धि मानी जायेगी ।

उसमे भी एक बडा आर्कषण यह है कि वह इसी जीवन मे प्राप्त हो सकती है। ससार मे ऐसा कोई दर्शन नही है। जो इस बात मे इसके समतुल्य हो, इससे आगे बढने का तो प्रश्न ही नही उठता है ।

पुनश्च, परमसत् को जीव आत्मा बताकर इस दर्शन ने हमारे समक्ष उसका सबसे प्रबल प्रमाण प्रस्तुत किया है। दर्शन की अन्य पद्धतियो मे परमसत् केवल एक मानसिक रचना या कल्पना है। इसलिये वह सदा अप्रमाणित समस्या ही बना रहता है इसके विपरीत इस दर्शन का परम सत हमारे अवयवहित अनुभव का विषय होने के कारण नितान्त असदिग्ध है। इसमे सदेह नही कि इसकी अनुभूति धूमिल और आशिक रूप से ही प्राप्त है। किन्तु उसका अस्तित्त्व हमसे कभी ओझल नही होता है। यदि कोई व्यक्ति उसके स्पष्ट साक्षात्कार के लिये उचित प्रयत्न करे तो उसे अपने ही आत्मा मे उसकी अनुभूति प्राप्त हो सकती है। आचार्य शडकर का मत है कि शास्त्रो के अध्ययन से जो ज्ञान प्राप्त होता है अथवा बौद्धिक चिन्तन से जिस निर्णय पर पहॅुचते है उसकी पुष्टि हम अपरोक्षानुभूति से ही कर सकते है।

आचार्य शड्कर का दर्शन समन्वयकारी और उदार है। यह केवल जाग्रत अवस्था के अनुभवो का ही अध्ययन नही करता है। बल्कि स्वप्न और सुषुप्ति के साथ ऋषियो–मुनियो की रहस्यानुभूतियो का भी अवलोकन करता है। और उनके ज्ञान का उपयोग करता है। इन्द्रिय प्रत्यक्ष विचार शब्द प्रमाण और प्रातिभ ज्ञान का अपने–अपने क्षेत्र मे उचित महत्व स्वीकार किया गया है।

आचार्य शड्कर के दर्शन की सर्वप्रमुख विशेषता है जिसके कारण अन्य दर्शनो के बीच इसका सर्वोच्च स्थान है। और अनेक आक्षेपो के बावजूद यह अडिग बना रहा। कारण यह है कि इसका आधार दृढ और निर्दोष ज्ञान मीमासा पर टिका है इस मीमासा का मूल तथ्य यह है कि आत्मा चेतन स्वरूप है। कोई किसी भी प्रकार के

सत्ता मीमासीय सिद्धान्त का समर्थन करे, किन्तु ज्ञाता की तत्त्व मीमासीय प्रधानता या केन्द्रीयता को कोई भी उपेक्षित नही कर सकता है। इस दर्शन मे चेतना को सर्वोपरि असदिग्ध सत् स्वीकार किया गया है। इसके अस्तित्व मे न कभी शका की जा सकती है। और न कभी इसे असिद्ध किया जा सकता है। तर्क के लिए यह नितान्त मानना आवश्यक है। कि हम चेतना या आत्मा को अपना निकटतम एव परात्पर तत्त्व माने। उसका कभी विस्मरण या अभाव न हो सकना ही इस दर्शन को अजेय शक्ति प्रदान करता है।

इसके अतिरिक्त परमसत् को निर्विकार और स्वतत्र तथा स्वप्रकाश रूप स्वीकार करना निसन्देह सत् को शुद्ध सभवन स्वरूप अथवा सब परिवर्तनो और विकारो को उसके अर्न्तगत मानते हुए उसे पूर्ण और निर्विकार बताने की अपेक्षा कही अधिक तर्क सगत है। सत् को शुद्ध सभवन या परिवर्तन रूप यदि माना जायेगा तो वह किसी अन्य वस्तु के अधीन या आश्रित हो जायेगा और सभवन की अपेक्षा वही वस्तु अधिक सत् होगी। परिवर्तनशील और अपरिवर्तनशील के इस भेद का यह भी अर्थ होगा कि पहला भ्रामक तथा दूसरा सत् है। यदि सत् को पूर्ण और सभवन स्वरूप दोनो लक्षणो से सम्पन्न माने तो इसमे स्पष्ट आत्मव्याघात होगा। सत् का आत्माश्रित होना नितान्त आवश्यक है इसलिये वह कूटस्थ भी होगा ही शड्कर ने अपने ब्रह्म विषयक सिद्धान्त मे सत् विषयक यही सिद्धान्त स्वीकार किया है। इसी कारण से 'शडकर दर्शन' अन्य सभी दर्शनो से परम सत् के सम्बन्ध मे अधिक सत्यनिष्ठ दिखाई देता है। किन्तु यदि सत्य को कूटस्थ और अपरिवर्तनीय माना जाता है तो सगत विचार यही निर्णय प्रस्तुत करेगा कि परिवर्तन असत् होना चाहिए। किन्तु शड्कर ने तर्क की रक्षा करते हुये उसे असत् घोषित किया है। फिर भी सभवन के आभास का प्रश्न उठता ही है यदि सभवन को सत् या असत् मान भी लिया जाय तो उसे आत्माश्रित कहा ही नही जा सकता है।

आभास के विषय मे भी चाहे कुछ भी कहा जाय वह अपने आप मे स्थिर नही रह सकता है। क्योकि आधार और आश्रय इसके लिये आवश्यक है। अत यदि शड्कर ब्रह्म को निरपेक्ष सत् और सभवन स्वरूप समस्त ससार का अन्तिम आधार और आश्रय मानते है तो उनका विचार तर्क सगत ही है। और यह भी युक्ति युक्त है कि सत् के वास्तविक स्वरूप मे सभवन का प्रवेश सभव नही है अन्यथा सत् का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा और आत्म व्याघात उपस्थित होगा। ऐसी स्थिति मे प्रश्न उठता है कि सभवन का सत् से क्या सम्बन्ध है। यह एक सर्वोपरि समस्या है। शडकर दर्शन का अध्ययन करने वाले को देर–सबेर इसका सामना करना पडता है। इस प्रश्न का उत्तर शडकर दर्शन मे सामान्यत सन्तोष जनक नही प्रतीत होता है। किन्तु नि सकोच हम कह सकते है कि शड्कर के सूक्ष्म तर्को का सत्यनिष्ठ के साथ अनुकरण करे तो शडकर ने जो उत्तर दिया है इसके अतिरिक्त कोई और सतोषजनक विकल्प नही दिखाई देता है। यही कारण है कि श्रीहर्ष, वाचस्पति मिश्र, सुरेश्वराचार्य, माधवाचार्य जैसे तार्किक विद्वानो ने इस दर्शन से अपनी सहमति प्रकट की और इसमे कुछ भी तर्कविरुद्ध नही पाया है। दृढ तर्क और साहसपूर्ण प्रतिज्ञाप्तियॉ ही इस दर्शन की सशक्त और सुदृढ आधार है। इसमे मुख्य बात है कि इस दर्शन मे अव्यवहित तथा असदिग्ध ज्ञान प्राप्त करने की जो प्रेरणा दी गयी है उससे इसके ऊपर लगाये गये असगति के सभी आक्षेप धुल जाते है।

आचार्य शड्कर का व्यवहारिक तथा परमार्थिक दृष्टिकोण का भेद स्मरणीय है। यह भेद वैज्ञानिको द्वारा भी मान्य है क्योकि वे स्वय ऐसा भेद मानते है। सत् के विषय मे वेज्ञानिक दृष्टिकोण तथा सामान्य लोगो के दृष्टिकोण मे अन्तर है। शड्कर के इस द्विविध के कारण एक तो इस दर्शन पर लगाया जाने वाला नैतिकता के प्रति उपेक्षा या तटस्थता का आरोप दूर हो जाता है और दूसरे से बहुत लोग इसकी ओर आशा से

आकर्षित होते है कि इसके निर्देशित मार्ग पर चल कर सदा के लिये अपने को दुखादिद्वेषो से युक्त कर सकेगे। यदि ससार मे ऐसा कोई दर्शन है परमार्थिक दृष्टिकोण से ही सही दोषो को नितान्त असत् घोषित करता है तो यह एक मात्र वेदान्त दर्शन ही है इसमे दोषो की भी व्यवहारिक सत्ता मानी गई है। इसमे दोषो की भी व्यवहारिक सत्ता मानी गई। और इसमे धार्मिक तथा नैतिक जीवन पालन करे का बडा महत्त्व बताया गया है। नैतिकता का पालन किये बिना परमसत् का ज्ञान सभव नही है और उसके बिना दोषो से भी सर्वथा मुक्ति असभव है। मैक्समूलर ने कहा है कि "शडकर के दर्शन मे समस्त प्रपञ्च का निषेध हो जाता है।" उनके अनुसार विशेष नितात अकिचित है 'तत्त्वमसि इसका मूलमत्र है जिसका समान्य अर्थ ब्रह्म के एकत्त्व मे जीव और जगत का विलय है तथा उस ब्रह्म का 'नेति–नेति' से ही निर्वचन सभव है।

इस प्रकार आचार्य शड्कर का ब्रह्मसूत्र शाड्कर भाष्य एक क्रान्तिकारी ग्रन्थ है। इसके खण्डन मे रामानुज, भास्कर, मध्व आदि ने ब्रह्मसूत्र पर अपने–अपने भाष्य लिखे है इससे वेदान्त सम्प्रदाय मे अद्वैत वेदान्त के खण्डन की परम्परा विकसित हुई है। किन्तु इस परम्परा के उत्तर मे शारीरक भाष्य के समर्थन मे भी अनेक टीकाएँ लिखी गई है। जिनमे पद्मपाद–वाचस्पति मिश्र, सर्वज्ञात्मा, चित्सुखाचार्य, आनन्दगिरि, गोविन्दानन्द, अनुभूतिस्वरूपाचार्य आदि की टीकाओ का प्रभाव दार्शनिक जगत पर बहुत पडा है। निसदेह ब्रह्मसूत्र एव शारीरक भाष्य एक अत्यन्त मौलिक कृति है।

अधीत ग्रन्थ–सूची

१ अपरोक्षानुभूति– शड्कराचार्य, गीता–प्रेस, गोरखपुर सख्या, २०/६।

२ अद्वैततत्त्वशुद्धि – श्रीमच्छज्जतकृष्ण शास्त्री, भारतीय विजयम् मुद्रणालय, १६४८।

३ अद्वैतब्रह्मसिद्धि – सदानन्दयति एशियाटिक सोसायटी आव बंगाल कलकत्ता।

४ अद्वैतरत्नरक्षणम्– मधुसूदन सरस्वती, निर्णय सागर प्रेस बम्बई, १६३७।

५ अद्वैतसिद्धि – मधुसूदन सरस्वती, निर्भय सागर प्रेस बम्बई, १६३७।

६ अद्वैत दीपिका– नृसिहाश्रम, मैसूर, १६२६।

७ अनुभूति प्रकाश – विद्यारण्य स्वामी, नि० सा० प्रेस, १६२६।

८ आदिशड्कराचार्य जीवन और दर्शन– जयराम मिश्रा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

६ अद्वैतवेदान्त की तार्किक भूमिका– डा० जगदीशसहाय श्रीवास्तव, किताब महल, इलाहाबाद,

१० अद्वैतवेदान्त मे विकासवाद– डा० सत्यदेव मिश्र, इन्दिरा प्रकाशन पटना, १६७१।

११ अद्वैतवेदान्त– शर्मा राममूर्ति, नेशनल प्रकाशन हाउस, दिल्ली, १६७२।

१२ अद्वैतवेदान्त मे तत्त्व और ज्ञान– उर्मिला वर्मा, छन्दस्वती प्रतिष्ठान, वाराणसी, प्रथम–सस्करण, १६७८।

१३ आत्मतत्त्व विवेक– चौखम्बा सस्कृत सिरीज, वाराणसी, १६७०।

१४ आत्मबोध- शड्कर अच्युत ग्रन्थमाला, काशी प्र० सं० १६६०।

१५ आचार्य शकरब्रह्मवाद– डा० रामस्वरूप सिह नौलखा, किताबघर, अचार्यनगर, कानपुर।

१६ आधुनिक चिन्तन मे वेदान्त– डा० महेन्द्र शेषावत, म० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, प्र० सं० १६६०।

१७ इष्टसिद्धि– तत्माकृत, सं० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल– प्र० स० १६३३।

१८. ईशावस्य भाष्यम्– शड्कराचार्य, गीता–प्रेस, गोरखपुर, सं० २०१६।

१६ ऋग्वेद सहिता— चतुर्थ एव द्वितीय—भाग सम्पा मैक्समूलर, चौखम्बा सस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी १६६६।

२० उपदेशसाहस्री— शड्कराचार्य, सपादक—डा० चमनलाल गौतम सस्कृत सस्थान, गीताप्रेस गोरखपुर—१६४३।

२१ ऐतरेयोपनिषदभाष्यम्— गीता—प्रेस, गोरखपुर, स० २०१६।

२२ कठोपनिषदशाकरभष्य— गीता—प्रेस, गोरखपुर, १६६०

२३ कल्पतरु — (भामती टीका) कमलानन्द सरस्वती निर्भयसागर—प्रेस बम्बई १६३८।

२४ कल्पतरु परिमल— अप्पय दीक्षित, निर्भय सागर प्रेस, बम्बई १६३६।

२५ कठोपनिषदभाष्यम्— शड्कराचार्य, गीता—प्रेस, गोरखपुर २०१६।

२६ खण्डनखण्डखाद्यम्— श्रीहर्ष (हि० अनु०) हनुमानदासजी षड्शास्त्री चौखम्बा सस्कृत सिरीज।

२७ गीताभाष्यम्— गीता—प्रेस, गोरखपुर, स०—२००।

२८ गीता रहस्य— लोकमान्य बाल गगाधर तिलक कृत, श्रीधर तिलक ५६८, नारायण प्रेस, लोकमान्य तिलक मन्दिरगायकवाड, बडा पूना।

२६ छान्दोग्योपिनषत शाड्करभाष्यम्— गीता—प्रेस, गो० स०२०१३ / १६३७

३० तत्त्वबोध— अच्युतग्रन्थमाला, कार्यालय, काशी—प्रकाशन १६६०।

३१ तत्त्व प्रदीपिका— चित्सुखाचार्य, नि० सा० प्रेस, बम्बई १६१६।

३२ तर्कभाषा— केशव मिश्र, चौखम्बा स० सी० बनारस १६६३।

३३ तर्क—सग्रह— आनन्दगिरि गायकवाड, ओरियण्टल सिरीज, बडोदा १६१७।

३४ तत्त्वोपदेश— शड्करार्य अच्युतग्रन्थमाला कार्या० वाराणसी १६६०।

३५ तत्त्वबोधिनी (सक्षेपशारीरककटीका)— नृसिहाश्रम, सरस्वती भवन, वेस्ट वाराणसी, स० १६३४।

३६ तैत्तेरीयोपनिषद् शाकर भाष्य— गीता—प्रेस स० २०१६।

३७ तात्पर्य टीका— वाचस्पति मिश्र, कलकत्ता १६२४।

३८ दर्शन दिग्दर्शन— राहुल साकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद
३६ द्रव्य सग्रह— नैननेमिचन्द्र गुजरात, स० २०२२।
४० दशश्लोकी— चौखमबा सस्करण १६८५।
४१ न्यायभाष्य— गौतम (वात्स्यायनभष्य सहित) सम्पादक आचार्यदुधि राज, चौ० स० सि० वाराणसी १६७०।
४२ न्यायमञ्जरी— जयन्त भट्ट, चौ० स० सि० वाराणसी १६२६।
४३ नैष्कर्म्यसिद्धि— सुरेश्वराचार्य, स० प्रो० एन० हिरियन्ना, बम्बई १६२६।
४४ न्यायरत्नदीपावली— आनन्दनुभव, गवर्नमेण्ट ओरियन्टल सिरीज, मद्रास१६६१।
४५ न्यायरत्नावली (सिद्धान्त विन्दु व्याख्या)— ब्रह्मानन्द, चौ० स० सि० वाराणसी।
४६ न्यायकन्दली— श्रीधराचार्य, अच्युतग्रन्थमाला, वाराणसी १६६३।
४७ पञ्चदशी— विद्यारण्यमुनि विरचित पीताम्बरजी कृत व्याख्या, सम्पादक—डा० चमन तगल गौतम, सस्कृति सस्थान ख्वाजा कुतुब बरेली, सस्करण द्वितीय १६८१।
४८ पञ्चपादिकाविवरण— प्रकाशात्मयति, ई० ज्ञ० लाजरस क० काशी १८६१।
४६ पञ्चीकरणवार्तिकम्— सुरेश्वराचार्य, ग्रु० प्रि० प्रे० बम्बई १६३०।
५० प्रश्नोनिषद् शाकरभाष्य— गीता—प्रेस गोरखपुर, २०१६
५१ पाणिनोसूत्राष्टाध्यायी— पणिनि, स० ब्रह्मदत्त जिग्यासु, रामलाल ट्रस्ट, अमृतसर १६५५।
५२ प्रश्नोपनिषद— गीता—प्रेस, गोरखपुर १६४४(चतुर्थ)।
५३ पातञ्जलमहाभाष्यम्— पतञ्जलि चौ० स० सि० बनारस १६५४ प्रथमा।
५४ प्रकरणपाञ्चिका— शालिकनाथ, का० हि० वि० वि० दर्शन भाग ४/१६६१।
५५ प्रकटार्थ विवरण— प्रकटार्थ, वि० रा० चिन्तामणि विश्वविद्यालय, मद्रास।
५६ ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य— निर्णय सागर प्रेस, बम्बई द्वितीय स० १६२७।
५७ ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य और रत्नप्रभा— छोटे बाबा का हिन्दी अनुबाद— अ० ग्रन्थमाला काशी।
५८ ब्रह्मसूत्र गोविन्द भाष्य— श्री बलदेव विद्याभूषण, कृष्णदास द्वारा प्रकाशित, बृन्दावन।
५६ ब्रह्मसूत्र शकरभाष्य— स० श्री रामानन्द सरस्वती, गोविन्दमठ वाराणसी।

६० ब्रह्मसूत्र भास्करभाष्य— श्री भस्कराचार्य, चौखम्बा वाराणरी।
६१ बृहदारण्य कठोपनिषद्
शाड्करभाष्यम्— गीता—प्रेस, गोरखपुर।
६२ ब्रहदारण्यकवार्तिसार— विद्यारण्य, चौखम्बा स० सी० वारणसी।
६३ ब्रह्मसिद्धि— मण्डन मिश्र, सम्पादक, म०म०एरा० कुप्पूरवागीशास्त्री १६१६
६४ ब्रह्मसूत्रशाकरीवृत्ति— शड्कर विलास सस्कृत पाठशाला मेसूर १६७४
६५ ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्यम्— अनन्तकृष्ण, सम्पादिता
६६ बौद्धदर्शन— मण्डन मिश्र, स०— म० म० एस० कुप्पू स्वामी शास्त्री १६१६।
६७ बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन प्रथम व द्वितीय भाग— माता सिह उपाध्याय, बगाल हिन्दी मण्डल कलकत्ता
६८ बोधसागर— नरसिहस्वामी, अच्युतग्रन्थमाला वाराणसी।
६६ बौद्ध धर्म एव दर्शन— डा० बी० एन० सिह, आशाप्रकाशन, सदानन्द बाजार वाराणसी, प्र० स० १६८६।
७० बौद्ध दर्शन मीमासा— आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौ० विद्याभवन वाराणसी
६२ ब्रहदारण्यकवार्तिसार— विद्यारण्य, चौखम्बा स० सी० वारणसी।
७१ ब्रह्मसिद्धि— १६७८।
७२ भामती— वाचस्पति मिश्र, नि० सा० प्रेस मुम्बई, १६३४।
७३ भारतीय दर्शन- उमेश मिश्र प्रथम सस्करण १६५७, प्रकाशन व्यूरो, सूचना प्रसारण विभाग उ० प्र० सरकार लखनऊ।
७४ भारतीय दर्शन (द्वितीय)—डा० राधाकृष्णन, राज्यपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली सस्करण, फरवरी १६७२।
७५ भारतीय दर्शन- डा० वी० एन० सिह तृतीय स० १६८३—८४ स्टूडेन्टस फ्रेन्डस क० वाराणसी।
७६ भारतीय दर्शन की रूपरेखा— डा० हरेन्द्र प्रताप सिन्हाहार्तप I० १६८३ ८४ मोतीलाल बनारसी लाल वारणसी।
७७ भारतीय दर्शन

की कहानी— डा० सगमलाल पाण्डेय।

७८ भारतीय दर्शनो मे आत्मा— म०म०प० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, किशोर विद्या निकेतन, भदैनी वाराणसी १९८०।

७९ भारतीय दर्शन का इतिहास— एस० एन० दास गुप्त राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

८० भारतीय दर्शन मे चेतना का स्वरूप— डा० श्रीकृष्ण सक्सेना चौ० वि० भ० चौक वारणसी।

८१ भारतीय दर्शन— सी० डी० शर्मा।

८२ भारतीय दर्शन— चटर्जी एव दत्ता पुस्तक भण्डार, पटना।

८३ भारतीय दर्शन परिचय— प० हरिमोहन झा।

८४ भारतीय दर्शन की रूपरेखा— एम० हिरियन्ना राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७१।

८५ भगवद्गीता— गीता—प्रेस। अच्युतग्रन्थ माला वाराणसी २०२३ विक्रम सवत

८६ भामती प्रस्थान एव विवरण प्रस्थान का तुलनात्मक उध्ययन— डा० सत्यदेव शास्त्री भारत—भारती, वाराणसी।

८७ भारतीय दर्शन का इतिहास— डा० एस० एन दास गुप्ता राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर प्र० स० १९७३।

८८ भारतीय दर्शन मे मोक्ष चिन्तन एक तुलनात्मक अध्ययन— अशोक कुमार लाड म० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्र० स० १९७३।

८९ मुण्डकोपनिषद् शाङ्करभाष्य— गीता—प्रेस, गोरखपुर,२०१६।

९० मीमासादर्शनम्— जैमिनि(शाबरमुनि) आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना।

९१ योगदर्शन— पतञ्जलि अनु० प० श्रीराम शर्मा आचार्य सस्कृत सस्थान, बरेली

९२ योगवासिष्ठ — भा० १२ निर्णय सागर प्रेस १९१८ ई०

९३ वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली—जीवानन्द विद्यासागर कलकत्ता १९३५ ई०

९४ वेदान्त कल्पलतिका— मधसूदन सरस्वती भाण्डारकर प्राच्यविद्या सशोधानलय पूना १९६२।

९५ वेदान्त कौमुदी— रामद्वय मद्रास विश्व विद्यालय १९५५।

९६ वेदान्तकल्पतरू— भागलानन्द नि० सा० प्रे० मुम्बई१९३८।

९७ वेदान्त परिभाषा— धर्मराजाहरीन्द्र और शिवदत्त का भाष्य अर्थ दीपिका, चौखम्बा स० कार्यालय बनारस स० १९३७।

९८ वेदान्तसार— सदानन्दयोगीन्द्र।

९९ वेदान्त आव शकर— आर० पी० सिह जयपुर १९४९।

१०० जैन—धर्म— प० कैलाशचन्द्रशास्त्री।

१०१ श्रीशड्करदिग्विजय— माधवाचार्य श्री श्रवणनाथ गिरि ज्ञान मन्दिर, हरिद्वार।

१०२ सस्कृत वाड्मय का बृहद् इतिहास— बलदेव उपाध्याय दशमखण्ड वेदाड्ग, उत्तरप्रदश सस्कृत सस्थान लखनऊ।

१०३ सर्वदर्शन सग्रह— प्रो० उमाशकर शर्मा चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

१०४ शड्कराचार्य का आचार दर्शन— डा० रामानन्द तिवारी।

१०५ सक्षेप शारीरक— उदासीन सस्कृत विद्यालय वाराणसी २०११ वि०स०।

१०६ सिद्वान्त लेश सग्रह— अच्युत ग्रन्थ माला वाराणसी २०११ वि० स०।

१०७ शतश्लोकी— शड्कराचार्य विरचित — आनन्दगिरि

१०८ षड्दर्शन समुच्चय— हरिप्रसाद सूरि विरचित, डा० महेन्द्र कुमार जैन— भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।